वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

TM-01

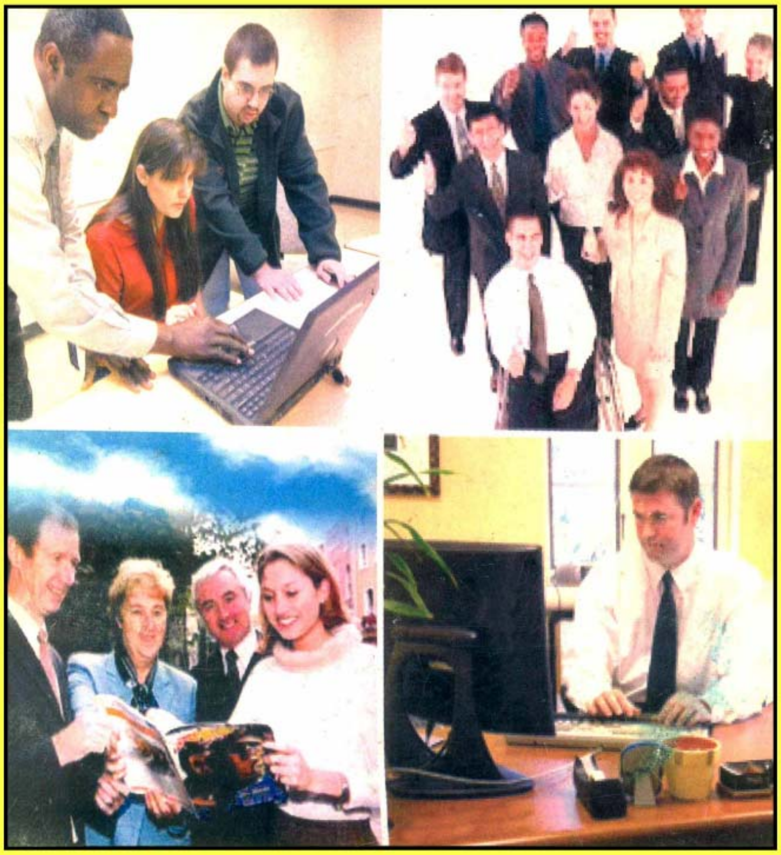

प्रबन्ध के सिद्धांत

खण्ड 1 एवं 2

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा **TM-01**

प्रबन्ध के सिद्धांत

खण्ड -1 : सामान्य प्रबन्ध : परिचयात्मक अवधारणाएं

इकाई - 1	प्रबन्ध- एक परिचय	7–22
इकाई - 2	प्रबन्धकीय विचारधारा का विकास	23–44
इकाई - 3	प्रबन्ध की आधुनिक विचारधारायें	45–63

खण्ड - 2 : प्रबन्ध के कार्य

इकाई - 4	संगठनात्मक नियोजन	64–86
इकाई - 5	संगठन	87–103
इकाई - 6	संगठन संरचना	104–122
इकाई - 7	संगठन विकास	123–143
इकाई - 8	स्टाफिग कार्य	144–159
इकाई - 9	केरियर नियोजन एवं प्रबन्धकीय विकास	160–173

पाठ्यक्रम अभिकल्पना समिति **TM-01**

पाठ्यक्रम लेखन

डॉ .आर.वी. व्यास
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

प्रो. पी.के. शर्मा
आचार्य (प्रबन्ध) एवं
समन्वयक, पर्यटन अध्ययन,
निदेशक, वाणिज्य एवं प्रबन्ध अध्ययन विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. संदीप कुलश्रेष्ठ
समन्वयक, भारतीय पर्यटन एवं
यात्रा प्रबन्ध संस्थान
गोविन्दपुरी, ग्वालियर (म.प्र.)

डॉ. राजेश कुमार व्यास
पर्यटन विषय विशेषज्ञ,
जयपुर

प्रो. संदीप कुलश्रेष्ठ
समन्वयक, भारतीय पर्यटन एवं
यात्रा प्रबन्ध संस्थान
गोविन्दपुरी, ग्वालियर (म.प्र.)

पाठ्यक्रम सम्पादन

डॉ.कपिल देव शर्मा
व्याख्याता (व्यावसायिक प्रशासन)
राजकीय कन्या महाविद्यालय,
कोटा- 324001

आवरण पृष्ठ सज्जा

डॉ. राजेश कुमार व्यास
पर्यटन विषय विशेषज्ञ,
जयपुर

सामग्री उत्पादन

प्रो. पी.के. शर्मा
निदेशक,
पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

श्री योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

प्रस्तावना

प्रस्तुत खण्ड में प्रबन्ध विषय की अवधारणा को समझाने का प्रयास किया गया है । प्रथम इकाई में प्रबन्ध का सामान्य अर्थ,विशेषताएं, महत्व एवं सिद्धांत स्पष्ट किये गये है । द्वितीय इकाई में विभिन्न प्रबन्ध विचारधाराओं को उनके विकसित होने के काल क्रम में वर्णित किया गया है । तृतीय इकाई में पिछले कुछ समय में प्रबंधन क्षेत्र में विकसित नवीन संकल्पनाओं एवं विचारों को समावेशित किया गया है ।

प्रत्येक प्रबन्धक को कुछ मौलिक कार्यों को क्रमबद्ध रूप में सम्पन्न करना होता है इसे ही प्रबंधकीय प्रक्रिया कहते है। उद्ददेश्य प्राप्ति के लिए किये जाने वाले कार्यो का अग्रिम निर्धारण नियोजन है। पदों, कर्तव्यों, अधिकारों, उत्तरदायित्वों एवं अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या संगठन है जिसकी संरचना एवं विकास का कार्य भी प्रबन्धकों को ही करना होता है। विविध पदों के लिय योग्य व्यक्तियों का चयन कर उन्हें उचित स्थान पर नियुक्त देने एवं उच्च पदों के लिय सक्षम बनाना भी प्रबन्धकों का मुख्य कर्तव्य है।

प्रस्तुत खण्ड में प्रबन्ध के उस पहलू का वर्णन किया गया है जो संगठन में सदस्यों को प्रभावपूर्ण ढंग से उपक्रम के उद्देश्यों के ओर गतिशील करता है ताकि वे कुशलतम तरीकों से लश्यों के प्राप्ति के ओर अग्रसर हों। जब योजनाएं तैयार हो जाती है, संगठन संरचना स्थापित हो जाती है, संगठन के पदों पर व्यक्तियों के नियुक्ति हो जाती है तब इन व्यक्तियों को क्रियाशील करने की आवश्यकता होती है। इस प्रक्रिया में निर्देशक नेतृत्व, अभिप्रेरण, सम्प्रेरण, एवं संगठनात्मक संघर्ष के प्रबन्ध को सम्मिलित किया जाता है।

नियंत्रण प्रबन्ध का महत्वपूर्ण कार्य है इसके अभाव में कुशलता के साथ संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं की जा सकती है। प्रबन्ध के नियंत्रण पूर्व के कार्यों की सफलता भी नियंत्रण के प्रभावी होने पर ही निर्भर होती है। संगठन के क्रियाकलापों पर प्रभावी नियंत्रण हेतु प्रबन्धकों द्वारा विभिन्न नियंत्रण तकनीकों का उपयोग किया जाता है। इनमें से कुछ तकनीकें लम्बें समय से प्रयुक्त की जा रही है व कई अन्यन्त नवीन है। नियंत्रण के लिये उत्तरदायी प्रबन्धकों को निष्पादन सम्बन्धी सारी सुचनाएं एवं तथ्य नियमित रूप से प्राप्त हों व उनके द्वारा सुधारात्मक उपायों से संम्बन्धित निर्देश समय पर मिलते रहें, इस हेतु प्रभावी प्रबन्ध सूचना प्रणाली का होना भी आवश्यक है।

प्रस्तुत खण्ड में निर्णयन को प्रबन्धकों के सर्वोपरि कार्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रबन्ध का वैज्ञानिक पक्ष निरंतर परिष्कृत एवं समृद्ध होता जा रहा है। गणितीय तकनीकों के प्रयोग से नियोजन, निर्णयन एवं नियंत्रण के कार्यों में प्रबन्धकों को सहायता मिली है, इस पहलू को इकाई-17 में समाविष्ठ किया गया है। उत्पाद प्रबन्ध के परिणातस्वरूप उत्पाद एवं सेवाओं की लागत में कमी, गुणवत्ता में सुधार एवं प्रभावी वितरण व्यवस्था सम्भव है। इकाई - 19 में भूमंडलीकरण के फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्ध एवं संस्कृतिबुद्ध प्रबन्ध के विभिन्न पहलुओं से अवगत कराने का प्रयास किया गया है। अंत में प्रबन्धकों को सामाजिक सरोकारों एवं नैतिक मूल्यों के पालन के महत्व को बतलाया गया है।

खण्ड -1 सामान्य प्रबन्ध : परिचयात्मक अवधारणाएं

इकाई - 1 प्रबन्ध- एक परिचय
इकाई - 2 प्रबन्धकीय विचारधारा का विकास
इकाई - 3 प्रबन्ध की आधुनिक विचारधारायें

इकाई-1 प्रबन्ध-एक परिचय

ढाँचा :

1.0 उद्देश्य
1.1 परिचय
1.2 प्रबन्धकीय अवधारणा
1.3 प्रबन्धकीय विशेषतायें
1.4 प्रबन्ध के कार्य
1.5 प्रबन्ध के सिद्धान्त
1.6 प्रबन्ध का महत्व
1.7 पर्यटन में प्रबन्धकीय बिन्दु
1.8 सारांश
1.9 प्रगति को जानने के लिये अभ्यास

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ेने के बाद आप सक्षम होंगे :-

प्रबन्धकीय अवधारणा को समझने में ।

प्रबन्धकीय विशेषताएं, महत्व एवं सिद्धांत ।

प्रबन्धकीय कार्य को समझने में ।

पर्यटन संगठन मे प्रबन्धक के रूप में आपकी भूमिका समझने में ।

1.1 परिचय

सेवा के क्षेत्र में प्रबन्ध का विषेश महत्व है । पर्यटन जो कि सेवा क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण अंग है, में विद्यार्थियो तथा कार्य कराने वाले व्यवस्थापक को प्रबन्ध की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है । चूंकि पर्यटन व्यवसायी को विभिन्न संसाधनो के मध्य समन्वय स्थापित करके इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति करनी होती है । यह सामंजस्य ट्रेवल्स एजेन्सी या टूर आपरेषन युनिट के अन्दर कार्य कर रहे कर्मचारियो अथवा संलग्न होटल परिवहन, गाईड, दुकानदार, एवं पर्यटकों के मध्य स्थापित करना होता है, जो प्रत्येक प्रबन्धक के द्वारा ही सम्भव है । इसी कारण से आगामी पृष्ठों में प्रबन्ध के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान की गई है । जिसमें मुख्य रूप से प्रबन्धकीय विषेशताओं, सिद्धांतों, कार्यो एवं महत्व के ऊपर प्रकाश डाला गया है ।

1.2 प्रबन्ध की अवधारणा

'प्रबन्ध' एक व्यापक शब्द है जिसे आधुनिक औधोगिक जगत में कई अर्थो में प्रयोग किया जाता है । कुछ व्यक्ति इसका संकीर्ण अर्थ लगाते है तो कुछ व्यक्ति व्यापक अर्थ । संकीर्ण अर्थ में प्रबन्ध अन्य व्यक्तियों से कार्य कराने की युक्ति है । विस्तृत अर्थ में प्रबन्ध एवं कला और विज्ञान है जो निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न मानवीय प्रयासों से

सम्बन्ध रखता है । इस अर्थ में प्रबन्ध में प्रमुखतया नियोजन, संगठन, समन्वय, निर्देशन, अभिप्रेरणा, और नियन्त्रण आदि कार्य सम्मिलित हैं । प्रो. थियो हैमन के अनुसार प्रबन्ध को तीन अर्थो में समझा सकता है । प्रथम, प्रबन्धकीय अधिकारी के अर्थ में, द्वितीय, प्रबन्ध विज्ञान के अर्थ में और तृतीय, । प्रबन्ध प्रकिया के अर्थ में । हेराल्ड कून्ट्ज और औ,डोनैल ने प्रबन्ध का अर्थ एक प्रकिया से लगाया है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विभिन्न विद्वानों ने प्रबन्ध को विभिन्न अर्थो में प्रयोग किया है । संक्षेप में प्रबन्ध को निम्न अर्थो में समझा जा सकता है:-

1- अन्य व्यक्तियों से कार्य कराने के अर्थ में ।
2- एक प्रक्रिया के अर्थ में ।
3- विज्ञान के अर्थ में ।
4- सामूहिक प्रयासों की व्यवस्था के अर्थ में ।
5- प्रबन्ध अधिकारियो के अर्थ में ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रबन्ध एक विस्तृत अर्थ वाला शब्द है जिसका विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न अर्थ लगाया है । कुछ व्यक्तियों ने इसका अर्थ दूसरों से कार्य करावें की युक्ति से लगाया है तो कुछ व्यक्तियो ने इसका अर्थ एक प्रकिया, विज्ञान, सामूहिक प्रयासों की व्यवस्था और प्रबन्धकीय अधिकारियों से लगाया है । संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि प्रबन्ध एक विज्ञान और कला है जो संस्था के सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न व्यक्तियों के वैयक्तिक और सामूहिक प्रयासों के नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय और नियन्त्रण से सम्बन्ध रखता है ।

1.3 प्रबन्ध की विशेषतायें -

प्रबन्ध की विशेषतायें निम्न प्रकार है:-

(1) प्रबन्ध उद्देश्यपूर्ण है-

प्रबन्ध की प्रमुख विशेषता इसका उद्देश्यपूर्ण होना है । अन्य शब्दों में, प्रत्येक प्रबन्धकीय क्रिया का कुछ न कुछ उद्देश्य आवश्यक होता है । यह उद्देश्य गर्भित अथवा स्पष्ट हो सकता है । प्रबन्धकीय सफलता सामान्यत: इस बात पर निर्भर करती है कि उद्देश्य की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है । प्रबन्ध का सर्वाधिक महत्व इसलिए है कि यह पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति का एक प्रभावी साधन है ।

(2) प्रबन्धक मानव जीवन पर वास्तविक प्रभाव डालने का एक महत्वपूर्ण साधन है-

प्रबन्ध मानव जीवन को प्रभावित करता है । यदि प्रबन्धक चाहे तो विद्यमान क्रियाओं और कार्यो में सुधार करके निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों को प्रोत्साहित कर सकता है और उनके प्रयासों का अधिकतकम सदुपयोग कर सकता है । एक प्रबन्धक संस्था की प्रगति कर सकता है और मानव जीवन की समृद्धि के लिए कल्पना, आशा और प्रयास का संचार करके आवश्यक कदम उठा सकता है ।

(3) प्रबन्ध सामान्यत: एक समूह के प्रयासों से सम्बन्ध रखता है-

इसमें कोई रान्देह नही कि वैयक्तिक प्रयासों का भी प्रबन्ध किया जाता है । जैसे एक व्यक्ति अनेक वैयक्तिक मामलों का स्वयं प्रबन्ध करता है लेकिन विस्तृत और महत्वपूर्ण रूप में प्रबन्ध एक समूह के प्रयासों से सम्बन्ध रखता है । यह किसी विशिष्ट उद्देश्य अथवा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समूह प्रयासों का नियोजन, सगंठन, समन्वय, निर्देशन और नियन्त्रण करता है ।

(4) प्रबन्ध-योग्यता

प्रभावोत्पादकता के लिए प्रबन्धक में निश्चित ज्ञान, चातुर्य तथा व्यवहार के प्रयोग की आवश्यकता होती है । विक्रय के लिए विक्रयकर्ताओं की प्राप्ति एवं यह जानना कि विक्रय किस प्रकार किया जाये के मध्य, प्रशिक्षण के लिए कर्मचारियो की प्राप्ति एवं यह जानना कि उन्हे प्रशिक्षण किस प्रकार दिया जाये के मध्य और किसी संस्था के उत्पादों के निर्माण के लिए ऑपरेटर्स की प्राप्ति एवं यह जानना कि विभिन्न कृत्यों का किस प्रकार निष्पादन किया जाये के मध्य पर्याप्त अन्तर है । अत: किसी सौंपे गये कार्य को पूरा करने के लिए व्यक्तियों में तकनीकी योग्यता का होना आवश्यक है । लेकिन प्रबन्धकों में प्रबन्धकीय कार्यो का निष्पादन करने के लिए किसी प्रकार की विशिष्ट तकनीकी योग्यता का होना आवश्यक नहीं है । आज के विशिष्टीकरण के युग में अनेक व्यक्ति प्रबन्ध के क्षेत्र में प्रविष्ट होने के पूर्व ही तकनीकी योग्यता हासिल कर लेते है । अत: प्रबन्धकीय कार्यो के निष्पादन के लिए प्रबन्धकों में तकनीकी योग्यता की आवश्यकता न होने पर भी इसका महत्व बढता जा रहा है ।

(5) प्रबन्ध अस्पष्ट या अविचारणीय-

कुछ विद्‌वानो ने प्रबन्ध को अदृश्य व्यक्ति की संज्ञा दी है । किसी संस्था में प्रबन्ध की सफलता या असफलता की जानकारी इसके द्‌वारा किये गये प्रयासों के परिणामों से होती है। यदि प्रयास सफल होते हैं अर्थात सभी कार्य विधिवत होते हैं, कर्मचारी अच्छी भावना से कार्य करते हैं और उत्पादन में वृद्धि होती है तो यह कुशल प्रबन्ध का परिचायक है । यदि प्रयास असफल रहते हैं तो यह अकुशल प्रबन्ध का सूचक है । व्यवहार में यह देखा गया है कि अकुशल प्रबन्ध की जानकारी कर्मचारियो और जनता को शीध्रता से मिल जाती है जबकि सफल प्रबन्ध की जानकारी या तो मिलती ही नहीं या काफी देर से मिलती है । अत: यह कहा जाता है कि प्रबन्ध एक अस्पष्ट शक्ति है ।

(6) जो प्रबन्ध का कार्य करते है उनका स्वामी की तरह होना आवश्यक नहीं है -

प्रबन्ध की यह विशेषता इत्र तथ्य को स्पष्ट करती है कि प्रबन्ध और स्वामित्व का सदैव एक व्यक्ति के हाथ में होना आवश्यक नहीं है । अन्य शब्दों में, उद्‌योगों के स्वामी (पूंजी लगाने वाले)कुछ और व्यक्ति हो सकते हैं और प्रकम्पक (प्रबन्ध करने वाले)कुछ और । वर्तमान समय में व्यापार स्थानीय, राज्यीय और अन्तर्राज्यीय ही न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है, अत: व्यवसाय का स्वरूप भी एकल एवं साझेदारी ही न रहकर कम्पनी एवं निगम हो गया है । इसलिये प्रबन्धक व स्वामी का अलग-अलग अस्तित्व होना स्वभाविक है ।

1.4 प्रबन्ध के कार्य

एक पर्यटन संगठन में प्रबन्धक को विभिन्न कार्य सम्पादित करने होते हैं ' जिनको सारणीबद्ध करना संभव नही है । साथ ही विभिन्न विद्वान प्रबन्ध के कार्यो के संबंध में भिन्न-भिन्न विचार रखते हैं । प्रबन्ध के कार्यो का सर्वप्रथम स्पष्टीकरण करने वाले विद्वानो में हेनरी फेयोल प्रमुख माने जाते हैं । उनके अनुसार "प्रबन्ध करने से आशय पूर्वानुमान एवं नियोजन करना, संगठन बनाना, आदेश देना, समन्वय करना, और नियंत्रण करना है' ' । प्रबन्ध साहित्य का अध्ययन करने व प्रबन्ध के कार्यो का विश्लेषण करने के पश्चात मुख्य रूप से निम्नलिखित कार्यो को प्रमुखता दी जा सकती है :-

नियोजन

नियोजन प्रबन्ध का एक प्रमुख एवं सर्वोपरि कार्य है । विभिन्न विद्वानों ने हबब्ध के कार्यो की भिन्न-भिन्न सूची प्रस्तुत की है लेकिन लगभग सभी विद्वानों ने अपनी सूची में नियोजन को प्रमुख स्थान दिया है । साधारण शब्दों में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु भविष्य में क्या करना है, कैसे करना है, कब करना है और किसे करना है, नियोजन कहलाता है । वैज्ञानिक प्रबन्ध के जन्मदाता एफ. डब्ल्यू. करे ने प्रत्येक कारखाने में पृथक योजना विभाग की स्थापना पर बल दिया । शील के मतानुसार "योजना विभाग प्रबन्ध का हृदय है जिसका एक मात्र कार्य उत्पादन के विभिन्न फुलुओं में कार्यरत कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पूरा करना है ।"

प्रबन्ध जगत के प्रसिद्ध विद्वान पीटर एफ. ड्रकर का कहना है कि, "एक प्रबन्धक द्वारा की गई प्रत्येक क्रिया निर्णय पर आधारित होती हैं ।" अत: नियोजन के क्षेत्र में निम्न घटकों को सम्मिलित किया जाता है: -

1- उद्देश्य
2- नीतिया
3- कार्य-विधियाँ
4- नियम
5- बजट
6- कार्यक्रम
7- मोर्चाबब्दी

संगठन

प्रबन्ध द्वारा नियोजन कर लेने के पश्चात इसे कार्य रूप में परिणित करना होता है । प्रबन्धक यह कार्य संगठन के माध्यम से करता है । प्रबन्धक इस कार्य के अन्तर्गत मानव, माल, मशीन, एवं अन्य संसाधनों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करता है ताकि न्यूनतम लागत पर निधारित व्यावसायिक लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके । हेनरी फेयोल ने प्रबन्धक के इरा कार्य को दो भागों यथा भौतिक संगठन और मानवीय संगठन में विभक्त किया है । भौतिक संगठन की तुलना में मानवीय। संगठन अधिक महत्वपूर्ण है । कुशल प्रबन्ध इन दोनों प्रकार के संगख्तों पर

बल देता है । इस हेतु प्रबन्धक का मुख्य कार्य नियोजन को कार्य रूप में परिणित करने के लिए क्रियाओं को सौंपना और उनके: मध्य पारस्परिक सम्बन्धों को परिभाषित करना है ।

प्रत्येक पर्यटन उपक्रम में प्रभावी संगठन निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होता है :-

1- न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन एवं सेवायें प्राप्त करना ।

2- श्रम और समय की बचत करना ।

3- मधुर पर्यटक सम्बन्धों की स्थापना करना ।

4- पर्यटकों को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करना ।

5- कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि करना ।

निर्देशन

प्रबन्ध का अन्य मुख्य कार्य निर्देशन है । जार्ज आर. टेरी ने निर्देशन के स्थान पर गति देना शब्द का प्रयोग किया है । प्रबन्ध के इस कार्य में अधीनस्थों का मार्ग प्रशस्त करना और उनकी क्रियाओं की देखरेख करना सम्मिलित होता है । प्रबन्ध मूलत: व्यक्तियों के साथ मिलकर कार्य करने और कराने की कला है । अत: यह आवश्यक है कि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रबन्ध को अपने अधीनस्यों को क्या करना है, कैसे करना है, आदि के बारे में मार्ग प्रशस्त करते रहना चाहिए और यह देखते रहना चाहिये कि वे अपना कार्य उसी भांति कर रहे है या नहीं ।

जिस प्रकार रेफरी द्वारा सिटी बजाये बिना खेल प्रारम्भ नहीं होता, गार्ड द्वारा झंडी दिखाये बिना रेलगाडी स्फोन नहीं छोड़ती, ठीक उसी प्रकार प्रबन्धकों द्वारा अपने अधीनस्थों को दिशा प्रदान किये बिना निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती । प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को उपक्रम की परम्पराओं, इतिहास, उद्देश्यों एवं नीतियों से अवगत कराते है एवं उन्हें उनके कर्तव्यों एवं अधिकारों से अवगत करवाते है । इसके अतिरिक्त प्रबन्धक निरन्तर अपने अधीनस्थों को सौंपे गये कार्य को स्पष्ट करते हैं, कुशल निष्पादन हेतु आवश्यक मार्ग प्रशस्त करते है और उन्हें उत्साह एवं जोश के साथ कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करते है ।

अभिप्रेरणा

अभिप्रेरणा प्रबन्ध का एक व्यापक कार्य है जो मानव शक्ति से सम्बन्ध रखता है । अत: यह ठीक ही कहा गया है कि अभिप्रेरणा प्रबन्ध का मानवीय पहलू है । उत्पादन के विभिन्न साधनों में मानव एक सक्रिय सजीव साधन है जो अन्य निष्क्रिय साधनों को गति प्रदान करता है । यदि मानव स्वयं शिथिल हो जाता है तो अन्य सभी साधन स्वत: ही अवरूद्ध हो जाते हैं । इसलिए कर्मचारियों पर अत्येधिक ध्यान दिया जाना चाहिए । उनके साथ मानवता का व्यवहार किया जाना चाहिए और उन्हें कार्य हेतु अभिप्रेरित करना चाहिए । यह ऐसा कार्य है जिसके द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु एक संस्था में कार्यरत व्यक्तियों को स्वेच्छापूर्वक कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है । इस हेतु प्रबन्ध कर्मचारियों को वित्तीय और अवित्तीय प्रेरणाएं प्रदान करते है । वित्तीय प्रेरणाओं से तात्पर्य उन अभिप्रेरणाओं से है जो

नकद के रूप में दी जाती हें और अवित्तीय अभिप्रेरणाओं से आशय जक के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में दी जाने वाली प्रेरणाओं से है ।

समन्वय

समन्वय को बहुत से विद्वानों ने प्रबन्धक का एक पृथक कार्य नहीं माना है । अत: उन्होने प्रबन्ध के कार्यो की सूची में इसे सम्मिलित नहीं किया है । लेकिन आधुनिक विचारधारा के अनुसार यह प्रबन्ध का एक प्रकार्य मात्र ही नहीं है अपितु प्रबन्ध-प्रकिया का सार है । किसी भी उपक्रम के निर्बाध संचालन के लिए यह आवश्यक है कि उसके समस्त विभागों में की जाने वाली कियाओं में तालमेल बना रहे । रामन्वय इस उद्देश्य की पूर्ति करता है । यह उपक्रम में सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु किये जाने वाले समस्त सामूहिक प्रयासो में एकता बनाये रखता है। हेवर्ड एण्ड जॉनसन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि संसार के समस्त कार्य सही समय पर सरलता एवं शीघ्रता से सम्पन्न किये जा सकते हैं यदि सभी व्यक्ति स्वैच्छिक सहयोग प्रदान करें। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सामूहिक प्रयासों में सामन्जस्य अति आवश्यक है ।

नियन्त्रण

प्रबन्ध के कार्य नियोजन, संगठन, निर्देशन, अभिप्रेरणा एवं समन्वय का प्रभावी का से होता रहे तो प्रबन्ध के लिए कोई कार्य शेष नहीं रहता । लेकिन मनुष्य द्वारा त्रुटि करना स्वाभाविक है अत: प्रबन्ध के सभी कार्यो की जाँच-पड़ताल आवश्यक है । नियोजन किया गया है, अभिप्रेरणा से सकारात्मक प्रभावों की प्राप्ति नहीं हुई है और प्रयासों में उचित समत्वय का अभाव है तो इन सभी की जाँच के लिए नियन्त्रण अति आवश्यक है । नियन्त्रण से आशय निर्धारित लभ्य की प्राप्ति हेतु किये जा रहे प्रयासों की जांच करना एवं उनमें किसी प्रकार की त्रुटि की दशा में दूर करना है । इस प्रकार नियन्त्रण में जाँच पडताल के साथ-साथ सुधारात्मक उपाय भी सम्मिलित हैं ।

नियुक्तियाँ'

कून्टज एवं औ,डोनैल के अजुरगर नियुक्तियां प्रबन्ध का प्रमुख कार्य है । किसी कार्य के अन्तर्गत संगठन की योजनाजुसार आवश्यक पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण देना, एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानान्तरित करना और अवकाश देना आदि है । सही कार्य पर सही व्यक्ति की नियुक्ति अत्यन्त आवश्यक है, अत: प्रबन्धक को पक्षपात रहित नियुक्तियां करनी चाहिए । योग्य एवं अजुभवी कर्मचारी संस्था की सम्पत्ति होते हैं और अपने पारिश्रम से संस्था की प्रगति में चार चांद लगा देते है । नवनियुक्त कर्मचारियों एवं विद्यमान कर्मचारियों को नवीनतम तकनीकों से अवगत कराने के लिऐ प्रशिक्षण का विशेष महत्व होता है। प्रशिक्षण देने की अनेक विधियां है लेकिन वही विधि संस्था के लिए हितकार होती है जो न्यूनतम लागत पर कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करती है ।

नवप्रवर्तन

अनेक प्रबन्ध शास्त्रियों का मत है कि नवप्रवर्तन प्रबन्ध का कोई पृथक कार्य नहीं है । उनका मानना है कि नियोजन कार्य में ही नवप्रवर्तन कार्य सम्मिलित है लेकिन आधुनिक विचारक इस कार्य को एक पृथक कार्य के रूप में स्वीकार करते है । अर्नेस्ट डेल के अनुसार

प्रबन्ध का एक पृथक एवं आवश्यक कार्य है । उनके अनुसार नव प्रवर्तन केवल तकनीकी खोज या नवीन एवं सुधरे हुए सेवाओं व उत्पादों तक ही सीमित नहीं है । इसके अन्तर्गत किसी भी प्रकार की नवीन कार्य पद्वतियों को भी सम्मिलित किया जाता है जो निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होती है । साधारण शब्दों में नवप्रवर्तन का अर्थ उत्पादन के एक नये डिजाइन, एक नई उत्पादन पद्धति या एक नई विपणन तकनीक से लिया जा सकता है ।

सम्प्रेषण

आधुनिक युग तकनीकी युग है जहां तकनीक के उपयोग से एक ओर भीमकाय उत्पादन सम्भव हुआ है वही दूसरी ओर प्रत्येक उद्योग में कार्य करने वाले व्यक्तियों की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है । अत: किसी संस्था में सभी व्यक्तियों को एक सूत्र में पिरोने के लिए सम्प्रेषण व्यवस्था का स्थान महत्वपूर्ण है ।

प्रबन्ध के विभिन्न कार्यो के सफल क्रियान्वयन टो सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण स्थान है । पीटर्स के अजुरगर "अच्छा सम्प्रेषण सुदृढ प्रबन्ध की जीव है ।" किसी संस्था में प्रबन्ध सम्प्रेषण के माध्यम से ही विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करता है और अपनी प्रबन्धकीय क्रियाओं जैसे नियोजन, संगठन, समन्वयन ,निर्देशन, एवं नियंत्रण का सफलतापूर्वक निष्पादन करता है । पीटरसन एवं प्लोमैन ने ठीक ही कहा है कि "सम्प्रेषण प्रबन्ध का एक आवश्यक कार्य है ।"

प्रबन्ध के स्तर

व्यवसाय के प्रारम्भिक चरणों में जब सेवा/उत्पादन का कार्य सीमित पैमाने पर किया जाता था तब प्रबन्ध के केवल दो स्तर विद्यमान थे । इसमें से प्रथम स्तर पर स्वामी या व्यवसाय में पूंजी लगाने वाले और द्वितीय स्तर पर प्रबन्धक या पर्यवेक्षक हुआ करते थे । व्यवसाय के स्वामी को उच्च स्तरीय प्रबन्ध में और प्रबन्धक या पर्यवेक्षक को निम्न स्तरीय या पर्यवेक्षीय प्रबन्ध मे सम्मलित किया जाता था । लेकिन जैसे-जैसे सेवा/उत्पादन का कार्य बड़े पैमाने पर किया जाने लगा, एक ही छत के नीचे कार्य करने वाले कर्मचारियो की संख्या में वृद्धि होने लगी, कार्य अलग-अलग स्थानों पर होने लगा, उत्पादन विधियों में तकनीकी परिवर्तन होने लगे, पर्यवेक्षक के नियन्त्रण के विस्तार में वृद्धि होने लगी, वैसे-वैसे प्रबन्ध जगत में एक और स्तर का विकास हुआ जिसे हम मध्यवर्गीय प्रबन्ध के नाम से पुकारते है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रबन्ध के तृतीय स्तर "मध्यमवर्गीय प्रबन्ध" का प्रादुर्भाव विस्तृत पैमाने पर उत्पादन, क्रर्मचारियों की संख्या में वृद्धि, नवीन प्रबन्ध तकनीकों के विकास और नियन्त्रण के विस्तार के क्षेत्र में वृद्धि आदि के कारण हुआ है । व्यवसाय के स्वरूप में परिवर्तन जैसे एकल व्यवसाय से साझेदारी, साझेदारी से कम्पनी और कम्पनी से निगम अथवा सार्वजनिक उपक्रम भी प्रबन्ध के नये मध्यमवर्गीय स्तर के प्रादुर्भाव एवं विकास का मुख्य आधार रहा है ।
सामान्यत: व्यवसायिक संगख्तों में प्रबन्ध के निम्न स्तर देखने को मिलते हैं: -

1- उच्चस्तरीय प्रबन्ध।
2- मध्यम स्तरीय प्रबन्ध
3- निम्नस्तरीय प्रबन्ध

स्वामित्व	अंशधारी
उच्चस्तरीय प्रबन्ध	मुख्य अधिषारसी । प्रबन्ध संचालक । महाप्रबन्धक वरिष्ठ अधिषारसी । विभिन्न उपाध्यक्ष । विभिन्न महाप्रबन्धक
मध्यमस्तरीय प्रबन्ध	विभागाध्यक्ष । उप- विभागाध्यक्ष तकनीकी एवं इंजीनियरिंग क्रमचारी (उत्पादन से संबधित)
निम्नस्तरीय प्रबन्ध	कार्यालय प्रबन्धक । सुपरिण्टेण्डेटस (अधिक्षक) । जनरल फोरमैन । फॉरमैन । प्रथम लाइन पर्यवेक्षक

1.5 प्रबन्ध के सिद्धान्त

प्रबन्ध के सिद्धांन्त का अध्ययन करते समय विवेकशील व्यक्तियों के मस्तिष्क में कुछ प्रश्न स्वत: उत्पन्न हो जाते हैं । जैसे पर्यटन के क्षेत्र में इन सिद्धानों की क्या आवश्यकता है? क्या प्रबन्ध इन सिद्धान्तों का सहारा लिये बिना अपने कार्यो का निष्पादन नहीं कर सकता है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर निम्न विवेचन से प्राप्त होता है:-

फांस के प्रसिद्ध उधोगपति हेनरी फेयोल प्रबन्ध के क्षेत्र में क्रियात्मक दृष्टिकोण के प्रतिगदक थे । उनकी यह मान्यता थी कि औद्यौगिक संस्थाओं के प्रबन्धकों को प्रबन्ध के कुछ समान्य आधारभूत सिद्धान्तों का ज्ञान होना आवश्यक है । अत: उन्होंने प्रबन्ध के कुछ सामान्य आधारभूत सिद्धांन्तों का प्रतिपादन किया । कुछ व्यक्ति इन्हें प्रशासन के सिद्धान्त मानते हैं । इन्होंने अपनी । पुस्तक के प्रथम भाग में इन सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन किया है । हेनरी फेयोल द्वारा प्रतिपादित प्रबन्ध के 14 सिद्धान्त निम्नलिखित है:-

(i) कार्य का विभाजन

फेयोल के अनुसार इस सिद्धाब्ल का प्रयोग प्रबन्धकीय और तकनीकी सभी कार्यो के लिए किया जाना चाहिए । फेयोल का मानना था कि विशिष्टीकरण और प्रमाणीकरण का

अधिकांश लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से यथासम्भव उपक्रम के प्रत्येक कार्य का निष्पादन श्रम-विभाजन के के सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिये ।

(ii) अधिकार और उत्तरदायित्व-.

अधिकार और उत्तरदायित्व आपस में एक दूसरे से सम्बन्धित शब्द है । अत: यह कहा जाता है कि अधिकार और उत्तरदायित्व साथ-साथ चलते हैं । फेयोल के मतानुसार अधिकार और उत्तरदायित्व राहगामी है अर्थात यदि किसी व्यक्ति को कोई कार्यभार सौंपा जाये तो उसे इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिये अधिकार भी दिए जाने चाहिए तथा यदि किसी व्यक्ति को कोई अधिकार प्राप्त हैं तो उसे उससे सम्बन्धित उत्तरदायित्व भी समझाये जाने चाहिए ।

(iii) अनुशासन-

अनुशासन के अन्तर्गत कर्मचारियों की आज्ञाकारिता, व्यवहार, शक्ति, और आदर भाव सम्मिलित है । वास्तव में अनुशासन एक ऐसी शक्ति है जो व्यक्तियों के समूह को किसी संस्था में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में रूकावट डालने वाले कार्यो को करने से रोकती है ।

(iv) आदेश की एकता-

इस सिद्धान्त का आशय यह है कि एक कर्मचारी को केवल एक ही अधिकारी से आदेश एवं निर्देश प्राप्त होने चाहिये एक से अधिक अधिकारी से आदेश प्राप्त होने की दशा में कर्मचारी न केवल अमित ही होगा अपितु अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह भी ठीक ढंग से नहीं कर पाएगा।

(v) निर्दोष की एकता-

इस सिद्धान्त के अनुसार एक समान उद्देश्य वाली समस्त क्रियाओं के लिए एक ही योजना के अन्तर्गत एक ही अधिकारी द्वारा निर्देशन होना चाहिए ताकि सामूहिक उद्देश्य: वाली सभी क्रियाओं में पूर्ण समनय रहे ।

(vi) सामूहिक हितों के लिए वैयक्तिक हितों का समर्पण-

फेयोल के मतानुसार निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति एवं संस्था की प्रगति के लिए आवश्यकता पड़ने पर प्रबन्धकों को सामूहिक हितों के लिए वैयक्तिक हितों का समर्पण कर देना चाहिए । उनके अनुसार यद्यपि प्रबन्धकों को वैयक्तिक और सामूहिक हितों में समन्वय रखना चाहिए फिर भी यदि इनमें अवरोध उत्पन्न हो जाये तो उन्हें सामूहिक हितों की रक्षा के लिए वैयक्तिक हितों का समर्पण कर देना चाहिए ।

(vii) पारिश्रमिक-

प्रबन्ध के इस सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारियों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक और पारिश्रमिक के भुगतान की पद्धति सन्तोषजनक एवं न्याययुक्त होनी चाहिये ।

(viii) केन्द्रीयकरण-

फेयोल के मतानुसार किसी उपक्रम में अधिकारों का केन्द्रीयकरण किस सीमा तक हो यह संख्या की प्रकृति, अधीनस्थ की कार्यकुशलता और विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करता है ।

(ix) पदाधिकारी सम्पर्क श्रृंखला-

इस सिद्धान्त के अनुसार संगठनस में आदेशों, निर्देशों, सुझावों एवं याचनाओं का सम्प्रेषण पदानुक्रम के अनुरूप होना चाहिये ताकि समन्वय में कठिनाई न हो । इन्होंने आगे यह भी स्पष्ट किया कि कोई भी पदाधिकारी आवश्यकता पड़ने पर इरा सम्पर्क श्रृंखला का उल्लंघन करके किसी भी अन्य पदाधिकारी से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर सकता है ।

(x) व्यवस्था

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत किसी संस्था में सामग्री उपकरण और कर्मचारी आदि सभी की व्यवस्था सम्मिलित होती है । यह सिद्धान्त प्रत्येक वस्तु (प्रत्येक व्यक्ति)के लिए निश्चित स्थान और प्रत्येक वस्तु (प्रत्येक व्यक्ति)अपने स्थान पर हो पर बल देता है ।

(xi) समता-

फेयोल के मतानुसार कर्मचारियों में रूचि, लगन, परिश्रम, कार्य-क्षमता आदि के कार्य करने और संस्था के प्रति निष्ठावान रहने की भावना जाग्रत करने के लिए प्रबन्धकों को उनके साथ समता अर्थात न्याय एवं उदारता का व्यवहार करना चाहिए ।

(xii) कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थिरता-

फेयोल के मतानुसार किसी उपक्रम में कार्य करने वाले कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थिरता न केवल इसलिए आवश्यक है कि वे अपने आपको संस्था से समायोजित कर ले अपितु इसलिए भी आवश्यक है कि वे नवीन कार्यो को आसानी से सीख लें और उनका कुशलतापूर्वक निष्पादन कर लें ।

(xiii) पहलपन

पहलपन से आशय कर्मचारियों को किसी योजना के प्रस्तावित करने और उसका क्रियान्वयन करने की स्वतन्त्रता से है । फेयोल की यह मान्यता थी कि कर्मचारियों को किसी योजना को प्रस्तावित करने एवं उसके क्रियान्वयन की स्वतन्त्रता देने से उनकी कार्यक्षमता एवं उत्साह में वृद्धि होती है ।

(xiv) सहयोग की भावना

सहयोग की भावना का सिद्धान्त आदेश की एकता के सिद्धान्त का ही है । यह सिद्धान्त 'सध ही शक्ति' पर बल देता है । जब किसी संस्था में अनेक व्यक्ति एक साथ करते हैं तो उनमें आपस में मतभेद होना स्वाभाविक ही है । अत: यह सिद्धान्त इस बात पर जोर देता कि उनमें मतभेद. के स्थान पर एक साथ मिलकर कार्य करने की भावना होनी चाहिए ।

प्रबन्ध के उपयुक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ अन्य सिद्धान्त निम्नलिखित है : -

1- उद्देश्य का सिद्धान्त- ।

2- नियोजन का सिद्धान्त ।

3- नीति-निर्धारण का सिद्धान्त ।

4- अपवाद का सिद्धान्त ।

5- प्रमाणीकरण का सिद्धान्त ।

6- नियन्त्रण के विस्तार का सिद्धान्त ।

(1) उद्देश्य का सिद्धान्त-

यह सिद्धान्त यह बताता है कि संस्था के उद्देश्य पूर्णतया स्पष्ट होने चाहिए और सभी कर्मचारियों जिनके द्वारा उनकी प्राप्ति करनी है को इनकी पूर्ण जानकारी होनी ।

(2) नियोजन का सिद्धान्त-

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक कार्य पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार जाना चाहिए ।

(3) नीति निर्धारण का सिद्धान्त-

नीति निर्धारण का कार्य उच्च प्रबन्ध का होता है । इस सिद्धान्त के अनुसार नितियां वास्तविक तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए ।

(4) अपवाद का सिद्धान्त-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन एफ.डब्ल्यू।टेलर द्वारा किया गया । इस सिद्धान्त की यह मान्यता है कि प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक प्रबन्धक को अपने अधिकारों की सीमा के अन्तर्गत आवश्यक निर्णय ले लेने चाहिए इन्हें वे ही मामले उच्च प्रबन्धकी के लिए छेड़ने चाहिए जो इनकी समझ या छैल के बाहर हो । अन्य शब्दो में, अपवादजनक स्थितियां और मामले ही उच्च प्रबन्धोकों के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने चाहिए ।

(5) प्रमापीकरण का सिद्धान्त-

प्रबन्धक अच्छी किस्म का अधिक उत्पादन उसी समय प्राप्त कर सकता है कि जबकि कच्चा माल प्रमापित किस्म का हो, प्रयोग में आने वाले औजार प्रमापित किस्म के और उत्पादन विधि भी प्रमापित हो । जॉर्ज आर. टेरी के अनुसार "प्रमापीकरण न केवल क्रमचारीयों की कार्यकुशलता में ही वृद्धि करता है अपितु निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में भी सहायक सिद्ध, है।"

(6) नियन्त्रण के विस्तार का सिद्धान्त-

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक ग्रेकुनाज है । उनकी यह मान्यता है कि एक प्रबन्धक चाहे कितना भी योग्य एवं अजुभवी क्यों न हो वह असंख्य व्यक्तियों के कार्यो का निर्देशन नहीं कर सकता । एक प्रबन्धक कुछ ही व्यक्तियों पर नियन्त्रण रख सकता है । नियन्त्रण के विस्तार से आशय अधीनस्थों की उस संख्या से है जिन पर एक प्रबन्धक कुशलतापूर्वक नियन्त्रण रखता है ।

1.6 प्रबन्ध का महत्व

प्राचीन काल में पर्यटन का कार्य छोटे पैमाने पर किया जाता था और पर्यटन प्रणाली भी अत्यन्त सरल थी, अत: पर्यटन में प्रबन्ध का कोई विशेष महत्व नहीं था । लेकिन धीरे-धीरे पर्यटन व यात्रा कार्य बड़े पैमाने पर किया जाने लगा और उत्पादन विधियों में वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के कारण अनेक परिवर्तन होने लगे । न्यूनतम लागत पर अधिक लाभ एक समस्या बन गयी और कार्य में अनेक जटिलताएं आने लग गयी । इन जटिलताओं का सामना करने के लिए प्रबन्ध विशेषज्ञों की आवश्यकता महसूस हुई और प्रबन्ध का महत्व दिन-दुगुनी रात-चौगनी दर से बढ़ता गया । जार्ज आर.टेरी के अनुसार "कोई भी उपक्रम बिना प्रभावी प्रबन्ध के अधिक समय तक सफल नहीं हो सकता । बहुत सीमा तक अनेक आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक लक्ष्यों की प्राप्ति योग्य प्रबन्धकों पर निर्भर करती है ।" इस प्रकार स्पष्ट है कि न

केवल व्यवसाय में अपितु जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रबन्ध का अद्‌वितीय स्थान है । प्रबन्ध प्रशिक्षण संस्थाओं, औषधालयों, सैनिक संगठनों, लघु एवं वृहत आकार के औधोगिका/सेवा प्रतिष्ठानों, श्रम संगठनों आदि के लिए भी अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं अत: अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने ठीक ही कहा है कि "एक सरकार बिना अच्छे प्रबन्ध के एक मिट्टी से बने हुए मकान के समान है ।" संक्षेप में प्रबन्ध का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है-

(1) न्यून्तम प्रयत्नों द्‌वारा अधिकतम परिणामों की प्राप्ति के लिए-

प्रबन्धक एक ऐसी शक्ति है जिसके माध्यम से न्यूनतम प्रयत्नों द्‌वारा अधिकतम परिणामों की प्राप्ति सम्भव होती है । अत: वर्तमान में प्रबन्ध का महत्व एक समन्वयकारी शक्ति के रूप में बढ़ता जा रहा है प्रबन्ध निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उत्पादन के विभिन्न साधनों में प्रभावपूर्ण समन्वय स्थापित करता है और कम से कम प्रयासों द्‌वारा अधिक रो अधिक परिणामों की प्राप्ति सम्भव बनाता है ।

(2) तीव्र प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए-

आज व्यवसाय केवल स्थानीय, राज्यीय, अन्तर्राज्यीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही नहीं किया जाता अपितु अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी किया जाता है । अत: ज्यों-ज्यों उत्पादन के पैमाने में वृद्धि हो रही है और बाजारों का विकास हो रहा है त्यों-त्यों जटिलताओं में वृद्धि हो रही है । इस गलाकाट प्रतिस्पर्धा के युग में वही व्यवसायी टिक सकता है जो न्यूनतम लागत पर अधिकतम लाभ करने में सफल होता है । इस अवस्था में प्रबन्ध ही इसे सम्भव बनाता है ।

(3) निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए-

प्रबन्धक अपने विशिष्ट ज्ञान के आधार पर भावी घटनाओं का अनुमान लगाते है, योजनाएं बनाते हैं, उपयोजनाएं बनाते हैं, संगठन की सरंचना करते हैं । वे विभिन्न क्रियाओं में समन्वय स्थापित करते है, कचियाओ का निर्देशन करते है, नियंत्रण स्थापित करते है, कर्मचारियों। को प्रेरणाएं प्रदान करते है और प्राप्त परिणामों का मूल्यांकन करते है ।

(4) वैज्ञानिक एवं तकनीकी परिवर्तनों को लागू करने के लिए-

इस शताब्दी में विज्ञान ने इतनी प्रगति की है कि व्यक्ति आज के युग को विज्ञान का युग कहकर पुकारने लगे हैं । विज्ञान ने जब आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक सभी में अपनी अमिट छाप छोड़ी है तो भला पर्यटन क्षेत्र इससे कैसे वंचित रह सकता है? वैज्ञानिक एवं तकनीकी परिवर्तनों को लागू करने के लिए योग्य एवं अनुभवी प्रबन्धक की आवश्यकता होती है । कुशल प्रबन्धक ही इन्हें लागू कर समन्वय की समस्या का हल प्रस्तुत कर सकता है ।

(5) व्यक्तियों के विकास के लिए-

लारेन्स ए.एले ने ठीक ही कहा है, "प्रबन्ध व्यक्तियों का विकास है न कि वस्तुओं का निर्देशन ।" वास्तव में प्रबन्ध की सम्पूर्ण क्रियाएं मानवीय व्यवहार से सम्बन्धित।_ ही होती हैं। कुशल प्रबन्ध निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए और व्यक्तियों के विकार। के लिए समूह

लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं, इसकी प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं, कर्मचारियों की भर्ती करते हैं, कर्मचारियों का चयन करते हैं एवं उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करते हैं ।

(6) श्रम समस्याओं के समाधान के लिए-

प्रबन्धक अपने ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर श्रम समस्याओं का उचित समाधान करते है, कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करते हैं, पदोन्नति एवं विकास करे अवसर प्रदान करते है, वित्तीय एवं वित्तीय प्रेरणाएं प्रदान करते है, प्रबन्ध में भागीदार बनाते है, लाभों में उचित हिस्सा देते है एवं उनकी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को बनाये रखते हैं । इरा प्रकार श्रम समस्याओं के समाधान में प्रबन्ध का विशेष महत्व है ।

(7) सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए-

परम्परागत प्रबन्ध के अन्तर्गत स्वामित्व और प्रबन्ध में कोई अलगाव नहीं था, अत: प्रबन्धकों का केवल अपने स्वामियों के प्रति ही उत्तरदायित्व होता था । प्रबन्धक कर्मचारियों; उपभोक्तो, आपूर्तिकर्ताओं, समुदाय, अन्य व्यावसायिक संस्थाओं के स्वामियों एवं सरकार के प्रति अपना कोई उत्तरदायित्व नहीं समझते थे । लेकिन आज परिस्थितियों ने मोड़ ले लिया है और स्वामित्व एवं प्रबन्ध में अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी है । अत: प्रबन्धकों को अपने स्वामियों के अतिरिक्त समाज के विभिन्न अंगों के प्रति भी उत्तरदात्वों को निभाना होता है ।

प्रबन्ध की प्रकृति

प्रबन्ध की प्रकृति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों में मतैक्य नहीं है क्योंकि इसकी विचारधारा अति प्राचीन और गतिशील है । इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक ,युग ने प्रबन्ध को नवीनता देने का प्रयास किया है । फलस्वरूप प्रबन्ध विचारधारा और इसकी प्रकृति में निरन्तर एवं व्यापक परिवर्तन हुए हैं । हम निम्नांकित तालिका में विभिन्न विद्वानों के योगदान के अनुरूप प्रबन्ध की प्रकृति का अध्ययन कर सकते है:-

स.क.	द्वार का नाम	प्रबन्ध की प्रकृति
1.	जी. ई. मिलवर्ड	प्रबन्ध प्रक्रिया और एजेन्सी के रूप
2.	लॉरेन्स एप्पल	में ।
3.	एफ. डब्ल्यू टेलर	प्रबन्ध कार्मिक प्रशासन के रूप में । प्रबन्ध तकनीकी निश्चयवादी
4.	ई. एफ. एल. ब्रेच	और विज्ञान एवं कला के रूप में । प्रबन्ध सामाजिक प्रकिया और विभिन्न उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के
5.	पीटरसन एवं प्लोमैन	रूप में।
6.	जॉर्ज आर. टेरी	प्रबन्ध एक तकनीक के रूप में ।
7.	सी. डब्ल्यू विलसन	प्रबन्ध एक पृथक किया के रूप में । प्रबन्ध मानवीय शक्तियों के प्रयोग एवं
8.	रॉल मूरे	निर्देशन की एक प्रकिया के रूप में ।
9.	हेनरी फेयोल	प्रबन्ध निर्णयन के रूप में ।

10.	ओलिवर शेल्डन	प्रबन्ध सार्वभौमिकता के रूप में ।
11.	आर.सी. डेविस	प्रबन्ध समझौते की भावना के रूप में ।
12.	मेरी कुशिंग नाइल्स	प्रबन्ध एक मानसिक क्रिया के रूप में
13.	जॉन एफ मी.	प्रबन्ध सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के रूप में ।
14.	कुन्टज और औडोनेल	प्रबन्ध एक कला और आर्थिक विकास की कुन्नी के रूप में ।
15.	किम्बाल	प्रबन्ध अन्य व्यक्तियों रो कार्य सम्पादित कराने की कला के रूप में। प्रबन्ध एक कला के रूप में ।

प्रबन्ध की प्रकृति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचारों का अध्ययन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि प्रबन्ध एक विस्तृत शब्द है जिसकी प्रकृति को कुछ गिने-चुने शकों में स्पष्ट नहीं किया जा सकता । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रबन्ध की प्रकृति को निम्न शीर्षकों द्वारा समझा जा सकता है:-

1- प्रबन्ध एक प्रकिया के रूप में ।

2- प्रबन्ध जन्मजात और अर्जित प्रतिभा के रूप में ।

3- प्रबन्ध एक विज्ञान और कला के रूप में ।

4- प्रबन्ध एक पेशे के रूप में ।

5- प्रबन्ध एक प्रणाली के रूप में ।

6- प्रबन्ध का सामाजिक उत्तरदायित्व ।

1.7 पर्यटन में प्रबन्धकीय बिन्दु

वर्तमान में संगठन तथा वातावरण की जटिलताओं के कारण प्रबन्धक का कार्य कठिन हो गया है । समय-समय पर इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रबन्ध के विभिन्न सिद्धान्तों का अनुपालन व उन्हे संगठन में लागू करना प्रबन्धक के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है । एक प्रबन्धक होने के जाते पर्यटन सेवाओं में प्रबन्ध के विभिन्न पहलू व परिक्षेत्रों की जानकारी होना आपके लिए अत्यन्त आवश्यक है । कुछ प्रमुख पहलू निम्नलिखित है:-

1- मानव संसाधन विकास

पिछले दो तीन वर्षों में भारत ने पर्यटन ने क्षेत्र में अच्छी वृद्धि देखने को मिल रही है, के आधार पर यह स्पष्ट है कि घरेलू व विदेशी पर्यटन में लगभग 20 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है । लेकिन कुशल मानव संसाधन का अभाव हमारे देश में अभी है । यूं तो देश में लगभग 35 विश्वविद्यालय व भारत सरकार के पर्यटन संस्थान शैक्षणिक पाठयक्रम के माध्यम से मानव संसाधन की कुशलता का विकास कर रहे हैं, तथापि ग्राहकों द्वारा चाही गई नई-नई आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति करने हेतु अच्छे कर्मचारियों का होना आवश्यक है ।

2- स्थल नियोजन

पर्यटन में स्थल-नियोजन व उसका रख-रखाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है । व्यवसायी वर्ग चाहे सरकारी हो या निजी पर्यटन स्थलों से अधिक लाभ अर्जित करते है । उत्तरदायित्व नाम से मुख मोड़ लेते हैं । आज आवश्यकता इस बात की है कि स्थल के विकाश उस स्थल विशेष के नागरिकों को भी शामिल किया जाये तथा स्थल जीवन-चक व भार वहन क्षमता पर विशेष बल दिया जाये तथा तदनुरूप ही योजनाएं बनाई जाये ।

3- परिवर्तनीय अपेक्षाएं

आज प्रबन्धक के समक्ष एक अन्य चुनौती यह भी है कि पर्यटक बार नई वस्तु तथा सेवाओं की अपेक्षाएं रखता है । प्रबन्धक को उनकी जरूरतों को पूरा करना है । यह कार्य कठिन है, क्योंकि पर्यटक भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आता है ।

4- नेटवर्किंग

पर्यटन एक वस्तु न होते हुऐ भी वस्तुओं का समूह है । इस समूह में, परिवहन, गाईडिंग, संदेशवाहन, सुरक्षा, सुविधायें, बाजार इत्यादि सम्मिलित हैं । एक प्रबन्धक को इन सभी के मध व उचित सामंजस्य बिठाना चाहिये जिससे पर्यकों को सन्तुष्ट किया ' जा सके ।

5- उत्पाद विकास

प्राय: यह देखा गया है कि किसी स्थल विशेष या वस्तु विशेष को स्थापित तो कर दिया जाता है परन्तु उसका निरन्तर विकास नहीं किया जाता जिसकी पर्यटन में नितान्त आवश्यकता है । शिमला, नैनिताल, मसूरी आदि स्थल इसी कारण से पर्यकों की पहली पसंद अग, नही कहते है । पर्यटक अब नए-नए स्थलों पर जाना चाहता है चूंकि वह एक ही वस्तु, सेवा,. से उकता जाता है ।

6- तकनीक

पर्यटन और तकनीक में सामंजस्य बिठाना प्रबन्धक के लिये अत्यन्त आवश्यक है । फैक्स मशीनी, इन्टरनेट, मोबाइल फोन. लेपटोप आदि उत्पाद अब जरूरत बन गये है । व्यवसाय की सफलता हेतु प्रबन्धक को सही समय पर सही तकनीक का उपयोग करना अवश्य है । प्रबन्धक को चाहिये की समय-समय पर नई तकनीक की जानकारी वह अपने कर्मचारियों को देता रहे और आवश्यकता पड़ने पर प्रशिक्षण हेतु उन्हें बाहर भी भेजे ।

7- बाजार की समझ

पर्यटन एक जटिल उद्योग है तथा इस बाजार में आए दिन नित्य नये परिवर्तन देखने को मिलते हैं । प्रबन्धक को बाजार की आवश्यकताओं व नए परिदृश्यों समझना होगा जिससे उपभोक्ताओं को सन्तुष्ट किया जा सके । इस हेतु राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय बाजार की समझ रखना अत्यन्त आवश्यक है ।

8- आपदा प्रबन्ध

वर्तमान में प्रबन्धकों के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है, चाहे वह आपदा मानव निर्मित हो या आपदा प्रबन्धन प्राकृतिक हो । भारत में आतंकवाद, बीमारियों, (इन्सान व पशु-पक्षी सम्बन्धी), भूकम्प, सुनाम, बाढ़ आदि से समय-समय पर पर्यटन व्यवसाय प्रभावित होता रहा है । यह समस्या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी पर्यटन व्यवसाय को प्रभावित करती है । प्रकट को उचित आपदा प्रबन्धन कर अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करना चाहिये।

1.8 सारांश

पर्यटन संगठन में प्रबन्ध का महत्वपूर्ण स्थान है । किसी भी अन्य इकाई की भाँति पर्यटन व्यवसाय में भी व्यवस्थापक को प्रबन्ध के विभिन्न पहलुओं की जानकारी होना अनिवार्य है । उपरोक्त विवेचना में इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि आपको एक व्यवस्थापक के रूप में प्रबन्ध की अवधारणा तथा विभिन्न विशेषताओं एवं नियोजन, संगठन, निर्देशन, समत्व, नियंत्रण आदि कार्यो की जानकारी हो सके साथ ही प्रबन्ध के विभिन्न सिद्धान्तों का ज्ञान भी हो सके । प्रबन्ध का महत्व किसी भी संस्थान में इसलिये अधिक हो जाता है कि इसके बिना कोई भी व्यवसायिक संगठन लाभ अर्जित नहीं कर सकता ।

1.9 अपनी प्रगति को जानने के लिये अभ्यास

1. प्रबन्ध को परिभाषित कीजिए?

....

....

....

2. प्रबन्ध की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए?

....

....

....

3. एक पर्यटन इकाई में आप प्रबन्ध के सिद्धान्तों का प्रयोग किस प्रकार करेंगे?

....

....

....

4. पर्यटन के विकास में प्रबन्ध का योगदान किस प्रकार हो सकता है?

....

....

....

इकाई-2 प्रबन्धकीय विचारधारा का विकास

ढाँचा

2.1 परिचय
2.2 प्रारम्भिक इतिहास
2.3 प्रबन्ध विचारधारा एवं प्रारम्भिक औधौगिक प्रणालियाँ
2.4 प्रबन्धकीय विचारधाराओं में टेलर का योगदान
2.5 प्रबन्धकीय विचारधाराओं में फेयोल का योगदान
2.6 औद्योगिक क्रान्ति का प्रबन्ध विचारधारा पर प्रभाव
2.7 प्रबन्ध विचारधारा के विभिन्न स्कूल
2.8 सारांश
2.9 अपनी प्रगति को जानने के लिये अभ्यास

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानने के लिए सक्षम होंगे:-

- प्रबन्धकीय विचार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ।
- प्रबन्धकीय विचारधारा एवं प्रारम्भिक औद्योगिक प्रणालियां ।
- औद्योगिक कान्ति का प्रबन्ध विचारधारा पर प्रभाव ।
- प्रबन्ध विचारधारा के विभिन्न स्कूल ।

2.1 परिचय

प्रबन्ध मुख्य रूप से विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दूसरों के प्रयत्नों को नियोजित, अभिप्रेरित व नियन्त्रित करने का कार्य है । इसका आशय यह है कि "प्रबन्ध वही है जो प्रबन्ध करता है" दूसरे शब्दो में प्रबन्ध वास्तव में प्रबन्ध प्रकिया में सम्मिलित तीन विभिन्न चरणों का योग है । ये तीन चरण हैं- (1)नियोजन (2)क्रियान्वयन और (3)नियन्त्रण ।

2.2 प्रारम्भिक इतिहास

प्रबन्ध -जगत में हुए नवीन परिवर्तनों के कारण भले ही यह कहा जाये कि प्रबन्ध विज्ञान कुछ सीमा तक एक नवीन विज्ञान है लेकिन इसके मौलिक सिद्धान्त उतने ही प्राचीन है जितना कि मानव इतिहास । अत: इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्रबन्ध विचारधारा का इतिहास मानव सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास से जुड़ा है । सी.एन. गेगर के अनुसार" प्रबन्ध के विकास की कहानी आवश्यकीय तौर पर मानव कल्याण ही कहानी है ।" यह सर्वविदित तथ्य है कि सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सामूहिक प्रयासों को नियोजित, संगठित, समन्वित, निर्देशित एवं नियन्त्रित करने का कार्य आदिकाल से चला आ रहा है, अत: प्रबन्ध विचारधारा का इतिहास भी अति प्राचीन है ।

इतिहास के पृष्ठ पलटने से विदित होता है कि प्रबन्ध विज्ञान की उत्पत्ति एवं विकास की कहानी मानव सभ्यता एवं संस्कृति के प्रारम्भ एवं विकास की कहानी से जुड़ी हुई है । जब से मनुष्य ने समूह के रूप में रहना प्रारम्भ किया है तभी से प्रबन्ध विचारधारा की उत्पत्ति हुई है । लेकिन यह सत्य है कि व्यावसायिक जगत में प्रबन्ध का विकास बढ़ती हुई व्यावसायिक जटिलताओं यथा व्यवसाय के आकार में वृद्धि, व्यवसाय के स्वरूप में परिवर्तन एवं व्यवसाय के संगठनों के विभिन्न प्रारूपों के विकास के साथ ही हुआ है । विश्व के अनेक देशों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रबन्ध-विज्ञान की उत्पत्ति अति प्राचीन है । बेबीलोन, रोम, ग्रीस, चीन एवं भारत आदि राष्ट्रों का इतिहास उस समय की प्रचलित प्रबन्ध व्यवस्था द्वारा प्राप्त की गई अनेक उपलब्धियों का बहुत ही रोचक का से वर्णन प्रस्तुत करता है । मिस्त्र के विश्व प्रसिद्ध पिरामिड तत्कालीन मिश्र निवासियों की इज्जीनियरिंग दक्षता, प्रबन्ध-कुशलता एवं तकनीकी ज्ञान की कहानी प्रस्तुत करते हैं । चीन के अभिलेखागार का रक्षक एवं महान् दार्शनिक लाओत्ज्यू द्वारा मानवीय संस्थाओं के प्रबन्ध के सम्बन्ध में प्रस्तुत किय गये विचार एवं दी गई सलाह आधुनिक प्रबन्ध विचारधारा से काफी मिलती-जुलती है । ग्रीस में एथीजियन रा राष्ट्रमण्डल की विद्यमानता भी यह स्पष्ट करती है कि वहां काफी समय पूर्व ही प्रबन्ध' कार्यो के वर्गीकरण के महत्व को समझ लिया गया था । रोम में काफी समय पूर्व ही योग्य एवं व्यक्तियों के नेतृत्व में शिल्प एवं व्यापार सम्बन्धी संघ या गिल्ड्स विकसित हो चुके थे । ईसाइयों के पवित्र ग्रंथ बाईबिल में भी उल्लेख आता है कि वहां मूसा ने प्रबन्ध-कार्यो के लिए योग्य एवं कैल व्यक्तियों का चयन किया और उन्हें विभिन्न कर्मचारियों (अधीनस्थों)का प्रधान बनाया । ये चुने हुए व्यक्ति विभिन्न मामलों का निर्णय करते थे, जो मामले कठिन होते थे वे ही मूसा के समक्ष प्रस्तुत जाते थे । अत: स्पष्ट होता है कि इजराइल में उस समय भी प्रबन्ध -विज्ञान का विकास हो चुका था । भारत में भी काफी समय पूर्व लिखित कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अनेक महत्वपूर्ण प्रबन्ध नीतियों ' सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया था । मोहनजोदड़ों एवं हड़प्पा की सभ्यताएं, अजन्ता, एलोरा एवं की कलाकृतियां, भारतीय इज्जिरियरिंग कला और प्रशासकीय कुशलता का जीता-जागता प्रस्तुत करती हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हैं कि प्रबन्ध विचारधारा की उत्पत्ति काफी वर्षो पूर्व हो चुकी थी और जिन प्रबन्ध तकनीकों एवं सिद्धान्तों का आज हम प्रबन्ध जगत में प्रयोग हैं उनमें से अनेक का उस समय व्यावसायिक, गैर व्यावसायिक एवं राजनैतिक क्षेत्र की का प्रबन्ध करने में किया जाता था । अन्तर केवल इतना है कि उस समय प्रबन्ध तकनीकों एवं सिद्धान्तों के लिए जिस शब्दावली का प्रयोग किया जाता था, आज उसके स्थान पर उन्नत एवं शब्दावली का प्रयोग किया जाता है । अग्रांकित वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रबन्ध के जिन का आज प्रयोग किया जा रहा है उनका आज से कई शताब्दियों पूर्व भी प्रयोग किया । था ।

2.3 प्रबन्ध विचारधारा एवं प्रारम्भिक औद्योगिक प्रणालियाँ

प्रबन्ध विचारधारा के विकास की कहानी व्यावसायिक एवं औद्योगिक विकास की कहानी से जुड़ी हुई है । अत: प्रबन्ध विचारधारा के इतिहास का अध्ययन करते प्रारम्भिक औद्योगिक प्रणालियों का अध्ययन अत्यावश्यक है । प्रारम्भिक औद्योगिक प्रणालियों अथवा

विकास की विभिन्न अवस्थाओं को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में विभक्त जा सकता है :-

1. पारिवारिक उद्योग।
2. सामन्तवादी प्रणाली
3. हस्तकला प्रणाली
4. गिल्ड प्रणाली
5. पुष्टि आउट प्रणाली
6. कारखाना प्रणाली

(1) पारिवारिक उद्योग

औद्योगिक विकार की प्रारम्भिक अवस्था में पारिवारिक उद्योग अ उत्पादन के पारिवारिक आत्म-निर्भरता के दौर का काफी महत्व रहा है । इस प्रणाली का आशय की उपभोग की वस्तुओं का परिवार के सदस्यों द्वारा स्वयं उत्पादन करने से है । तत्कालीन ने आदिवासियों को इस कार्य के लिए बाध्य कर दिया था । इस युग को आत्म-निर्भरता की अवस्था भी कहा जाता है । इस प्रणाली के अन्तर्गत परिवार का मुखिया ही प्रबन्धक, प्रधान कारीगर, निरीक्षक एवं व्यवस्थापक हुआ करता था । यह स्वयं की वस्तुओं के उत्पादन हेतु आवश्यक सामग्री एवं उपकरणों की व्यवस्था करता था एवं परिवार के अन्य सदस्यों की सहायता से आवश्यक उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन करता था । उत्पादन का उद्देश्य मात्र परिवार की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना होता था एवं उत्पादित वस्तुओं के विनिमय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था । परिवार के मुखिया को प्रबन्धक की भूमिका निर्वाह के लिए किसी विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती थी क्योंकि उत्पादन-कार्य वर्तमान में विद्यमान जटिलताओं से पूर्णतया मुक्त था । मुखिया अपने व्यक्तिगत प्रभाव से ही परिवार के अन्य सदस्यों से कार्य ले लिया करता था । उत्पादन की विधियां एवं उपयोग में लाये जाने वाले उपकरण सरल एवं परम्परागत होते थे । इस प्रकार उपयोग प्रबन्ध का स्वरूप वैयक्तिक नेतृत्व' या 'एकल प्रबन्ध' ही था । शनै: शनै: विनिमय के प्रादुर्भाव के कारण ने परिवार के उपभोग के अतिरिक्त विनिमय के लिए भी कुछ वस्तुओं का उत्पादन किया जाने लगा लेकिन प्रबन्ध-व्यवस्था में विशेष परिवर्तन देखने को नहीं मिला ।

(2) सामन्तवादी प्रणाली

औद्योगिक विकास के सन्दर्भ में सामन्तवादी प्रणाली का विशेष महत्व रहा है । सामन्तवादी प्रणाली को जमींदारी प्रथा के नाम से भी जाना जाता है । यह उत्पादन की एक प्रणाली थी जो पूर्णतया दास प्रथा या पराधीन कृषि पर आधारित थी । पश्चिमी यूरोप के सामन्तवादी युग में स्वामी या मालिक ही भूमि, उपकरण और यहां तक कि श्रम के भी स्वामी होते थे । वे श्रमिकों को कृषि कार्य हेतु आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराते थे । इस प्रकार स्वामी ही प्रबन्धक के रूप में कार्य करते थे । इस प्रणाली में श्रमिकों को अपने श्रम का बहुत ही कम परितोषण प्राप्त होता था । कभी-कभी तो सम्पूर्ण उत्पादन पर ही इन स्वामियों (सामन्तों)का अधिकार होता था और बदले में श्रमिकों के लिए उनके द्वारा भोजन, कपड़ा और आवास की

व्यवस्था हो जाती थी । इस प्रणाली में श्रमिक की स्थिति एक पूर्ण दास के रूप में तो नहीं थी लेकिन वह स्वतन्त्र रूप मे कार्य भी नहीं कर सकता था । अन्य शब्दों में यह प्रणाली कुछ प्रभावशाली व्यक्ति द्वारा आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों के शोषण पर आधारित थी । पश्चिमी यूरोप में यह प्रणाली काफी समय तक प्रचलन में रही लेकिन 12 वीं शताब्दी के पश्चात् इस प्रणाली का विघटन प्रारम्भ हो गया । स्पष्ट है कि इस प्रणाली में स्वामी या मालिक या सामन्त ही प्रबन्धक के रूप में कार्य करता था जिसमें विशिष्ट प्रबन्धकीय योग्यताओं का होना आवश्यक नहीं था । यह ही अपने श्रमिकों की क्रियाओं को नियोजित, संगठित, समन्वित, निर्देशित एवं नियन्त्रित करता था । अत: इस युग में भी प्रबन्ध का स्वरूप वैयक्तिक नेतृत्व' या 'एकल प्रबन्ध' ही था ।

(3) हस्तकला प्रणाली

औद्योगिक विकास के क्षेत्र में सामन्तवादी प्रणाली की समाप्ति हस्तकला प्रणाली की उत्पत्ति का कारण मानी जाती है । अर्थात् सामन्तवादी प्रणाली के विघटन के पश्चात् उत्पादन की एक नवीन प्रणाली 'हस्तकला प्रणाली' या 'कारीगरी पद्धति' का प्रादुर्भाव हुआ । इस युग में कुछ व्यक्ति हस्तकला में विशेषज्ञ होते थे जो अपने पर्यवेक्षण में इच्छुक व्यक्तियों को प्रशिक्षण देते थे । प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षणार्थियों को कुछ राशि सहायतार्थ दी जाती थी । इस व्यवस्था में श्रमिक (कारीगर)स्वयं के उपकरणों का ही उत्पादन कार्य में प्रयोग करते थे और प्रधान शिल्पी के यहां न जाकर अपने घरों में ही औद्योगिक क्रियाएँ करते थे । ये कारीगर मुख्यत: कृषि के औजार, विभिन्न तरह के कपड़ों आदि का निर्माण करते थे । इस युग में कारीगरों का उत्पादन उद्देश्य विनिमय हेतु उत्पादन करना भी था । ये सामान्यतया अपने गांव के निवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भी उत्पादन-कार्य करते थे । इस समय की एक अन्य विशेषता यह थी कि मुख्य या प्रधान शिल्पी अपने यहां दक्ष कारीगरों को वेतन-भोगी कारीगर या केमरा के रूप में रखते थे । इस प्रकार इस युग में भी प्रबन्ध-विज्ञान का कोई विशेष विकास नहीं हुआ था ।

(4) गिल्ड प्रणाली

औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ औद्योगिक प्रणालियों में भी परिवर्तन हुआ । पारिवारिक उद्योग, सामन्तवादी एवं हस्तकला प्रणाली के स्थान पर एक नवीन 'गिल्ड प्रणाली' का प्रादुर्भाव हुआ । इंग्लैण्ड में 12 वी शताब्दी से 14 वी शताब्दी तक इन संघों का विकास हुआ । इंग्लैण्ड में ही इस अवधि के मध्य कारीगर संघों का विकास हुआ । इस प्रणाली के अन्तर्गत व्यवसाय करने वाले विभिन्न व्यक्ति एवं संस्थाएं अनावश्यक प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने और अपने हितो की रक्षा करने के लिए आपस में संयोजित हो गये । इन्होंने अपने व्यापार संघों को काफी सुदृढ बना दिया । इन संघों का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों एवं सदस्य इकाइयों के हितों की रक्षा करना, उनके एकाधिकार को बनाये रखना एवं आपसी व्यावसायिक मतभेदों का निपटारा करना था । इन संघों के विकास से इंग्लैण्ड और मध्य युरोपीय राष्ट्रों के तत्कालीन औद्योगिक उत्पादन में काफी वृद्धि हुई । 13 वी शताब्दी में ज्यों-ज्यों व्यवसाय का विकास हुआ और व्यवसाय में विशिष्टीकरण का प्रादुर्भाव हुआ त्यों-त्यों अनेक व्यावसायिक

जटिलताए उत्पन्न हुई । फलत: इसी (13वी)ए शताब्दी के अन्त में कारीगर संघों का प्रदुर्भाव हुआ । इन संघों का उद्देश्य कारीगरों के कार्यकाल को निश्चित करना, उनके हितों की रक्षा करना, मजूदरी का नियमन करना, आपसी मतभेदों को निपटारा एवं इनके मध्य अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा को समाप्त करना था । इन संघों ने 14वी शताब्दी तक सफलतापूर्वक कार्य किया लेकिन तीव्र गति से औद्योगिक विकास एवं पूंजीवादी प्रवृत्तियों के उद्भव ने इनका औद्योगिक जगत में टिक पाना मुश्किल कर दिया । फलत: 15वी शताब्दी में गिल्ड प्रथा का विघटन प्रारम्भ हो गया ।

(5) पुटिंग आउट प्रणाली

इंग्लैण्ड में गिल्ड व्यवस्था के चिराग जैसे ही बुझने लगे वैसे ही "पुटिंग आउट प्रणाली" का सूर्य उदय हुआ । इस प्रणाली में उत्पादन पर पूँजीपतियों का पूर्ण नियन्त्रण होता था । ये पूंजीपति वस्तु के निर्माण हेतु आवश्यक कच्चे माल एवं अव्यय समाजी की व्यवस्था करते थे । निर्मित माल के विक्रय की जोखिम भी स्वयं उठाते थे । इन पूंजीपतियों को स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों का ज्ञान होने के कारण निर्मित माल के विक्रय में कोई कठिनाई नहीं होती थी । कारीगरों की कच्चा माल उनके घर पर ले जाने दिया जाता था और अधिकांश पूंजीपति तो उनके घर पर ही स्वयं कच्चा माल पहुंचा दिया करते थे और कारीगर तैयार माल को पूंजीपतियों के हाथ सुपुर्द कर दिया करते थे कारीगर पूंजीपति बाद में इत्र माल का विक्रय करते थे । इस प्रणाली में ही मध्यस्थों का प्रादुर्भाव हुआ एवं कारीगार और उपभोक्ता के मध्य पारस्परिक सम्पर्क लगभग समाप्त हो गया । इरा प्रणाली में पूंजीपति ही प्रबन्धक के रूप में कार्य करते थे ।

इंग्लैण्ड मे यह प्रणाली सर्वप्रथम कपड़ा उद्योग में लागू की गई जहां पर्याप्त मात्रा में विशिष्टीकरण विद्यमान था । पूंजीपति पुनिया कातने वाले, बुनकर एवं रंगरेज को आवश्यक समाजी उपलब्ध कराते थे और उनसें निर्मित माल-कपड़ा प्राप्त करते थे । तत्पश्चात् सभी प्रकार की लोहे की वस्तुओं का निर्माण भी इसी व्यवस्था के अनुसार होने लगा । शनै: शनै: चमड़े की वस्तुएँ भी इसी लाट मर पर तैयारी होने लगी । अत: पुष्टि आउट प्रणाली के प्रादुर्भाव एवं विकास से इंग्लैण्ड के कपड़ा, लोहा एवं चमड़ा उद्योगों का काफी विकास हुआ ।

पुटिंग आउट प्रणाली की प्रयुक्ति इंगलैण्ड के उद्योगों में ज्यों-ज्यों बद्ने लगी वैसे-वैसे पूंजीपतियों ने कारीगरों के घर पर कच्चा माल एवं अन्य सामग्री पहुँचाना बन्द कर दिया । और उन्हें (कारीगरों)एक स्थान जिसे "काटेज" कहा जाता था, पर कार्य करने के लिए प्रेरित किया । इस प्रकार यह प्रणाली "एक स्थान पर ही निर्माण" प्रणाली में परिणित हो गई जिसने आगे चलकर कारखाना प्रणाली को जन्म दिया ।

(6) कारखाना प्रणाली

औद्योगिक विकास का अन्तिम चरण कारखाना प्रणाली माना जाता है । पुटिंग आउट प्रणाली में जब परिवर्तन हुआ और पूंजीपतियों ने एक स्थान जिसे कॉटेज कहा जाता था, पर कार्य करने के लिए कारीगरों को बुलाना प्रारम्भ कर दिया तो इस प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ । इस प्रकार यह प्रणाली पुटिंग आउट प्रणाली का ही परिवर्तित एवं विकसित स्वरूप है जिससे एक

ओर उत्पादन में वृद्धि हुई वहां दूसरी ओर औद्योगिक क्षेत्र में पूंजीवाद को बढावा दिया । यदि यह कहा जाये कि इस प्रणाली ने ही समाज में दो वर्गो अमीर एवं गरीब या पूंजीपति एवं श्रमिक को जन्म दिया तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी । इस प्रणाली ने ही इंग्लैण्ड में 1 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया । इस व्यवस्था के अन्तर्गत पूंजीपति कारीगरों को कार्य हेतु अपने कारखाने पर बुलाते, उन्हें सामग्री देते एवं नियन्त्रित करते तथा श्रमिक को अपने श्रम के बदले न्यूनतम वेतन दिया जाता । पूँजीपति स्वयं ही प्रबन्धक की भूमिका निभाते जिन्हें इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कोई विशिष्ट ज्ञान हासिल करने की आवश्यकता नही थी । इस युग में भी प्रबन्ध का स्वरूप "वैयक्तिक नेतृत्व" या "एकल प्रबन्ध" ही था । पूंजीपतियों का यह मानना था कि प्रबन्धक जन्म लेते हैं, बनाये नहीं जाते । पूंजीपति श्रमिकों की सुरक्षा, कल्याण एवं अन्य सुविधाओं की ओर भी कोई ध्यान नहीं देते थे । औद्योगिक क्षेत्र में अनुसन्धान कार्य तो मानो इनकी सीमाओं के बाहर था । अत: इस युग में पूर्णतया परम्परागत प्रबन्ध का बोलबाला था । इस युग में ही अनेक आविष्कार जैसे स्पिनिंग जैनी, वाटर फ्रेम, म्यूल, पावर लूम, भाप का इंजिन, लेथ आदि हुए । इस युग में ही बृहत् पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन किया जाने लगा और उत्पादन की विधियों एवं तकनीकों में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। फलत: औद्योगिक विकास की दिशा में एक नये युग का सूत्रपात हुआ जिसे आगे चलकर 'औद्योगिक क्रान्ति' की संज्ञा दी गई ।

2.4 प्रबन्धकीय विचारधारा मे टेलर का योगदान

परिचय

व्यक्तियों के सामूहिक प्रयासों में समन्वय स्थापित करके उनका मार्गदर्शन एवं संचालन करने का कार्य 'प्रबन्ध' कहलाता है । उस दृष्टि से प्रबन्ध के उदय व विकास की कहानी बहुत पुरानी है, क्योंकि जब से मनुष्य इस पृथ्वी पर आया है, तभी से वह समूहों में काम करता चला आ रहा है । चूकि अकेले काम कोटने से उपलब्धियाँ अपेक्षाकृत कम होती है, अत: अपनी व समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसने अन्य लोगों के साथ मिलकर समूहों में काम करना अधिक उपयुक्त समझा । "प्रबन्ध के उद्गम व विकास की कहानी, वास्तव वें मानव के विकास की कहानी है ।" इतना अवश्य है कि 'प्राचीनकाल के प्रबन्ध' एवं 'आधुनिक विज्ञान' में बहुत अन्तर रहा है । इस 'अन्तर का कारण तत्कालीन शैक्षणिक एवं तकनीकी, सामाजिक मूल्य, आर्थिक विकास की गति एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ रही हैं । फलत: 'आज प्रबन्ध का स्वरूप बिलकुल बदल गया है । प्रबन्ध के आर्थिक सिद्धान्त अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक हैं । काल में प्रबन्ध को संगठन की एक पृथक इकाई के रूप में नहीं देखा जाता था, जबकि आज प्रबन्ध का स्वतंत्र अस्तित्व हो गया है । एक मान्य पेशे के साथ यह उत्पादन का छठा महत्वपूर्ण घटक भी समझा जाने लगा है ।

प्रबन्ध विचारधारा का विकास

प्रबन्ध विचार के विकास के इतिहास को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है - ।

(1) प्रबन्ध का आदिकाल,'

(2) प्रबन्ध का मध्य काल, तथा

(3) प्रबन्ध का आधुनिक काल ।

उत्पादन किया के श्रीगणेश से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक के मध्य औद्योगिक विकास का युग प्रबन्ध का आदिकाल माना जाता है । इसे प्राचीन कालिक प्रबन्ध भी कहा । जाता है । यह मानव सभ्यता का प्रारंभिक चरण है, और प्रबन्ध मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही रहा है 1 सुमेरियन सभ्यता, बेबीलोन, यूनान व ग्रीस की सभ्यता, सिन्धु घाटी आदि सभ्यताओं का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि सभ्यताओं के साथ-साथ प्रबन्ध का विकास होता रहा है ।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के जनक फेडरिक विनसलों टेलर का जन्म सन् 1 1856 में संयुक्त राज्य अमरीका के फिलिडेलिफिया राज्य के जॉर्जटाउन नगर में हुआ था । इनका परिवार मध्य श्रेणी का था तथा इनके पिताजी एक साधारण वकील थे । इनकी इच्छा थी कि उनका पुत्र एक, योग्य वकील बने, किन्तु टेलर के भाग्य में कुछ और ही था । ऑखों में पीड़ा के कारण हार्वर्ड से एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करने के बाद उसको अध्ययन छोड़ना पड़ा । 19 वर्ष की अल्प आयु में टेलर ने अपना जीवन फिलाडेलफिया के शिपयार्ड में एक सामाज अप्रेन्टिस टर्नर के रूप में प्रारंभ। तीन वर्ष उपरान्त मिडवैल-स्टील वर्क्स में कार्यशाला श्रमिक के रूप में उनकी नियुक्ति हुई । दो के बाद टोली-नायक के रूप में उनकी पदोन्नति हो गयी तथा आगामी चार वर्षो में ही अपनी, लगन, अध्यवसाय के परिणामस्वरूप, 28 वर्ष की अवस्था में वे अपने संगठन में मुख्य अभियन्ता बन गए ।

टेलर का दर्शन या टेलरवाद

टेलर का दर्शन और उनके प्रयोग का मुख्य क्षेत्र शीर्ष प्रबन्ध नहीं कार्यशाला में प्रयोग की जाने वाली विधियां थी । उनके प्रमुख विचार निम्न थे :

(1) पहले से ही कार्य का नियोजन करना (2) विशिष्ट कार्य के लिए सर्वश्रेष्ठ 'का चुनाव करना, (3) सम्यूर्णकार्य को एक बार मनन करके छोटे-छोटे कार्याशों में करना, (4), कार्य के निष्पादन हेतु प्रमाणित समय निर्धारित करना, (5) यंत्रों एवं साज-सज्जा का प्रमाणीकरण करना, (6) यंत्रों, आदि के प्रयोग का सही व श्रेष्ठम का निर्धारित करना, (7)अनावश्यक हरकतों को दूर करना, (8)कार्य की प्रगति के अनुसार श्रम का विभाजन, एवं (9)प्रबन्ध के कार्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाना । आजकल ये बातें भले ही सामान्य प्रतीत हों, किन्तु सीमित ज्ञान एवं तकनीक के उस युग में इनका विशेष महत्व था । सामान्यत: प्रबन्धक इन पर ध्यान नहीं देते थे ।

टेलर द्वारा प्रबन्धकीय क्षेत्र में निम्नलिखित प्रमुख योगदान दिया गया -

(1) वैज्ञानिक विधि

टेलर प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने इस बात पर बल दिया कि प्रबन्ध एक विज्ञान है तथा प्रत्येक प्रबन्धकीय समस्या को हल करने की एक सर्वश्रेष्ठ विधि होती है, जिसे उन्होंने वैज्ञानिक विधि का नाम दिया । विज्ञान की ही भांति उन्होंने प्रबन्ध के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए तथा

उनके आधार पर निष्कर्ष निकालकर उनको आधार किया । उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वैज्ञानिक विधि के प्रयोग द्वारा श्रमिकों की कार्यक्षमता व उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

(2) प्रबन्धकों के कर्तव्य

टेलर ने यह स्पष्ट कहा कि प्रबन्धकों के तीन मुख्य कर्तव्य होते है - (1)श्रमिक द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्य को परिभाषित करना, (2)कार्य के लिये योग्य व्यक्ति का चयन करना, और (3)उच्चस्तरीय निष्पादन के लिए श्रमिकों को प्रेरित करना । कार्य को परिभाषित करने के लिए प्रबन्धक को निम्नलिखित कार्य करने चाहिए - (अ)कार्य के क्रम एवं विधि को निर्धारित करना, (ब)प्रयोग किए जाने वाले यंत्रों तथा साज-सज्जा को निर्धारित करना, एवं (स)प्रमाणित कार्य निर्धारित करने के लिए गति तथा समय अध्ययन । टेलर ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि विभिन्न वैकल्पिक विधियों का अध्ययन एवं विश्लेषण करने का उत्तरदायित्व प्रबन्ध का होता है । प्रबन्ध को सर्वश्रेष्ठ विधि का चयन कर उसी के **अनुसार** श्रमिकों से कार्य लेने के लिए प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था करनी चाहिये । बढी हुई कार्यक्षमता का पुरस्कार पाने के लिए टेलर ने श्रमिकों से ऐरो ढंग से काम करने का निवेदन किया जिससे समय, माल व परिश्रम का अपव्यय न हो ।

(3) आठ अधिकारियों वाली योजना

टेलर के मतानुसार, वैज्ञानिक औद्योगिक प्रबन्ध के अन्तर्गत श्रमिक को निम्नलिखित आठ अधिकारीयों के माध्यम से मार्गदर्शन प्राप्त होता है - (1)टोली नायक, (2)गति नायक, (3)निरीक्षक, (4)जीर्णोद्धार नायक, (5)कार्यक्रम लिपिक, (6)संकेत कार्यलिपिक, (7)समय तथा पारिश्रमिक लिपिक, एवं (8)कार्यशाला अनुशासनधिकारी ।

(4) वैज्ञानिक प्रबन्ध के संयंत्र

टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध के संयंत्र इरा प्रकार हैं - (1)समय अध्ययन, (2)गति अध्ययन, (3)थकान अध्ययन, (4)नियोजन विभाग की स्थापना, (5)क्रियात्मक संगठन, (6)श्रम बचत के साधनों व विधियों का उपयोग, (7)कर्मचारियोंके लिए कार्य-निर्देश, (8)परिव्यय लेखांकन, (9)प्रेरणात्मक भृत्ति पद्धति तथा बोनस, (10)कार्य का युक्तिपूर्ण वितरण, (11)प्रबन्ध में अपवाद का सिद्धान्त, (12)कार्यक्रम निर्धारित करने की प्रणाली, एवं (13)कार्य अनुमान ।

(5) प्रबन्ध के सिद्धान्त

प्रबन्ध के परम्परागत सिद्धान्तों के स्थान पर टेलर ने निम्नलिखित वैज्ञानिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया - (1)कार्य अनुमान का सिद्धान्त, (2)प्रयोग का सिद्धान्त, (3)प्रमाणित कार्य-दर्शाओ का सिद्धान्त, (4)कार्य-नियोजन का सिद्धान्त, (5)प्रमापीकरण का सिद्धान्त, (6)कर्मचारियों के वैज्ञानिक चयन व प्रशिक्षण का सिद्धान्त, (7)सही व्यक्ति को सही कार्य का सिद्धान्त, (8)विभेदात्मक मजदूरी का सिद्धान्त, (9)क्रियात्मक फोरमैजशिप का सिद्धान्त, (1०)कुशल लागत लेखा प्रणाली का सिद्धान्त, (1)मानसिक क्रान्ति का सिद्धान्त, ।

(6) मानसिक क्रान्ति

टेलर के मतानुरगर मानसिक कान्ति एवं वैज्ञानिक प्रबन्ध का साथ है । उनके ' अनुसार श्रम व प्रबन्ध परस्पर विरोधी न होकर सहयोगी बनकर कार्य करें । दोनों ही उद्योग रूपी चक्की के अनिवार्य अंग हैं तथा दोनों के सहयोग से ही उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

(7) श्रम-संघ सम्बन्धी विचार :

टेलर के मतानुसार श्रम संघ उत्पादन सीमित करते हैं,तथा अनावश्यक कलह को जन्म देते हैं । उनकी यह मान्यता थी कि यदि श्रम प्रबन्ध की नई विचाराधारा को अपनायें तो श्रम-संघों की आवश्यकता ही नहीं होगी । उनकी यह धारण थी कि श्रमिक श्रम-संघ को छोड़ दें एवं सहकारी प्रतिबल के एक सदस्य के रूप में प्रबन्धकों को पूर्ण सहयोग प्रदान करें ताकि उत्पादन मजदूरी, व जीवन स्तर में वृद्धि हो सके ।

(8) क्रियात्मक फोरमैनशिप :

टेलर का यह मत था कि यदि विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन के सिद्धान्त को लागू करना है तो क्रियात्मक संगठन प्रणाली का उपयोग एक अनिवार्यता है । इस पद्धति के अन्तर्गत कार्यात्मक विशेषज्ञों का सीधा संबंध श्रमिकों से होता है तथा प्रत्येक श्रमिक विभिन्न विशेषज्ञों के निर्देशानुसार ही कार्य करता है ।

(9) प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति :

टेलर ने विभेदात्मक मजदूरी प्रणाली को लागू करने की सिफारिश वी । उनका सुझाव था कि प्रथम श्रेणी के श्रमिकों को 30 प्रतिशत से लेकर 100 प्रतिशत तक अधिक मजदूरी दी जानी चाहिये ।

(10) सामग्री व यंत्रों के प्रमाणीकरण पर बल:

टेलर के मतानुसार नियोजन विभाग का दायित्व है कि विशिष्ट वस्तु के निर्माण हेतु सर्वोच्च स्तर की सामग्री व मशीनों का उपयोग किया जाए । इरा दशा में ही श्रेष्ठ ' किस्म का व सस्ता उत्पादन हो सकता है ।

(11) अन्य क्षेत्रों में योगदान :

(अ) नियोजन व नियंत्रण विभाग की स्थापना की जाए, (ब)कार्य अध्ययन पर बल दिया जाए (रा)सहयोग की भावना का विस्तार किया जाए, एवं (द)कुशल प्रशिक्षण व मार्गदर्शन द्वारा कर्मचारियों की कार्यक्षमता को बढाया जाए ।

टेलर द्वारा प्रतिपादित चौदह (14)सिद्धान्त

(1) कार्यानुमान का सिद्धान्त

(2) सामयिक परीक्षणों का सिद्धान्त

(अ) समय अध्ययन (ब)गति अध्ययन, एवं (स)थकान अध्ययन

(3) कार्य नियोजन का सिद्धान्त

(4) वैज्ञानिक चयन एवं प्रशिक्षण का सिद्धान्त

(5) कार्यो के वैज्ञानिक विभाजन का सिद्धान्त

(6) सामग्री के वैज्ञानिक चयन व उपयोग का सिद्धान्त

(7) उन्नत व आधुनिक यंत्रों व उपकरणों के उपयोग का सिद्धान्त

(8) प्रमापीकरण का सिद्धान्त

(9) कुशल लागत लेखा प्रणाली का सिद्धान्त

(10) प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणाली का सिद्धान्त

(11) उत्तम कार्य दशाओं का सिद्धान्त

(12) प्रबन्ध में अपवाद का सिद्धान्त

(13) मानसिक क्रांति का सिद्धान्त, एवं

(14) क्रियात्मक संगठन का सिद्धान्त ।

(15) विचारधारा में फेयोल का योगदान

2.5 प्रबन्ध विचारधारा में फेयोल का योगदान

हेनरी फेयोल का जन्म फ्रांस में 1841 में कॉन्सटेन्टीनोपल में हुआ था । एक खनिज अभियन्ता की विशेष योग्यता प्राप्त करने के बाद उन्होंने अपना अधिकांश क्रियाशील जीवन सन् 1860 से फ्रेंच कम्बाइन की सेवा में ही व्यतीत किया । लगभग छ: वर्ष बाद वे कोयला खानों के प्रबन्ध नियुक्त हो गए तत्पश्चात् बीस वर्ष तक वे इसी स्थिति में कार्य करते रहे । इस दौरान संस्था में हानि होने लगी एवं उसकी दशा गिरती गई । इसी समय 47 वर्षीय फेयोल को जनरल मैनेजर नियुक्त किया नया । इस पर पद वह 30 वर्षो तक रहे तथा अपनी लगन एवं अध्यवसाय से उन्होंने संस्था को विकास की चरम सीमा तक पहुंचा दिया । सन् 1918 में वे सेवानिवृत्त हो गए तथा दिसम्बर 1925 तक कम्पनी के संचालक रहे । इस अवधि में उन्होंने अपना अधिकांश समय प्रशासन के सिद्धान्तों के प्रतिपादन में लगाया । दिसम्बर 1925 में उनका देहावसान। हो गया । फेयोल को प्रबन्ध का 'फांसिस बेकन' कहा जाता है । इन्हें सामाज एवं औधोगिक प्रबन्ध के आधुनिक सिद्धान्तों का पिता भी कहा जाता है ।

प्रबन्ध व प्रशासन में फेयोल का योगदान

(1) प्रशासन 'सार्वभौमिकता पर बल

फेयोल ने संगठन के सर्वोच्च या शीर्ष स्तर के लिये 'शीर्ष प्रबन्ध ' के पर प्रशासन शब्द का प्रयोग किया । उनके अनुगर प्रशासन व प्रबन्ध शब्द में कोई विशेष अन्तर नहीं है ।

(2) प्रबन्ध के तत्व

फेयोल के मतानुसार प्रबन्ध के पाँच प्रमुख तत्व हैं जिन्हें प्रबन्ध के कार्य जाता है : (i)नियोजन, (ii)संगठन, (iii)आदेश, (iv)समन्वय, एवं (v)नियंत्रण ।

(3) व्यावसायिक क्रियाओं का वर्गीकरण

फेयोल ने समस्त व्यवसायिक क्रियाओं को छ: वर्गो में विभक्त किया : (i)तकनीकी जैसे - उत्पादन व निर्माण (ii)वाणिज्यिक जैसे-क्रय-विक्रय व विनिमय, (iii)वित्त जैसे-पूंजी की प्राप्ति व उसका अनुकूलतम उपयोग, (iv)सुरक्षात्मक जैसे-जान माल की सुरक्षा, (v)लेखा कर्म सम्बन्धी - जैसे स्टॉक लेना, स्थिति विवरण तैयार करना,

नियंत्रण, एवं सांख्यिकीय नियंत्रण, (vi)प्रबन्ध सम्बन्धी जैसे - नियोजन,संगठन, निर्देशन, तथा नियंत्रण ।

(4) प्रबन्धकीय योग्यता एवं प्रतिक्षण

फेयोल के मतानुसार एक प्रबन्धक में निम्न योग्यतायें होनी चाहिये - (i)शारीरिक स्वास्थ्य तथा स्फूर्ति, (ii)विवेक शक्ति व सतर्कता, (iii)उत्तरदायित्व स्वीकार । की क्षमता, (iv)सामान्य ज्ञान, (v)विशिष्ट ज्ञान, एवं (vi)अनुभव ।

(5) प्रबन्धकीय दायित्व '

फेयोल के अनुसार प्रबन्धक के निम्नलिखित कर्तव्य हैं:- (i)यह देखना योजना विवेक पूर्ण है, या नहीं, एवं उसका संचालन सही ढंग से हो रहा है या नही । (ii)भौतिक रु मानवीय उद्देश्यों निर्धारण हुआ है या नहीं, उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पर्याप्त साधन हैं या ! नहीं (iii)कुशल - सत्ता स्थापित करना । (iv)क्रियाओं में एकरूपता व प्रयत्नों में समन्वय स्थापित करना । (v)स्पष्ट व सही निर्णय लेना, (vi)कर्मचारियों के चयन की व्यवस्था करना, (vii)अधीनस्थ के कर्तव्यों निर्धारण करना, (viii)पहलपन व उत्तरदायित्व के लिए रूचि जागृत करना, । (ix)उचित व पर्याप्त पारिश्रमिक की व्यवस्था करना, (x)दोषों व त्रुटियों के विरूद्ध अनुष्ठानों का । प्रयोग करना । (xi)अनुशासन कि स्थापना, करना (xii)व्यक्तिगत के स्थान पर सामूहिक हितों को महत्व देना, (xiii)आदेश की एकता पर बल देना, (xiv)निरीक्षण करना ,(xv)प्रत्येक वस्तु को नियंत्रण में करना, एवं (xvi)अनियमितताओं, लालफीताशाही व कागजी नियंत्रण के विरूद्ध संघर्ष करना ।

(6) प्रशासन के 14 सिद्धान्त

(i)श्रम विभाजन का सिद्धान्त, (ii)अधिकार एवं दायित्व, (iii)अनुशासन, (iv)आदेश की एकता, (v)निर्देशन की एकता, (vi)सामान्य हितों के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों का समर्पण, (vii)कर्मचारियों का पारिश्रमिक, (viii)केन्द्रीयकरण, (ix)पदाधिकारी सम्पर्क क्षृंखला, (x)व्यवस्था, (xi)समता, (xii)कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व, (xiii)पहल, एवं (xiv)सहकारिता व संघ शक्ति की भावना ।

(7) नियंत्रण का विस्तार

हेनरी फेयोल के मतानुसार एक अधिकारी के नियंत्रण में कितने कर्मचारी हों इस बात का निर्णय करने के पूर्व समस्त विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सामान्यतया एक उच्च अधिकारी के अधीन चार या पांच अधीनस्थ ही होने चाहिये ।

(8) अन्य योगदान

फेयोल के अन्य योगदान निम्नलिखित हैं -

(i)फेयाल का दृष्टिकोण मानवतावादी रहा है, (ii)उन्होंने सामान्य प्रबन्ध की सम्पूर्ण विचारधारा प्रस्तुत की है (iii)उन्होंने वित्तीय की अपेक्षा गैर वित्तीय प्रेरणाओं पर बल

दिया । (iv)उन्होंने भारार्पण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया ,तथा (v)प्रशिक्षण के महत्व पर जोर देकर उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि प्रबन्ध एक अर्जित प्रतिभा है ।

टेलर तथा फेयोल - एक तुलनात्मक अध्ययन

यद्यपि प्लेट तथा फेयोल ने अपने-अपने योगदान से प्रबन्ध ज्ञान को धनी बनाने का प्रयास किया है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने से यह पता लगता है कि अपनी जीवन स्थितियों में अन्तर होने के कारण टेलर ने प्रबन्ध विज्ञान का अध्ययन एक फोरमैंन की दृष्टि से किया ,जबकि फेयोल ने सर्वोच्च प्रशासक के रूप में । इसी आधार पर टेलर को कुशलता विशेषज्ञ और फेयोल को प्रशासन विशेषज्ञ कहा जाता है ।

समानताऐं -

टेलर और फेयोल के कार्य में मुख्य समानताएं निम्नांकित है:-

(1) टेलर तथा फेयोल दोनों ही प्रबन्ध व प्रशासन की दशाओं में सुधार लाना चाहते थे, तथा दोनों के लक्ष्य समान थे ।

(2) दोनों ही विद्वान प्रबन्ध को एक रचनात्मक आधार प्रदान करना चाहते थे । इस हेतु टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध को अपनाया जबकि फेयोल ने प्रशासन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया

(3) दोनों ही उच्च स्तरीय प्रबन्धकों की स्थिति में रह चुके थे, अत: अनुभव की छाप द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है ।

(4) दोनों का ही दृष्टिकोण मानवतावादी था ।

(5) दोनों की यह धारणा थी कि प्रबन्ध एक अर्जित प्रतिभा है तथा उपयुक्त प्रशिक्षण निरीक्षण द्वारा इसको विकसित किया जा सकता है ।

(6) दोनों ही विद्वानों ने प्रबन्ध के तकनीकी व पेशा सम्बन्धी पहलू पर जोर दिया ।

(7) दोनों ही ने प्रबन्ध में नियोजन के महत्व पर बल दिया ।

असमानताऐं -

उपरोक्त समानताओं के होते हुए भी टेलर व फेयोल में निम्नलिखित असमानतायें देखने को मिलती है।

(1) टेलर ने श्रमिकों की कार्यक्षमता को बढ़ाने के विज्ञान के प्रयोग प्रोत्साहन दिया जबकि फेयोल ने प्रबन्ध की सर्वोच्च सीढ़ी अर्थात प्रमुख प्रबन्धक के कार्यो की दृष्टि से प्रबन्ध-विज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया ।

(2) चूँकि टेलर ने अपना कार्य प्रबन्ध के स्तर की निम्नतम श्रेणी से प्रारंभ किया था, अत: उसके अध्ययन का केन्द्र बिन्दु श्रमिक' था । इसके विपरीत फेयोल ने प्रारंभ से ही सर्वोच्च प्रशासक के रूप में काम किया, अत: उनके अध्ययन का केन्द्र बिन्दु प्रबन्धक या प्रशासक था । टेलर ने क्रियात्मक संगठन के द्वारा श्रमिकों की कार्यकुशलता को बढ़ाने का प्रयास किया जबकि फेयोल ने प्रशासन के सिद्धान्तों के द्वारा प्रशासनिक क्षमता को बढ़ाने का प्रयास किया ।

(3) टेलर ने कारखाने के प्रबन्ध तथा उत्पादन के इंजीनियरिंग पक्ष पर अधिक बल दिया । जबकि फेयोल ने प्रशासन के कार्यो पर अपना ध्यान केन्द्रित किया गया ।

(4) टेलर ने व्यक्तिगत श्रमिक पर ध्यान दिया ,व्यक्तियों के समूह पर नहीं जबकि फेयोल ने व्यक्तियों के समूह पर अधिक ध्यान दिया ।

(5) टेलर की विचारधारा सैद्धान्तिक अधिक थी जबकि फेयोल की विचारधारा व्यवहारिक ।

(6) टेलर वैज्ञानिक प्रबन्ध स्कूल के समर्थक थे, जबकि फेयोल व्यवहार स्कूल के ।

(7) नवीन परिस्थितियों के प्रभाव से टेलरवाद में अनेक परिवर्तन हो गये हैं, जबकि फेयोल के सिद्धान्त आज भी उतने ही उपयोगी है जितने कि तत्कालीन परिस्थितियों में थे ।

निष्कर्ष

उर्विक के शब्दो में "टेलर तथा फेयोल के कार्य काफी सीमा तक एक दूसरे के पूरक थे। दोनों ने ही यह अनुभव किया कि प्रबन्ध के समस्त स्तरों पर कर्मचारियों तथा प्रबन्ध की समस्या औद्योगिक सफलता की आधारशिला है । इस समस्या के समाधान हेतु दोनों ने ही वैज्ञानिक विधियों के उपयोग पर बल दिया ।" अत: थियो हैमेन के अनुसार "दोनों विद्वानों की विचाराधारा में विरोधाभास को खोजना व्यर्थ है । यदि टेलर को वैज्ञानिक प्रबन्ध का जनक कहा जाए तो फेयोल को प्रशासन के सिद्धान्तों का जनक कहा जा सकता है ।"

2.6 औद्योगिक क्रान्ति का प्रबन्ध विचारधारा पर प्रभाव

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 19वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इंग्लैंड के उद्योगों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों ने न केवल इंग्लैण्ड अपितु अनेक देशों की अर्थव्यवस्था को झकझोर दिया । इस अवधि में एक के बाद एक अनेक परिवर्तन हुए जिन्हें 'औद्योगिक क्रान्ति' की संज्ञा दी गई । इस क्रान्ति के फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में यन्त्रों का प्रयोग बढ़ा और श्रमिक पूँजीपतियों द्वारा संचालित कारखानों में आकर कार्य करने लगे । इसके अतिरिक्त कार्य की परम्परागत विधियों के स्थान पर नवीन विधियों को अपनाया जाने लगा और वृहत् स्तर पर उत्पादन कार्य किया जाने लगा । इस अवधि में उद्योग जगत आमूल-चूल परिवर्तन हुए । नोल्स के अनुसार औद्योगिक क्रान्ति में निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिले:-

1. इन्जीनियरिंग का विकास,

2. लौह एवं इस्पात के उत्पादन में क्रान्ति,

3. वस्त्र उद्योग में शक्ति का उपयोग,

4. रासायनिक उद्योगों का उदय,

5. कोयला एवं खनिज उद्योगों का विकास, एवं

6. यातायात व सन्देश वाहन के साधनों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ।

औद्योगिक क्रान्ति से प्रबन्ध विज्ञान भी अछूता नहीं रहा । इस क्रान्ति ने प्रबन्ध विचारधारा को कई प्रकार से प्रभावित किया । औद्योगिक क्रान्ति के प्रबन्ध विचारधारा पर कुछ प्रमुख प्रभाव इस प्रकार रहे

1. समाज में एक नवीन वर्ग 'प्रबन्धक वर्ग' का उदय हुआ ।
2. वस्तुओं का प्रमापीकरण किया जाने लगा ।
3. विशिष्टीकरण एवं श्रम-विभाजन के सिद्धान्तों अधिक से अधिक प्रयोग होने लगा ।
4. व्यापार चक्रों से सुरक्षा हेतु अनेक प्रबन्धकीय क्रियाएँ की जाने लगी ।
5. प्रबन्धक उत्पादन की विधियों, प्रयोग में लायी जाने वाली मशीनों आदि के सम्बन्ध में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने लगे, फलत: उनके प्रबन्धकीय ज्ञान में वृद्धि होने लगी ।
6. प्रबन्ध का शिक्षण-प्रशिक्षण प्रदान करने वाली संस्थाओं का उदय हुआ ।

2.7 प्रबन्ध विचारधारा को विभिन्न स्कुले (विचारधाराएँ)

प्रबन्ध विचारधारा के इतिहास का अध्ययन हम निम्न स्कूलानुसार भी कर सकते हैं ।:-

1. 'प्रबन्ध-प्रक्रिया' स्कूल
2. 'अनुभवाश्रित' स्कूल
3. 'मानवीय व्यवहार' स्कूल
4. 'सामाजिक प्रणाली' स्कूल
5. 'निर्णय सिद्धान्त' स्कूल
6. 'गणितीय' स्कूल
7. 'तुलनात्मक प्रबन्ध' स्कूल
8. 'निदानात्मक' स्कूल
9. 'भागता' स्कूल
10. 'नियमनिष्ठ' स्कूल

प्रबन्ध प्रक्रिया स्कूल

प्रबन्ध की इस स्कूल के प्रवर्तक हेनरी फेयोल माने जाते हैं । फेयोल के अतिरिक्त इस स्कूल के समर्थकों की सूची में अनेक अन्य विद्वानों को भी सम्मिलित किया गया है लेकिन इन सभी ने प्रबन्ध प्रक्रिया के केवल संगठन सम्बन्धी पहलू पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित किया है । इसका मुख्य कारण यह माना गया कि सन् 1940 के पूर्व प्रबन्ध के कार्यो-नियोजन, नियन्त्रण एवं कर्मचारियों की नियुक्ति पर कम ध्यान दिया गया । इस स्कूल के अनुसार प्रबन्ध एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्तियों के संगठित समूह से मिलकर कार्य किया एवं करवाया जाता है । इसका उद्देश्य प्रक्रिया का विश्लेषण करना, वैज्ञानिक ढाँचे की स्थापना करना, सम्बन्धित सिद्धान्तों का अवलोकन करना एवं इनसे प्रबन्ध की एक विचारधारा का निर्माण करना है । इस स्कूल को परम्परागत स्कूल एवं सार्वभौमिक स्कूल भी कहा जाता है । इस विचारधारा की मान्यता है कि प्रबन्ध क्रियाओं का निष्पादन प्रथाओं एवं परम्पराओं के अनुसार किया जाता है जो विगत अनुभवों पर आधारित होती है, अत: इसे परम्परावादी स्कूल कहा जाता है । यह स्कूल प्रबन्ध को एक सार्वभौमिक प्रक्रिया मानकर चलती भी मानकर चलती है । व्यावसायिक, गैर-व्यावसायिक, धार्मिक, सैनिक, सरकारी एवं गैर सरकारी सभी संगठनों में जहाँ निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सामूहिक प्रयत्न किये जाते है एवं प्रबन्ध की आवश्यकता

होती है इस विचार को लागू किया जा सकता है इसलिए इसे सार्वभौमिक स्कूल भी कहा जाता है ।

विशेषताएँ

इस स्कूल की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है :-

1. प्रबन्ध एक प्रक्रिया है जिसे प्रबन्धक के कार्यो का विश्लेषण करके अनेक छोटे-छोटे भागों में विभक्त किया जा सकता है ।
2. प्रबन्ध के सिद्धान्तों का प्रतिपादन अनुभव के आधार पर ही किया जा सकता है । अन्य शब्दों में, संस्था की अनेक प्रकार की परिस्थितियों के सम्बन्ध में प्रबन्ध का पर्याप्त अनुभव कुछ निश्चित आधारभूत सिद्धान्तों के प्रतिपादन में प्रारम्भिक भूमिका अदा करता है ।
3. प्रबन्ध के ये आधारभूत सिद्धान्त अनुसंधान कार्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं । ये सिद्धान्त उक्त कार्य की वैधानिकता को निश्चित करने और व्यवहार में लागू करने में भी सहायक सिद्ध होते है ।
4. ये आधारभूत सिद्धान्त प्रबन्ध के अनेक तत्वों का विकास करते हैं ।
5. प्रबन्ध-प्रक्रिया में नियोजन, संगठन, समन्वय, निर्देशन एवं नियन्त्रण आदि तत्व सम्मिलित होते है । इन तत्वों को प्रबन्ध के कार्य भी कहा जाता है ।
6. प्रबन्ध एक कला है जिसे सिद्धान्तों की समझ एवं प्रयुक्ति से सुधारा जा सकता है ।
7. प्रबन्ध के सिद्धान्तों का सभी संगठनों में प्रयोग किया जा सकता है । इसलिए यह स्कूल प्रबन्ध को सार्वभौमिक प्रक्रिया मानकर चलती है ।
8. यह स्कूल प्रबन्ध प्रणालियों एवं स्थितियों को परम्पराओं के आधार पर ही बनाये रखने पर बल देती है । अन्य शब्दों में यह स्कूल प्रबन्ध प्रणालियों में किसी भी प्रकार के सुधार की विरोधी है।

अनुभाश्रित स्कूल

प्रबन्ध विचारधारा के सम्बन्ध में एक अन्य विचारधारा अनुभाश्रित स्कूल हैं । इस स्कूल के समर्थकों में पीटर एफ.ड्रकर, कीथ डेविस, अर्नेस्ट डेल, न्यूमैन, पीटरसन, प्लोमैन, लेविट और बेनिस प्रमुख हैं । इस स्कूल के समर्थकों में कून्ट्ज ने उन अध्ययनकर्ताओं या विद्वानों को सम्मिलित किया हे जो प्रबन्ध अनुभव का अध्ययन समझते है । यह स्कूल इस मत पर आधारित है कि यदि हम सफल प्रबन्धकों के अनुभव या उनके द्वारा प्रबन्ध में की गई त्रुटियों का अध्ययन करते है एवं प्रबन्ध समस्याओं के समाधान का प्रयास करते हैं तो हम प्रबन्ध की प्रभावी तकनीकों को समझने के साथ-साथ उनका प्रयोग भी सीख लेते हैं । यह स्कूल मानती है कि वैयक्तिक परिस्थितियों में क्या किया गया या क्या नहीं किया गया, की जानकारी कर लेने से व्यक्ति तुलनात्मक परिस्थितियों में भी ऐसा ही करने में समर्थ हो जायेगा। अर्नेस्ट डेल के अनुसार, "अनुभाश्रित स्कूल क्रियात्मक विचारधारा का अनुसरण करती है जिसके अन्तर्गत तथ्यों के निर्धारण के लिए विगत क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, तथ्यों को स्पष्ट करने के लिए सिद्धान्तों का विकास किया जाता है, एवं अन्त में तथ्यों व सिद्धान्तों का प्रयोग भावी क्रियाओं के सम्बन्ध में अनुमान लगाने के लिए किया जाता है ।"

विशेषताएँ :

इस स्कूल की प्रमुख विशेषताएँ अग्रांकित हैं :-

1. यह स्कूल मानकर चलती है कि अनुभव के अध्ययन के आधार पर प्रबन्ध का कार्य किया जा सकता है ।
2. यह अनुभव ही उच्च स्तरीय प्रबन्धकों से लेकर निम्न स्तरीय प्रबन्धकों के ज्ञान-वृद्धि का एक मात्र साधन है ।
3. यह स्कूल विगत अनुभवों के विश्लेषण, मूल्यांकन एवं परीक्षण से प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर प्रबन्ध के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती है ।
4. इस स्कूल का मत है कि अनुभवी प्रबन्धकों के ज्ञान का हस्तान्तरण सम्भव हैं । प्रबन्धकों के अनुभवों का हस्तान्तरण प्रतिवेदिक घटनाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण या अन्य किसी आधार पर हो सकता है । इस प्रकार यह स्कूल शिक्षण-प्रशिक्षण पर बल देती है ।

कमियाँ :

इस विचारधारा में निम्न कमियाँ देखने को मिलती हैं : -

1. यह स्कूल अनुभव को भावी समस्याओं के निदान का आधार मानती है । लेकिन परिस्थितियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है और कुछ ही प्रबन्धकीय समस्याएँ ऐसी होता है जो विगत समस्याओं से मिलती-जुलती होती हैं । अत: अनुभव को भावी प्रबन्धकीय समस्याओं के समाधान के लिए उसी रूप में प्रयोग करना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता ।
2. फ्रेन्क सी. केरेसियोलो के अनुसार इस स्कूल का अन्य दोष यह है। कि जब प्रबन्धक उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का चयन कर लेता है तो वह फिर इस तथ्य पर कभी विचार नही करता कि यदि अन्य विकल्प का चयन किया जाता तो क्या परिणाम सामने आते । इस स्कूल के सम्बन्ध में कून्ट्ज के निम्न विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं

"कोई भी व्यक्ति इस प्रकार के अध्ययन या 'यह कैसे किया गया' के विश्लेषण के माध्यम से अनुभव के अध्ययन के महत्व से इंकार नहीं कर सकता । लेकिन प्रबन्ध कानून की भांति पूर्वगामी बातों पर आधारित विज्ञान नहीं है और भविष्य में भी विगत के समाज परिस्थितियाँ जो तुलना करने योग्य हों, का गठित होना कठिन है । वास्तव में विगत अनुभवों पर अधिक विश्वास करने में स्पष्ट खतरा है क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि जो तकनीक या विचारधारा विगत में सही साबित हुई हो वह भावी परिस्थितियों में भी खरी उतरे ।"

मानवीय व्यवहार स्कूल

इस विचारधारा के प्रादुर्भाव एवं विकास का श्रेय एल्टन मेयो और उनके हार्वर्ड स्कूल ऑफ बिजनेस एडमिनिस्स्ट्रेशन के सहयोगियों को जाता है । यह स्कूल इस तथ्य पर बल देती है कि यदि प्रबन्ध का अर्थ व्यक्तियों के संगठित समूह के साथ मिलकर कार्य करने और करवाने से लिया जाता है तो प्रबन्ध का अध्ययन 'मानवीय सम्बन्धों' पर केन्द्रित होना चाहिए ।

अन्य शब्दों में 'अन्तर-परस्पर' सम्बन्धों की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए । इस प्रकार यह स्कूल प्रबन्ध के अंग 'मानव' पर ध्यान केन्द्रित करती है और इस सिद्धान्त पर बल देती है कि जब निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्ति समूह के रूप में कार्य करते हैं तो 'मनुष्य को मनुष्य' समझना चाहिए । इस स्कूल के विचारक मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्री विचारधाराओं से प्रेरित थे इसलिये यह माना गया कि इस स्कूल के औद्योगिक समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों एवं सांस्कृतिक मानव शास्त्रियों द्वारा विकास किया गया ।

विशेषताएँ :

इस स्कूल की निम्न विशेषताएँ प्रमुख हैं

1. यह स्कूल प्रबन्ध को एक प्रक्रिया मानती है जिसके माध्यम से व्यक्तियों के संगठित समूह के साथ मिलकर कार्य किया एवं करवाया जाता है ।
2. इस स्कूल के अनुसार प्रबन्ध सिद्धान्तो का प्रतिपादन मानवीय पहलू पर आधारित होता है ।
3. इस स्कूल की यह भी मान्यता है कि जब व्यक्ति संगठित समूह में एक साथ कार्य करते हैं तो वे एक-दूसरे को अच्छी प्रकार समझते हैं ।
4. यह स्कूल 'प्रबन्ध' को 'नेतृत्व प्रदान करने वाला' मानती है ।
5. यह स्कूल इस तथ्य पर बल देती है कि कर्मचारी पहले मानव है और बाद में कर्मचारी। अत: उसके साथ मानवता का व्यवहार किया जाना चाहिए ।

पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार "यद्यपि मानवीय सम्बन्धों की विचारधारा ने प्रबन्ध को गलत विचारों के प्रभुत्व से मुक्त किया है लेकिन इसने पुरानी विचारधाराओं के स्थान पर किसी नवीन विचारधारा के प्रतिपादन में सफलता प्राप्त नहीं की है । मानवीय सम्बन्धों की यह विचारधारा अन्तर वैयक्तिक सम्बन्धों और अनौपचारिक समूहों पर विशेष बल देती है । इस स्कूल का प्रारम्भिक बिन्दु कर्मचारी एवं कार्य के विश्लेषण के स्थान पर व्यक्तिगत मनोविज्ञान है ।"

सामाजिक प्रणाली स्कूल

यह विचारधारा 'मानवीय व्यवहार' विचारधारा से काफी सम्बन्धित है, यही वजह है कि कुछ व्यक्ति इस विचारधारा और मानवीय व्यवहार विचारधारा के अंतर को नहीं समझ पाते । इस विचारधारा का विकास उन अनुसन्धानकर्ताओं या विचारकों द्वारा किया गया है जो प्रबन्ध को एक सामाजिक प्रणाली के नाम से सम्बोधित करते है । यह स्कूल प्रणाली विश्लेषण पर आधारित है और अनुभवाश्रित अनुसंधान में अधिक विश्वास रखती है । प्रणाली के मोर्चाबन्दी भागों, उनकी पारस्परिक निर्भरता की प्रकृति, प्रणाली द्वारा निर्धारित लक्ष्यों और प्रणाली में सम्प्रेषण प्रक्रिया को महत्व देने का श्रेय इस स्कूल को है । यह स्कूल विभिन्न सामाजिक समूहों के सम्बन्धों की प्रकृति को स्पष्ट करती है और उनको सम्बन्धित रूप में प्रकट करने का प्रयास करती है । इस स्कूल के प्रवर्तक चेस्टर आई. बर्नार्ड जाने जाते है जिन्होंने सहकारिता की विचारधारा का विकास किया । बर्नार्ड का औपचारिक संगठन का विचार ऐसी सहकारी-व्यवस्था

को शामिल करता है जिसमें व्यक्ति एक दूसरे को सूचनाओं को आदान-प्रदान करने में समर्थ होते है और सामाज लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सक्रिय योगदान देते हैं ।

यह विचारधारा समाज शास्त्रियों के प्रेरित है । यह स्कूल विभिन्न सामाजिक समूहों के सांस्कृतिक सम्बन्धों की प्रकृति को स्पष्ट करती है ।

विशषताएँ -

इस स्कूल की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित है :-

1. यह स्कूल प्रबन्ध को एक सामाजिक प्रणाली मानती है ।

2. यह स्कूल प्रणाली विश्लेषण पर आधारित है और अनुभवाश्रित अनुसन्धान में अधिक विश्वास रखती है ।

3. यह स्कूल विभिन्न सामाजिक समूहों के सांस्कृतिक सम्बन्धों की को स्पष्ट करती है।

4. यह स्कूल प्रबन्ध को एक सहकारी प्रणाली के रूप में मानकर है जिसमें चेस्टर आई. बर्नार्ड ने निम्नलिखित को सम्मिलित किया है -

(अ) संगठन के सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण ।

(ब) सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वांछनीय सहयोग, एवं

(स) प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था की स्थापना ।

5. यह स्कूल प्रबन्धकों के सामाजिक उत्तरदायित्वों पर बल देती है ।

निर्णय-सिद्धान्त स्कूल

प्रबन्ध की इस स्कूल के विकास का श्रेय मुख्यत: विभिन्न अर्थशात्रियों को है । यह स्कूल निर्णय के लिए विवेकपूर्ण दृष्टिकोण पर अधिक बल देती है । इस स्कूल के समर्थकों का मत है कि प्रबन्ध केवल निर्णय लेना या निर्णयन ही है । इस प्रकार यह स्कूल निर्णय, निर्णय लेने वाले व्यक्तियों, निर्णय-प्रक्रिया के विश्लेषण आदि से सम्बन्धित है । इस स्कूल के समर्थकों का कहना है कि निर्णय लेना प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य है, अत: प्रबन्ध के सम्बन्ध में किये जाने। वाले प्रत्येक अध्ययन का आधार बिन्दु भी निर्णय होना चाहिए ।

यह विचारधारा 'उपभोक्ता की रूचि' की विचारधारा का विकसित रूप है ।

19वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो तक सभी अर्थशास्त्रियों का ध्यान 'उपभोक्ता की रूचि' विचारधारा पर केन्द्रीय था । लेकिन कुछ आर्थिक समस्याओं और उनके विश्लेषण जैसे सीमान्त उपयोगित, उदासीनता वक्र और अनिश्चितताओं एवं जोखिमों के अन्तर्गत आर्थिक व्यवहार आदि ने निर्णयन विचारधारा को विकसित किया । इस विचारधारा के अधिकांश प्रतिपादक अर्थशास्त्री ही है जो मॉडल निर्माण एवं गणितीय विधियों पर पर्याप्त बल देते हैं । इस स्कूल की मुख्य मान्यता यह है कि निर्णय प्रबन्ध का केन्द्रीय कार्य है । रॉहर्ट स्चलाईफर ने इस विचारधारा को नॉरमेटिव और डेस्क्रिप्टिव दो भागों में व्यक्त किया है ।

विषेशताएँ

इस स्कूल की निम्न विशेषताएँ प्रमुख हैं :-

1. यह स्कूल निर्णयन को प्रबन्ध सिद्धान्तों के अध्ययन का मुख्य केन्द्र बिन्दु मानता है ।

2. यह स्कूल निर्णयन की विचारधारा को उपभोक्ता की रूचि की विचारधारा का विकसित रूप मानकर चलती है ।
3. यह स्कूल निर्णयन का अर्थ उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ के चयन से लेता है ।
4. यह स्कूल सर्वश्रेष्ठ निर्णयों हेतु अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण, सम्प्रेषण व्यवस्था एवं कीमत-विश्लेषण आदि को मुख्य साधन मानता है ।
5. यह स्कूल निर्णय, निर्णय लेने वाले व्यक्तियों एवं निर्णय-प्रक्रिया के विश्लेषण आदि से सम्बन्धित है ।

जॉन जी. हचीनसन ने प्रबन्ध की इस विचारधारा के सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार व्यक्त किये है:

गणितीय स्कूल

प्रबन्ध की इस स्कूल के प्रतिपादकों में उन व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है जो प्रबन्ध को गणितीय मॉडल की प्रणाली मानते हैं । हरा स्कूल की मुख्य मान्यता यह है कि यदि प्रबन्ध नियोजन, संगठन या निर्णयन, एक तार्किक प्रक्रिया है तो इसे गणितीय सूत्रों या चिन्हों में स्पष्ट किया जा सकता है । इस प्रकार इस स्कूल का केन्द्रीय बिन्दु 'मॉडल' है जिसके माध्यम से समस्या को उसके आधारभूत सम्बन्धों एवं कुछ निश्चित लक्ष्यों या उद्देश्यों के सन्दर्भ में व्यक्त किया जाता है । इस स्कूल ने प्रबन्धकों को कई ऐसे नवीन साधन प्रदान किये हैं जिनके माध्यम से वे ठोस निर्णय ले सकते है । यह स्कूल प्रबन्ध की कुछ तकनीकों जैसे क्रियात्मक अनुसन्धान, रेखीय प्रोग्रामिंग, क्यूइंग सिद्धान्त, खेल सिद्धान्त और मॉडल निर्माण आदि के प्रयोग पर सावधिक बल देती है ।

वर्तमान में कुछ और तकनीकों का भी प्रबन्ध जगत में प्रयोग बढ़ता जा रहा है उदाहरणार्थ, कम्प्यूटर्स ने प्रबन्ध क्षेत्र में गणितीय तकनीकों के प्रयोग को काफी बढावा दिया है। फ्लत: प्रबन्धक अधिक से अधिक गणितीय तकनीकों का प्रयोग करने लगे है । 'मॉडल' प्रबन्धकों को किसी व्यावसायिक समस्या को समझने और उसका विश्लेषण करने में सहायता प्रदान करते है ।कून्ट्ज के अनुसार, "गणितीय तकनीकों के प्रयोग से प्रबन्ध जगत् के अनेक व्यक्ति समस्या को भली प्रकार समझ सकते हैं, विश्लेषण कर सकते हैं, वैकल्पिक समाधानों का विकास कर सकते हैं और समाधानों का मूल्यांकन करते हुए सर्वश्रेष्ठ समाधान (निर्णय)पर पहुँच सकते हैं ।"

तुलनात्मक प्रबन्ध स्कूल

प्रबन्ध की इस स्कूल को आधुनिक स्कूल के नाम से सम्बोधित किया जाता है । इस स्कूल के प्रतिपादकों में गोन्जालेज एवं मेकलिमन प्रमुख है । इनका मत है कि प्रबन्ध संस्कृति से प्रभावित होता है । इनके अतिरिक्त इस स्कूल के अन्य समर्थक ओबर्ग का मानना है कि प्रबन्ध-सिद्धान्तों का प्रयोग एक विशिष्ट संस्कृति तक सीमित हो सकता है और यह प्रबन्ध के सामान्य सिद्धान्तों या निर्धारक समाधानों की खोज करने में अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते। इस प्रकार यह विचारधारा अनुभाश्रित स्कूल के विपरीत धारणा रखती है । यह स्कूल विभिन्न संस्कृतियों में विद्यमान प्रबन्ध प्रणालियों का अदद्यनयवन कर कुछ सामान्यीकरण

प्रस्तुत करती है एवं विभिन्न देशों की प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याओं और प्रबन्धकीय कार्य कुशलता से सम्बन्ध रखती है एस. बेणन्जामिनप्रसाद ने अपनी "पुस्तक मैनेजमेंट इन इन्टरनेशनल पर्सपेस्थ्यि' ' में तुलनात्मक प्रबन्ध विचारधारा को स्पष्ट किया है । उनके अनुसार "प्रबन्ध की तुलनात्मक विचारधारा से आशय प्रबन्ध का एक प्रक्रिया और सभी परिस्थितियों में एक दर्शन के रूप में अध्ययन व विश्लेषण करना है ।' '

निदानात्मक स्कूल

प्रबन्ध विचारधारा की यह स्कूल प्रबन्ध को निदेशन मानकर चलती है । इस स्कूल की यह मान्यता है कि प्रबन्धक कर्मचारियों को आवश्यक निर्देश दे । प्रबन्धकों में निर्देशन क्षमता होने के कारण यह आवश्यक है कि वे अपने कर्मचारियों को यह बतायें कि उन्हें क्या करना है, कब करना है, कैसे करना है । इस प्रकार कर्मचारियों की क्रियाओं को निर्देशित करना ही इस स्कूल की मुख्य विशेषता है ।जिस प्रकार प्लेटफार्म पर खड़ी गाड़ी उस समय तक स्टेशन नहीं छोड़ सकती जब तक कि ड्राइवर को गार्ड से आवश्यक निर्देशन प्राप्त नहीं हो जाते, ठीक उसी प्रकार कर्मचारी भी अपनी क्रियाओं का उस समय तक कुशल निष्पादन नहीं कर पाते जब तक कि उन्हें प्रबन्धकों से उचित निर्देशन। प्राप्त नहीं हो जाता । अत: यह मान्यता ठीक ही प्रतीत होती है कि कर्मचारी तभी अच्छी तरह से कार्य कर पाते हैं जबकि उन्हें आवश्यक निदेशन प्राप्त होता रहे । यह स्कूल मानकर चलती है कि प्रबन्धकों में कर्मचारियों की अपेक्षा निर्णय शक्ति अधिक होती है । इसी प्रकार यह स्कूल इस मान्यता पर आधारित है कि शाक्ति को ज्ञान के बराबर किया जाना चाहिए और जिसके पास शाक्ति है उसे ही विशेषज्ञ माना जाना चाहिए ।

भागिता स्कूल

यह स्कूल प्रजातान्त्रिक विचारों पर आधारित है और अधिनायकवादी प्रबन्ध व्यवस्थाओं का विरोध करती है । इस स्कूल की यह मान्यता है कि कर्मचारियों को संस्था के प्रबन्ध एवं संचालन में हिस्सा दिया जाना चाहिए । कर्मचारियों को नीति-निर्धारण में सम्मिलित करने से नीतियों का क्रियान्वयन सुविधाजनक हो जाता है, क्योंकि यह मानकर चला जाता है कि जो व्यक्ति स्वयं निर्णय लेते है वे उसके क्रियान्वयन में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं करते । यह स्कूल इस तथ्य में विश्वास रखती है कि एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा लिया गया निर्णय सदैव श्रेष्ठ होता है । प्रत्येक संस्था में ऐसी अनेक समस्याएँ आती है जिनका प्रबन्धकों की तुलना में कर्मचारी श्रेष्ठ हल प्रस्तुत कर सकते है । अत: कर्मचारियों को संस्था के प्रबन्ध एवं संचालन में हिस्सा दिया जाना चाहिए । कर्मचारियों से इच्छित सहयोग प्राप्त करने के लिए संस्था में प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था हो एवं समय-समय पर विभिन्न साक्षात्कार कार्यक्रमों, सभाओ, सम्मेलनोंआदि का आयोजन किया जाना चाहिए । कर्मचारियों को प्रबन्ध में हिस्सा देने से वे अपने-आपको गौरवान्वित महसूस करते हैं, उनमें अपनत्व की भावना जागृत होती है जो एक ओर उन्हें पूर्ण क्षमता से कार्य करने के लिए प्रेरित करती है तो दूसरी ओर उनके मनोबल में भी;, वृद्धि करती है।

नियमनिश्ठ स्कूल,

यह स्कूल इस मान्यता पर आधारित है कि किसी संस्था का संगठन कितना भी अच्छा क्यों न हो लेकिन मात्र कुशल संगठन उस संख्या का प्रबन्ध एवं संचालन उस समय तक सुचारू रूप से नहीं कर सकता जब तक कि उसके सदस्यों के मध्य अधिकारों एवं दायित्वों का स्पष्ट विभाजन न हो अर्थात् सदस्यों के मध्य अधिकारों एवं दायित्वों के सम्बन्ध में विवाद के स्थान पर सहयोग हो । अधिकारों एवं दायित्त्तों की विभाजन रेखाएँ स्पष्ट होने से सदस्यों को अपने-अपने कर्तव्यों एव दायित्वों को बोध हो जाता है और वे एक-दूसरे की क्रियाओं में हस्तक्षेप न करके अपने ही कार्य-क्षेत्र, में कार्य करते है फलतः उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि के साथ-साथ पारस्परिक सम्बन्धों में भी मधुरता आती है । संगठन के प्रत्येक सदस्य को संगठन संरचना में अपनी स्थिति ज्ञात होनी चाहिए । संगठन चार्ट्स द्वारा संस्था के प्रत्येक सदस्य की स्थिति स्पष्ट हो जाती है अत: इनका निर्माण प्रबन्धकों द्वारा सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए ।

2.8 सारांश

उपर वर्णित अध्याय के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रबन्ध एक अपेक्षाकृत नवविकसित विषय है जिसका समग्र विकास पिछलि दो शताब्दियों में हुआ है । सामूहिक प्रयासों से अनुकूलतम परिणाम प्राप्त करने की आवश्यकता अथवा बेहतर प्रबन्ध हेतु इन दो शताब्दियों में अनेकानेक विद्वानों ने अपने-अपने अनुभवों, अनुसंधानों व प्रयोगों से कई-कई तकनीकों, सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं व कार्य विधियों का विकास किया है । इन विचारकों एवं उनकी विचारधाराओं की प्रमुख विशेषताओं को उक्त इकाई में समावेशित किया गया है ।

2.9 अपनी प्रगति को जानने के लिये अभ्यास

1. प्रबन्ध विचारधारा के विकास का संक्षिप्त इतिहास लिखिये ।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. प्रबन्ध विचारधारा की विभिन्न स्कूलों को संक्षेप में समझाइये ।

   ....

   ....

   ....

   ....

3. टेलर का प्रबन्ध के क्षेत्र में क्या योगदान है?

   ....

   ....

   ....

   ....

4. फेयोल व टेलर द्वारा प्रतिपादित विचारधाराओं में क्या समानता देखने को मिलती है ।

....

....

....

....

इकाई-3 प्रबन्ध की आधुनिक विचारधाराऐं

ढांचा

3.1 प्रबन्ध में व्यवहारात्मक, प्रणाली बद्व व सांयोगिक दृष्टिकोण

3.2 उद्देश्यानुसार प्रबन्ध (एम.बी.ओ.)

3.3 अर्थ एवं क्षेत्र

3.4 प्रकिया

3.5 चरण

3.6 गुण एवं दोष

3.7 तुलनात्मक प्रबन्ध

3.8 प्रबन्ध एवं संस्कृति

3.9 पर्यावरिक निर्धारक तथा प्रबन्ध कार्य

3.10 सारांश

3.11 अपनी प्रगति को जानने के लिरो अभ्यास

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप सक्षम होंगे :

(अ) प्रबन्ध की आधुनिक विचारधाराओं को समझने में ।

(ब) उद्देश्यानुसार प्रबन्ध को जानने में ।

(स) तुलनात्मक प्रबन्ध की जानकारी ।

(द) पर्यटन संगठन में आधुनिक विचारधाराओं का प्रयोग ।

3.1 प्रबन्ध में व्यवहारात्मक, प्रणालीबद्व व सांयोगिक दृष्टिकोण

पर्यटन संगठन में प्रबन्धक को अपने कर्मचारियों व ग्रहकों से सतत् सम्पर्क बनाए रखना होता है तथा समय-समय पर उन्हें अभिप्रेरित करना होता है ताकि उनका मनोबल ऊंचा रहे व कर्मियों को अधिकतम कार्यसन्तुष्टि प्रदान करते हुये पर्यटकों (ग्रहकों)को भी संतुष्ट किया जा सके ।

प्रबन्ध वैज्ञानिकों ने समय-समय पर नई विचारधाराओं के माध्यम से प्रबन्धकों का मार्गदर्शन किया है । "नवीन सिद्धान्तों के विकास के कारण आज मानवीय दृष्टिकोण के स्थान पर अनेक नए दृष्टिकोण का उपयोग किया जाने लगा है ।"

प्रबन्ध का व्यवहारवादी दृष्टिकोण एक नवीन विचार है जिसका प्रारम्भ सन् 1950 के आस-पास हुआ । यह विचारधारा मनुष्य के व्यक्तिगत व सामूहिक व्यवहार के संबंध में अन्तदृष्टि प्रदान करती है । दूसरे शब्दों में, इसके अन्तर्गत मानवीय व्यवहार का वैज्ञानिक का से अध्ययन किया जाता है । इस शब्दावली के प्रयोग का श्रेय फोर्ड फाउण्डेशन नामक संस्था को जाता है । इस संस्था ने सन् 1950 में व्यक्तिगत व्यवहार एवं मानवीय स्वार्थो पर शोध

कार्य प्रारम्भ किया था । जो आगे चलकर "व्यवहारवादी विज्ञान कार्य कम" के नाम से प्रचलित हुआ । यह विज्ञान, भौतिकी, जीव विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञानों से अपना पृथक् अस्तित्व रखता है । इस विचारधारा के प्रवर्तकों में कुर्ती लेविन का नाम प्रमुख है । अन्य शोधकर्ताओं में उल्लेखनीय है - आर्गरिस, मेक्ग्रेगर, मास्तो, शीपार्ड, बर्नस्, स्वलकर, मार्च, साइमन, ट्रिस्ट, एमरी, राइस, सोफर, आदि । यह विज्ञान मनुष्य की समस्या समाधान सम्बन्धी क्रियाओ का अध्ययन करता है ।

व्यवहारवादी विज्ञान का अर्थ व प्रकृति

व्यवहारवादी विज्ञान से आशय उस विज्ञान से है जो मानवीय व्यवहार से प्रत्यक्षत: सम्बन्ध रखने वाले वैज्ञानिक शोध पर आधारित है । यह वह दृष्टिकोण है जो व्यक्तियों एवं संगठन को प्रभावी ठंग से एकीकृत करता है । व्यवहारवादी विज्ञान मानव विज्ञान, समाज विज्ञान तथा मनोविज्ञान का सामूहिक नाम है । यह मनुष्य का उसके व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों ही रूपों का वैज्ञानिक अध्ययन है । जहां तक समूह का सम्बन्ध है, समूह छोटे तथा बडे दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं । छोटे समूहों में 5 या 6 व्यक्ति हो सकते हैं जबकि बडे समूह की कोई सीमा नहीं है सम्पूर्ण राष्ट्र को भी एक बृहत समूह की संज्ञा दी जा सकती है । व्यवहारवादी दृष्टिकोण में एक समूह के भीतर तथा बाहर के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है । वास्तव में, यह एक नवीन व वैज्ञानिक विचारधारा है जिसके अन्तर्गत मानवीय सम्बन्ध, समूह गति विज्ञान, मानवीय अभियान्त्रिकी, प्रबन्ध में सहभागिता, औपचारिक व अनौपचारिक संगठन, एवं औद्योगिक प्रजातन्त्र विषयों का अध्ययन व विश्लेषण किया जाता है ।

प्रकृति : व्यवहारवादी विज्ञान की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित बिन्दु स्मरणीय हैं - (1)यह मानविकी, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान की प्रकृति पर आधारित है । (2)यह व्यक्ति एवं संगठन को परस्पर प्रभावपूर्ण ढंग से एकीकृत करता है । (3)यह स्वप्रत्यक्षीकरण की आवश्यकता की पूर्ति से अभिप्रेरित होने वाले व्यक्तियों की विचारधारा को प्रस्तुत करता है । (4)इस विज्ञान का अध्ययन उद्देश्य प्रामाणिक साक्ष्य पर आधारित मानवीय व्यवहार को समझना, स्पष्ट करना, पूर्वानुमान लगाना तथा नियन्त्रित करना है ।

व्यवहारवादी विज्ञान का क्षेत्र

व्यवहारवादी विज्ञान के अन्तर्गत ज्ञान की निम्नलिखित शाखाओं का समावेश किया जाता है :

(1) मानविकी शास्त्र

इसे "मानव विज्ञान' ' भी कहते हैं । ग्रीक भाषा का शब्द एन्थ्रोपोलॉजी दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमें एन्थ्रोपो का अर्थ है "मानव" और लॉजी का अर्थ है "विज्ञान" इस प्रकार मानविकी शास्त्र "मानव विज्ञान" का पर्याय है । मानव विज्ञान को पुन: दो भागों में बांटा जा सकता है - (अ)भौतिक मानव विज्ञान, और (ब)सांस्कृतिक मानव विज्ञान "प्रबन्ध" का सीधा सम्बन्ध सांस्कृतिक मानव विज्ञान से है क्योंकि संस्कृति मानव व्यवहार को निर्देशित व प्रभावित करती है । सत्य व असत्य, सही व गलत, अच्छे व बुरे, नैतिक व अनैतिक आदि बातों के निर्गमल में "संस्कृति" हमारा मार्गदर्शन करती है । "सांस्कृतिक मानव विज्ञान" के

अन्तर्गत हम मानव की संस्कृति, उसकी उत्पत्ति एवं विकास के इतिहास, संरचना व अन्य क्रियाकलापों का अध्ययन करते हैं । "संकृति" शब्द को परिभाषित करते हुए स्वर्गीय चक्रवर्ती राजगोपालचारी ने लिखा है कि "संस्कृति", रहन-सहन, व्यवहार एवं जीवन-यापन की एक पद्धति है जिसका निर्माण व्यक्तियों के समूह द्वारा किया जाता है एवं जिसका सम्प्रेषण एक समूह से दूसरे समूह को होता रहता है ।" संस्कृति एक व्यक्ति के नैतिक मापदण्ड को निर्धारित करने में सहायक होती है । अत: मानव विज्ञान का ' अध्ययन मानव-व्यवहार को समझने में सहायता प्रदान करता है ।

(2) समाजशास्त्र

एक सामाजिक प्रकिया होने के कारण प्रबन्ध का समाजशास्त्र (या समाज विज्ञान)से घनिष्ठ सम्बन्ध है । समाजशास्त्र के अन्थर्गत मानव के खेटे-छोटे समूहों, उनके व्यवहार, पारस्परिक सम्बन्धों, आदि का गहन अध्ययन किया जाता है । इन समूहों में व्यक्ति किस प्रकार से व्यवहार करता हे? वैयक्तिक व्यवहार का समूह पर क्या प्रभाव पड़ता है? एवं समूह पर व्यक्ति का क्या प्रभाव पड़ता है? आदि बातों का अध्ययन समाज विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है । समाज विज्ञान की एक नवीन शाखा है, "औद्योगिक समाजशास्त्र" । औद्योगिक अशान्ति, श्रमिकों के विभिन्न समूहों (जैसे-बाल व महिला श्रम, वृद्ध, आदि)की समस्याएं, पद, प्रतिष्ठा, संगठन की सोपान क्षृंखला में विभिन्न स्तर के व्यक्तियों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध, आदि का अध्ययन ज्ञान की इस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है । मनुष्य समाज में रहकर जो व्यवहार करता है तथा समाज में जो उसकी स्थिति है उसका प्रत्यक्ष प्रभाव उसके कार्य एवं विकास पर पड़ता है । इसी कारण समाजशास्त्र का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रबन्ध दृष्टिकोण पर पड़ता है।

(3) मनोविज्ञान

मनोविज्ञान वास्तव में "मानव के व्यवहार का विज्ञान" है । इसकी अनेक शाखाएं हैं जो संगठनों तथा उनमें कार्यरत व्यक्तियों के अध्ययन हेतु उपयोगी विचारधाराएं प्रदान करती है । उदाहरण के लिए, "सामाजिक मनोविज्ञान" मानवीय व्यवहार से संबंध रखता है तथा समूह एवं व्यक्ति परस्पर किस प्रकार एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं और उनके व्यवहार में सुधार लाते है का परीक्षण करता है । इसी प्रकार "संख्यात्मक मनोविज्ञान" वह नवीन शाखा है जो संगठनों के व्यक्तियों पर तथा व्यक्तियों के संगठनों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन से संबंध रखता है। इन अध्ययनों के अतिरिक्त मनोविज्ञान, कर्मचारियों के चयन, प्रशिक्षण, मनोबल, कार्य सन्तुष्टि, व्यक्तित्व, अभिप्रेरण, आदि में भी सहायता प्रदान करता है ।

इन विभिन्न व्यवहारवादी विज्ञानों ने अलग-अलग तरह से प्रबन्ध को प्रभावित एवं परिमार्जित किया है तथा उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है । व्यवहारवादी विज्ञान ने प्रबन्ध को समझने में जो नवीन दृक्किाएण प्रदान किया है, उसके परिणामस्वरूप प्रबन्ध में मानवीय सम्बन्धों की विचारधारा की एक नई संकल्पना ने जन्म लिया ।

व्यवहारवादी विज्ञान का महत्व व सीमाएं

महत्व - व्यवहारवादी विज्ञान ने प्रबन्ध के क्षेत्र में नई चेतना पैदा कर दी है । इसके महत्व की निम्नलिखित रूपों में समझा जा सकता है । (1)इससे मानवीय सम्बन्धों की

विचारधारा को समझने में मदद मिलती है । (2)इससे मानवीय व्यवहार को समझने में सहायता मिलती है । (3)यह दृष्टिकोण कर्मचारियों की सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में भी सहायक होता है । (4)व्यवहारवादी वैज्ञानिकों ने वैयक्तिक अभिप्रेरण, समूह व्यवहार, नेतृत्व, सम्प्रेषण, संघर्ष एवं समाधान आदि क्षेत्रों में जो महत्वपूर्ण योगदान दिया है उसने प्रबन्ध दृष्टिकोण की काया पलट कर दी है । उनके योगदान ने ही प्रबन्ध को विज्ञान का दर्जा दिलवाने में सहायता की है ।

आलोचनाएं व सीमाएं - आलोचकों का यह मत है कि व्यवहारवादी वैज्ञानिकों ने जो सिद्धान्त व मॉडल प्रतिपादित किए हैं वे अत्यन्त जटिल है तथा उनकी शब्दावली भी स्पष्ट व आसानी से समझ में न आने वाली है ।

उपर्युक्त सीमाओं के होते हुए भी प्रबन्ध के व्यवहारवादी दृष्टिकोण का विकास अपने आप में एक अपूर्ण योगदान है ।

प्रबन्ध में प्रणालीबद्ध दृष्टिकोण

प्रो. लुडविग वॉन बरटालांफी के सामान्य प्रणालीगत सिद्धान्त के अनुसार "ज्ञान की प्रत्येक शाखा अपने वातावरण की एक प्रणाली है ।" इसी सिद्धान्त के आधार पर सन 1960 के दशक में प्रबन्ध की प्रणालीगत विचारधारा का सूत्रपात हुआ । प्रणाली इकाईयों का समूह है जिनमें परस्पर सम्बन्ध होता है । यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक प्रणाली तथा उप-प्रणाली की एक नियत कार्य-विधि होती है । प्रत्येक प्रणाली अपने वातावरण से संसाधन या निवेश प्राप्त करती है । सब ही प्रत्येक प्रणाली उन संसाधनों का रूपान्तरण या प्रसंस्करण करके वातावरण को उत्पादन प्रदान करती है । इसके साथ ही प्रत्येक प्रणाली में पुन: निवेश की भी व्यवस्था होती है जिसके द्वारा उत्पादन का मूल्यांकन करके आवश्यक सुधार लाया जाता है ।

प्रणालीयां दो प्रकार की होती है- बन्द व खुली । बन प्रणाली अपने वातावरण से न तो प्रभावित होती है और न ही उसे प्रभावित करती है । खुली प्रणाली वह है जो बाहय वातावरण एवं शक्तियों से प्रभावित होती है एवं उन्हें प्रभावित भी करती है ।

व्यावसायिक प्रबन्ध एक खुली प्रणाली हैं

प्रबन्ध की प्रणालीगत अवधारणा के अनुसार व्यावसायिक संगठन को एक खुली प्रणाली के रूप में स्वीकार किया गया है जिसका अपना आन्तरिक व बाहय वातावरण होता है । व्यवसाय का बाहरी वातावरण आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक संगठन एवं संस्थाओं के तम से बनता है जो परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते है । इसी प्रकार आन्तरिक पर्यावरण भी होता। है जिसमें अनेक उप-प्रणालियां कार्य करती है । प्रबन्ध की दृष्टि से नियोजन, संगठन, निर्देशन, व नियन्त्रण रूपी उप-तन्त्र कार्य करते है जिनसे प्रबन्ध की प्रणाली पूर्ण हो जाती है । संगठन के आर्थिक कार्यो की दृष्टि से भी प्रत्येक उपक्रम में क्रय, उत्पादन, वित्त, लेखांकन व विपणन विभाग रूपी उप-तन्त्र होते है जो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । प्रबन्धक को इन सभी आन्तरिक व ब्हाय कार्य उप-तन्त्रों में राजनय स्थापित करना पडता है, तभी यह पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है । सक्षेप में, प्रबन्ध की प्रणाली अवधारणा यह बतलाती है कि प्रबन्ध को अपने संगठन की सफलता के लिए, एक एकीकृत तन्त्र बनाना

चाहिए तथा इसके सफल संचालन हेतु प्रबन्धकों को उसकी आन्तरिक व बाहरी प्रणालियों में समुचित समन्वय स्थापित करना चाहिए ।

प्रबन्ध तन्त्र की क्रियाविधि निम्नाजुरगर है :

1- निवेश

2- रूपान्तरण या प्रसंस्करण

3- सम्प्रेषण व्यवस्था

4- उत्पादन एवं

5- पुन: निवेश ।

इस प्रकार प्रबन्ध-तन्त्र निरन्तर रूप में कार्य करता रहता है ।

सांयोगिक या आकस्मिकता दृष्टिकोण:

आकस्मिकता दृष्टिकोण यह प्रबन्ध के सिद्धान्तों से संबंधित आधुनिकत दृष्टिकोण है । निम्नांकित चित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि सांयोगिक दृष्टिकोण का उद्‌गम किस प्रकार हुआ।

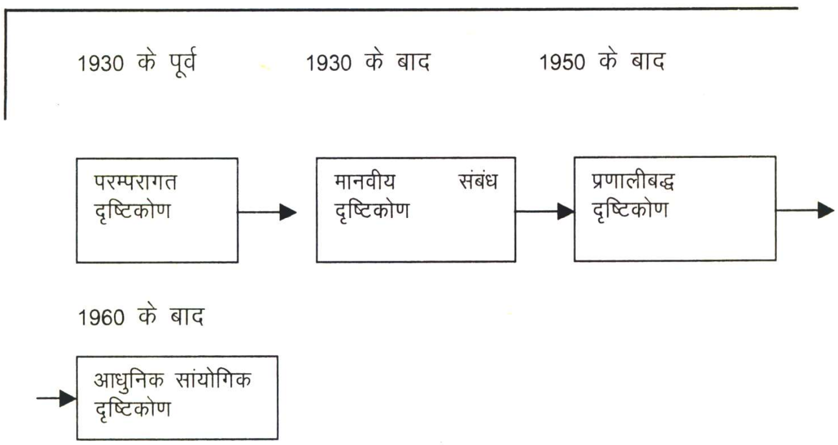

सांयोगिक दृष्टिकोण की विशेषताएं

सांयोगिक दृस्टिकोण्ड का विकास मुख्य रूप से टॉम बर्न्स, जी.डब्ल्यू स्टाकर, जोन बुडबार्ड, पाल लारेस, जे.लार्स्च, जेम्स थॉम्पसन विद्‌वानों ने किया । इस दृष्टिकोण को मानने वाले प्रबन्धशास्त्री फेयोल के विश्वव्यापी प्रबन्ध के सिद्धान्तों को प्रत्येक परिस्थिति में व्यावहारिक नहीं मानते । उनकी यह मान्यता हे कि प्रबन्धकीय एवं संख्यात्मक कार्यो के विषय में प्रबन्ध को विभिन्न निर्णय लेने पड़ते हैं । ऐसे निर्णय लेने के दो प्रमुख विकल्प हो सकते हैं - (अ)निर्णय प्रबन्ध के परम्परागत सिद्धान्तों व तकनीकों के आधार पर लिए जाएं, और (ब)निर्णय लेने में परम्परागत धारणाओं को त्याग कर विद्‌यमान परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए उनके अनुरूप आवश्यक निर्णय लिए जाएं । इस प्रकार सांयोगिक दृष्टिकोण आकस्मिक समस्याओं के समाधान के लिए व्यावहारिक मार्ग प्रशस्त करता है । विशिष्ट परिस्थिति के अनुसार ही संगठन संरचना तथा प्रबन्धकीय व्यवहार निर्धारित किए जाते है । उदाहरण के लिए, किसी उपक्रम की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए कौन-सा प्रेरक तत्व

अधिक उपयुक्त रहेगा, यह अमुक परिस्थिति पर निर्भर करेगा । इसी प्रकार कौन-सी नेतृत्व शैली का अनुकरण किया जाए, यह भी कर्मचारियों के प्रकार, संख्या तथा तत्कालीन परिस्थितियों पर निर्भर करेगा । संक्षेप में, हम यह कह सकते है कि प्रबन्ध एवं संगठन का कोई एक सर्वोत्तम मार्ग नहीं है, वरन् यह विद्यमान परिस्थितियों व सम्पूर्ण वातावरण के आधार निवारित किया जाता है । इसी कारण इस दृष्टिकोण को "आकस्मिकता दृष्टिकोण" की संज्ञा दी जाती है ।

इस दृष्टिकोण को सांयोगिक दृष्टिकोण भी कहते हैं क्योंकि इसकी सफलता या असफलता निम्नांकित घटकों के साथ सांयोगिक होती है :

(1) पर्यावरण

पर्यावरण दो तत्वों के संयोग से निर्मित होता है - आन्तरिक व बाहय ।
आन्तरिक वातावरण से तात्पर्य संस्था के भीतर की स्थिति से है, जैसे, उप-यन्त्रों या विभागों की संरचना, अधिकारों का वितरण, कर्मचारियों की स्थिति आदि । बाहय पर्यावरण में राजनीतिक, सामाजिक, कानूनी, आदि स्थिति का समावेश किया जाता है ।

(2) प्रौद्योगिकी -

इससे आशय यह है कि प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के साथ आवश्यक समायोजन किया जाना चाहिए ।

(3) संगठन का आकार

संगठन का आकार भी एक आधार हो सकता हैं जैसे, कर्मचारियों की संख्या,विनियोजित पूंजी, उत्पादन की मात्रा आदि । बड़े अथवा छोटे आकार की दृष्टि से भी प्रबन्धक को आवश्यक समायोजन करने पड़ते हैं । बड़े आकार के व्यवसाय में समस्याएं अधिक जटिल होती ।

(4) स्वामित्व -

कम्पनी स्वरूप वाले संगठन में स्वामित्व व प्रबन्ध प्राय: अलग-अलग होता है अत: प्रबन्धक को सभी के हितों को ध्यान में रखकर काम करना पड़ता है ।

(5) कर्मचारी -

आधुनिक युग में सेविवर्गीय प्रशासन ही प्रबन्ध कहलाता है जिसके लिए वैज्ञानिक भर्ती, चयन, प्रशिक्षण आदि सम्मिलित होते हैं ।

(6) सामाजिक परिवर्तन -

पेशेवर प्रबन्धकों को सामाजिक परिवर्तनों के अनुरूप समायोजन करना पड़ता है ।

संक्षेप में, खुली तथा आनुकूलिक प्रणाली ही वास्तव में सांयोगिक या आकस्मिकता दृष्टिकोण है, क्योंकि प्रणाली दृष्टिकोण के अन्तर्गत मात्र तन्त्र व उपतन्त्रों के अन्र्तसम्बन्ध एवं अन्तर-आश्रितता पर बल दिया जाता है । आकस्मिकता दृष्टिकोण में वातावरण व विद्यमान परिस्थितियों के अन्र्तसम्बन्ध तथा उनके अनुरूप उपयुक्त संगठन संरचना के निर्माण का सुझाव दिया जाता है । पीटर पफ.ड्रकर के अनुसार यह अन्र्तसम्बन्ध आधुनिक व्यावसायिक संगठनों के लिए! सर्वोत्तम है ।

3.2 उद्देश्यानुसार प्रबन्ध (एम.बी.ओ.)

मानव क्रियाओं का कोई न कोई निमित्त अवश्य होता है जिसे हम, ध्येय, प्रयोजन, मिशन, लक्ष्य, उद्देश्य आदि नामों से जानते हैं । क्रियाओं के आरम्भ करने से पूर्व उद्देश्यों का निर्णयन उसी प्रकार आवश्यक है जैसे यात्रा आरम्भ करने से पूर्व गन्तव्य स्थान का निर्धारण ।

व्यावसायिक जगत में गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा, उत्पादन का बढ़ा हुक पैमाना, प्रमाणित नई तकनीकों का प्रयोग, श्रम-संगठनों का प्रभाव व सरकार के हस्तक्षेप के कारण प्रबन्ध का क्षेत्र दिन-प्रतिदिन जटिल होता जा रहा है । उत्तम परिणामों की प्राप्ति के लिए प्रबन्ध शास्त्रियों ने समय-समय अनेकों विधियों तथा तकनीकों का प्रयोग किया है । प्रबन्ध में प्रयोग की जाने वाली ऐसी नवीनतम तकनीक को उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध या एम.बी.ओ. के नाम से जाना जाता है ।

एम.बी.ओ. के प्रयोग का श्रेय पीटर पफ.ड्रकर को जाता है, जिन्होंने अपनी पुस्तक में सर्वप्रथम 1954 में इस शब्दावली का प्रयोग किया । इन्हें ही इस प्रबन्ध विधि का जन्मदाता माना जाता है । हालांकि ड्रकर ने लिखा है कि "मैंने एम.बी.ओ. का आविष्कार नहीं किया । वास्तव में एलफ्रेड स्लोअन ने सन् 1950 में इस शब्दावली का सर्वप्रथम प्रयोग किया था । मैंने तो इसे प्रबन्ध के क्षेत्र में एक केन्द्रीय स्थिति प्रदान की है, जबकि पहले इसे पार्श्व प्रभाव के रूप में देखा जाता रहा है ।"

एम.बी.ओ. की प्रबन्ध विधि का प्रयोग करने से पूर्व दबाव, बल अथवा संकटावस्था जैसी प्रबन्ध-विधियों अथवा तकनीकों का प्रयोग प्रबन्ध क्षेत्र में उत्तर परिणामों की प्राप्ति के लिए किया जाता था । ये सभी विधियाँ, प्रबन्ध क्षेत्र में आयोजन की रिक्तता की सूचक हैं तथा केवल अल्प-कालीन परिणाम उत्पन्न कर सकती है । जबकि एम.बी.ओ. प्रबन्ध का एक दर्शन है और यही कारण है कि इतने अल्प समय में इस विधि को व्यापक मान्यता प्राप्त हो सकी है । कुछ व्यक्ति इसे प्रबन्ध के एक दर्शन के रूप में नही देख पाते । दर्शन-विहीन एम.बी.ओ., सूत्रीकरण करने, परिणाम द्वारा प्रबन्ध का रूप धारण कर लेता है । इस प्रकार के प्रबन्ध में, उच्च सोपानिक अधिषासी स्वयं को निम्न अधिकारियों अथवा कर्मचारियों के द्वारा किये जाने वाले कार्यो से अलग कर लेता है । वह अपना कर्तव्य इतना ही मानकर चलता है कि निम्न अधिकारियों को वांछित परिणामों की सूचना दे दे तथा कार्य की समाप्ति पर वास्तविक परिणामों की तुलना पूर्व निर्धारित परिणामों से कर ले तथा इस तुलना के आधार पर निम्न अधिकारियों के लिए दण्ड अथवा परितोषिक की व्यवस्था कर दे । हम आगे एम.बी.ओ. के दर्शन की चर्चा करेगें और उस समय एम.बी.ओ. का अन्य समानान्तर प्रबन्ध विधियों के साथ तुलनात्मक अन्तर देखने का प्रयत्न करेगें ।

3.3 अर्थ एवं क्षेत्र

ऐलन के अनुसार, "उद्देश्य" का अर्थ है अन्तिम परिणाम । 'कुण्ट्ज तथा ओ'डोनैल के शब्दों में, "उद्देश्य" प्रबन्ध कार्यक्रम का अन्तिम बिन्दु है । उद्देश्य सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकते हैं । सामान्य उद्देश्य व्यापक तथा दीर्घकालीन होते हैं जबकि विशिष्ट उद्देश्य सामान्य

उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्धारित अल्पकालीन मध्यवती अथवा अन्तिम परिणाम होते हैं । सर्वप्रथम, दीर्घकालीन उद्देश्यों का निर्धारण करना होता है । मध्यवर्ती अथवा अल्पकालीन उद्देश्य दीर्घकालीन उद्देश्यों की पृष्ठभूमि में निर्धारित किये जाते हैं ।

उद्देश्य निर्धारण के क्षेत्र : व्यावसायिक उपक्रम का कोई एक उद्देश्य नहीं होता । ये उपक्रम बहुउद्धेश्यीय होते हैं । पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार, उपक्रम को निम्न क्षेत्रों में उद्देश्य निर्धारण करने का प्रयत्न करना चाहिए :

(1) विपणन अवस्थिति ।

1. नवीन प्रक्रिया : किन-किन नई वस्तुओं का उत्पादन करना है तथा वर्तमान में उत्पादित किन-किन वस्तुओं का उत्पादन बन्द करना है । यह निरन्तर किया जाने वाला प्रयोग है ।
2. उत्पादकता ।
3. भौतिक एवं वित्तीय संसाधन ।
4. प्रबन्धकीय निष्पादन एवं विकास ।
5. कार्मिक निष्पादन एवं प्रवृत्ति तथा जन-लेखा देयता ।

ऐलन के मतानुसार, व्यावसायिक उपक्रमों को निम्न क्षेत्रों में अपने सामान्य उद्देश्य निर्धारित करने चाहिए :

(1) उपक्रम का स्वरूप ।
(2) विक्रय में सुधार ।
(3) उत्पादों में सुधार ।
(4) परिचालन की कार्यदक्षता ।
(5) प्रबन्ध में सुधार ।
(6) जब-कल्याण के लिए अंशदान, तथा
(7) लाभदेयता ।

दोनों विद्वानों द्वारा बताए गए उद्देश्य निर्धारण के क्षेत्र लगभग एक से ।

3.4 प्रक्रिया

सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण करने के पश्चात् उपक्रम के अल्पकालीन तथा मध्यवर्ती उद्देश्य निर्धारित किए जाने चाहिए । उपक्रम के उद्देश्यों को विभिन्न इकाइयों, उत्पादों, प्रबन्धकों तथा कार्मिकों के उद्देश्यों में परिवर्तित करना होता है । उद्देश्य निर्धारण का क्रम अधोगामी होता है अर्थात् पहले उपक्रम के उद्देश्य निर्धारित किये जायें, फिर इकाइयों के, पहले मुख्य अधिशासी के उद्देश्य निर्धारित किये जायें, फिर सौपानिक क्रम में अन्य प्रबन्धकों तथा कार्मिकों के । उद्देश्य निर्धारण में सर्वाधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है ।

प्रबन्धकों को अपने उद्देश्य निर्धारण की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करना आवश्यक है । ये उद्देश्य सामान्य एवं उपक्रम के उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर तय करने होते हैं । प्रबन्धकों के उद्देश्यों के अन्तिम अनुमोदन का अधिकार प्रवराधिकारी का होता है । उद्देश्य निर्धारण एवं

अयुमोदन के क्रम में, प्रबन्धकी की उच्चाधिकारियों के साथ समय-समय पर मीटिंग आयोजित करना आवश्यक है । इस प्रकार की गोष्ठियाँ अथवा बैठक निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार आयोजित की कती हैं । उद्देश्य निर्धारण में लचीलेपन की आवश्यकता होती है जिससे बदलती हुई परिस्थितियों में, इनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए जा सकें । उद्देश्यों की समय-समय पर समीक्षा तथा पुनरावलोकन करने की आवश्यकता है जिससे कि वे व्यावहारिक बने रहें । समीक्षा तथा पुनरावलोकन का कार्य प्रबन्धक एवं उसके उच्चधिकारी को सम्मिलित रूप रो सम्पादित करना चाहिए ।

इस सारी व्यवस्था का प्रयोजन यह है कि प्रबन्धक, उद्देश्य निर्धारण के क्रम में रूचि लें तथा अर्न्तग्रस्तता की भावना का अनुभव करें । इस प्रकार निर्धारित उद्देश्य प्रबन्धक ने वैयक्तिक उद्देश्य का रूप धारण कर लेते हैं । इसके विपरीत यदि उद्देश्य उच्चाधिकारी द्वारा प्रबन्धकों पर थोप दिये जाते हैं तो ऐसे उद्देश्य उपक्रम अथवा विभाग के उद्देश्य तो हो सकते हैं लेकिन प्रबन्धक के वैयक्तिक उद्देश्यों का रूप कदापि धारण नहीं ले सकते । वैयक्तिक उद्देश्यों की प्राप्ति में प्रबन्धक की प्रतिष्ठा दाँव पर लग जाती है, जिन्हें प्राप्त करने के लिए वह अधिकाधिक प्रयास करता है ।

एम.बी.ओ. को जब प्रबन्ध के दर्शन के रूप में अंगीकार कर लिया जाता है तो उपक्रम के उद्देश्य वैयक्तिक उद्देश्यों का रूप धारण कर लेते हैं । उद्देश्य सत्यापनीय होने चाहिए और इस दृष्टि से उनका परिमाणात्मक होना आवश्यक है ।

3.5 चरण

उद्देश्यानुसार प्रबन्धक को किसी संगठन में अनायास ही लागू नहीं किया जा सकता । इसे लागू करने के लिए काफी पूर्व तैयारी की आवश्यकता होती है । नीचे हम उन विभिन्न चरणों का वर्णन करेगें, जिनका पालन करते हुए उद्देश्यानुसार प्रबन्ध को लागू किया जाना चाहिए । ये चरण हैं :

(1) समग्र संगठन के उद्देश्यों का निर्धारण

उद्देश्यानुसार प्रबन्ध को लागू करने के लिए ऊपर से नीचे की ओर चलना होता है । सबसे पहले शीर्ष प्रबन्ध को समग्र संगठन के उद्देश्यों के संबंध में एकमत होने की आवश्यकता होती है । इन उद्देश्यों के निर्धारण की दृष्टि से प्रबन्धकगण मूल परिणाम क्षेत्रों की पहिचान कर उनका निर्धारण करते हैं । मूल परिणाम क्षेत्र हम उन्हें कहते हैं जो समग्र संगठन के निष्पादन को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं । ये क्षेत्र विक्रय की मात्रा, फर्म को प्राप्त अंश, वस्तु की किस्म आदि से संबंधित हो सकता है । "अमेरिका की जनरल इलेक्ट्रीकल कम्पनी" ने अपने व्यापार से संबंधित निम्नांकित आठ मूल-परिणाम क्षेत्रों की पहचान की थी । ये क्षेत्र हैं - लाभ देवता, विपणन स्थिति, उत्पादकता, उत्पाद नेतृत्व, कार्मिक विकास, कर्मचारियों की अभिवृत्ति, लोक-उत्तरदायित्व तथा दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन उद्देश्यों में सन्तुलन ।

मूल-परिणाम-क्षेत्र की पहिचान करने के उपरान्त अगला कदम निष्पादन के मापन का उत्पन्न होता है । उद्देश्यों का निर्धारण इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि उन्हें वस्तुनिष्ठता के साथ मापा जा सके । इस दिशा में अन्तिम कदम वास्तविक लक्ष्यों का निर्धारण करना होता

है । ये लक्ष्य शीर्ष प्रबन्धक की सहमति एवं सहयोग से निर्धारित किये जाते हैं । लक्ष्यों के निर्धारण में अन्तिम अधिकार मुख्य अधिशाषी अधिकारी को प्रदान किये जाने चाहिए । लक्ष्यों की जानकारी संगठन के प्रत्येक सदस्य तक पहुँचाने की आवश्यकता होती है । केवल संवहन मात्र से काम नहीं चलता, सदस्यों द्वारा उन्हें समझना भी आवश्यक होता हैं उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की सफलता इसमें है कि संगठन के सदस्य उन लक्ष्यों को स्वीकार कर लें ।

(2) उद्देष्यानुसार प्रबन्ध के लिए संगठन का विकास करना

उद्देश्यानुसार प्रबन्ध को लागू करने की प्रकिया में द्वितीय महत्वपूर्ण चरण, संगठन को इस प्रकार के प्रबन्धक दर्शन एवं पद्धति के लिए तैयार करना है । शीर्ष प्रबन्ध उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की आवश्यकता एवं लाभों के प्रति प्रतिबद्ध है तो उद्देश्यानुसार प्रबन्ध को लागू करने का श्रीगणेश किया जा सकता है, लेकिन केवल इतना ही पर्याप्त नही है । मध्यम स्तरीय एवं निम्नस्तरीय प्रबन्धकों तथा कार्मिकों को भी इस प्रकार के प्रबन्ध की उपयोगिता को समझकर इसे ग्रहण करने के लिए तैयार करना होगा । यह चरण ठीक इसी प्रकार से है जैसे बीज बोने से पूर्व भूमि को बीज ग्रहण करने के लिए तैयार करना अन्यथा बीज का सही रूप से अंकुरण नहीं हो सकता ।

संगठन विकास की अनेक विधियाँ प्रचलित है जिनमें संवेदन प्रशिक्षण, ग्रिड । प्रशिक्षण, सर्वेक्षण पुनर्निवेश तथा प्रक्रम मंत्रणा प्रमुख है । उद्देश्यानुसार प्रबन्ध के लिए संगठन का विकास करने हेतु उपर्युक्त विधियों का प्रयोग किया जा सकता है ।

(3) प्रत्येक इकाई के लिए उद्देश्यों का निर्धारण

समग्र संगठन के लिए उद्देश्यों का निर्धारण करने तथा उद्देश्यानुसार प्रबन्ध के लिए. पृष्ठभूमि तैयार करने के उपरांत अगला चरण संगठन की समस्त इकाइयों के लिए उद्देश्यों का निर्धारण करना होता है । समग्र संगठन के उद्देश्य दीर्घकालीन प्रकृति के होते हैं जबकि इकाइयों के उद्देश्य अल्पकालीन अवधि के लिए निर्धारित किये जाते हैं । इकाइयों के उद्देश्य निष्पादन लक्ष्यों के रूप में प्रकट किये जाते हैं । ये उद्देश्य इस प्रकार से निर्धारित किये जाने चाहिए कि इनके माध्यम से समग्र संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके । इकाईयों तथा समग्र संगठन के उद्देश्यों के मध्य किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं होना चाहिए ।'

(4) वैयक्तिक उद्देश्यों का निर्धारण

उद्देश्यानुसार प्रबन्धक की स्थापना में अगला चरण वैयक्तिक उद्देश्यों का निर्धारण आता है । संगठन का विकास उद्देश्यानुसार प्रबन्ध को लागू करने के लिए पहले ही किया जा, चुका होता है 1 कर्मचारियों का पूर्वाभिमुखीकरण एवं समस्त इकाइयों के उद्देश्य निर्धारित किये जा चुके होते हैं । वैयक्ति उद्देश्यों का निर्धारण, उद्देश्य निर्धारण की श्रृंखला में अन्तिम कड़ी है ।

वैयक्तिक उद्देश्यों के निर्धारण के लिए यह आवश्यक है कि सभी व्यक्तियों को समग्र संगठन एवं उनसे सम्बन्धित इकाइयों के उद्देश्यों की पूर्व सूचना प्रदान कर दी गई है । वैयक्तिक उद्देश्यों का निर्धारण वरिष्ठ एवं अधीनस्थ कर्मचारी के पारस्परिक सहयोग से किया जाना चाहिए । उद्देश्य निर्धारण की पहल स्वयं अधीनस्थ कर्मचारी पर छोड़ी देनी चाहिए । वरिष्ठ अधिकारी का कार्य तो मार्ग-दर्शन एवं विभिन्न कर्मचारियों के उद्देश्यों एवं इकाई के उद्देश्यों के मध्य समन्वय स्थापित करने तक सीमित रहना चाहिए । वैयक्तिक उद्देश्यों के

निर्धारण के लिए यह उत्तम रहेगा कि अन्य इकाइयों में समान स्तरीय व्यक्तियों के उद्देश्यों की जानकारी भी इन व्यक्तियों को प्रदान की जाए । उद्देश्यों का परिमाणात्मक रूप में व्यक्त किया जाना आवश्यक होता है ।

(5) आवर्ती अभिगोश्ठियो का आयोजन -

उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समय-समय पर वरिष्ठ अधिकारियों एवं अधीनस्थ के मध्य गोष्ठियों का आयोजन किया जाए । इन गोष्ठियों का मूल प्रयोजन यह जाँच करना होता है कि क्या वर्तमान परिस्थितियों में पूर्व निर्धारित उद्देश्य वैध में। यदि व्यवसाय के वातावरण में कोई ऐसा परिवर्तन होता है जिस पर कार्मिकों का कोई नियन्त्रण नहीं है तो बदले हुए वातावरण के अनुरूप उद्देश्यों में भी समयानुसार परिवर्तन करना आवश्यक होता है । इन गोष्ठियों के माध्यम से वरिष्ठ अधिकारियों को अधीनस्थों की कठिनाइयों का भी आभास हो जाएगा । इस प्रकार की जानकारी न केवल भविष्य में उद्देश्य निर्धारण में सहायक सिद्ध होगी अपितु निष्पादन के मूल्यांकन में भी वरिष्ठ अधिकारियों को एक व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रदान कर सकेंगी । इस प्रकार की गोष्ठियों का मानवीय संबंधों की स्थापना की दृष्टि से भी महत्व है । महत्वपूर्ण योगदान होता है ।

(6) परिणामों का मूल्यांकन

उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की श्रृंखला में अन्तिम चरण परिणामों का मूल्यांकन करना होता है। उद्देश्यानुसार प्रबन्धक की विशेषता इस बात में निहित है कि कर्मचारियों को स्वत: नियन्त्रण एवं मूल्यांकन का अवसर प्रदान किया जाता है वरिष्ठ अधिकारी कर्मचारियों की गलती ढूँढ़ने एवं उन्हें दण्डित करने के उद्देश्य से मूल्यांकन नहीं करते अपितु उन कारणों को खोजने का प्रयास करते है जिनके कारण निष्पादन निर्धारित उद्देश्यों से कम रह जाता है । इस प्रकार की खोज वरिष्ठ एवं अधीनस्थ कर्मचारी दोनों के सहयोग से की जाती है ।

3.6 गुण एवं दोष

एम.बी.ओ. के प्रमुख लाभ :- एम.बी.ओ. के प्रमुख लाभों का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है :

(1) प्रबन्धक में सुधार ।

(2) संगठन की अस्पष्टता - प्रत्येक प्रबन्धक एवं कार्मिक अपने कर्तव्य, दायित्व एवं अधिकार क्षेत्र का स्पष्ट ज्ञान रखता है और इस प्रकार संगठनों में व्याप्त भ्रान्ति से छुटकारा मिल जाता है ।

(3) भारार्पण एवं विकेन्द्रीकरण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है तथा उनसे उत्पन्न लाभ संगठन को प्राप्त होते है ।

(4) अभिप्रेरणा - उद्देश्यों के निर्धारण में अन्र्तग्रस्तता के फलस्वरूप प्रबन्धकों को अभिप्रेरणा मिलती है । अन्तः प्रेरणा ही वास्तविक अभिप्रेरण है ।

(5) नियन्त्रण - वास्तविक निष्पादन की पूर्व निर्धारित उद्देश्यों से तुलना की जाती है जिससे नियन्त्रण का कार्य सुगम हो जाता है । सत्यता तो यह है कि एम.बी.ओ. बाह्य नियन्त्रण के स्थान पर, स्व-नियंत्रण को अधिक महत्व प्रदान करता है । स्व-नियंत्रण

की दृष्टि से यह आवश्यक है कि निष्पाद एवं अन्य सभी संबंधित सूचनाओं का प्रेषण प्रबंधक को किया जाना चाहिए न कि उसके उच्चाधिकारी को । स्वयं प्रबन्धक को निष्पादन सम्बन्धी सूचनाएँ प्रतिवेदन आदि प्रदान करने से स्वनियंत्रण की प्रवृत्ति को बल मिलता है । इन सूचनाओं के आधार पर वे अपनी भावी योजनाओं एवं कार्यक्रमों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकते हैं । इसके विपरीत यदि निष्पादन सम्बन्धी उक्त सूचनाएँ उच्चाधिकारियों को प्रदान की जाती है तो इससे बाहय नियंत्रण की प्रवृत्ति को बल मिलता है एवं इस प्रकार की प्रवृत्ति उद्देश्यानुसार प्रबन्ध का अपनिवेश करती है ।

स्व-नियंत्रण को ड्रकर इतना महत्व प्रदान करते हैं कि उन्होंने अपनी पुस्तक में इस अध्याय का शीर्षक ही "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध एवं स्व-नियंत्रण" रखा है । स्व-नियंत्रण, ड्रकर की दृष्टि में, एम. बी.ओ. के प्रबन्ध-दर्शन का एक अनिवार्य अंग है । तकनीकी प्रगति ने इसके महत्व में और अधिक वृद्धि की है । "परिणाम द्वारा प्रबन्ध" तथा उद्देश्यों द्वारा "प्रबन्ध" में यही एक आधारभूत अन्तर बिन्दु है ।

(6) आत्मानुशासन की प्रवृत्ति बढ़ावा ।

(7) समन्वय में सुविधा/समन्वय स्वेच्छा से सम्पन्न हो जाता है ।

(8) एकीकृत आयोजन का पथ-प्रदर्शन करता है ।

अप निर्देशन एवं कमियॉ

कार्यकारी आधार पर किया गया विशिष्टीकरण, एम.बी.ओ के मार्ग में झधा उत्पन्न करता है । हम इसे तनिक गहराई से समझने का प्रयास करें, क्योंकि विशिष्टीकरण आज के युग में प्रगति का आधार है और भविष्य में विशिष्टीकरण की प्रवृत्तियाँ और अधिक बलवती होंगी । इस संदर्भ में विशिष्टीकरण की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता ।

कार्यकारी विशिष्टीकरण किस प्रकार एम.बी.ओ. के मार्ग में बाधा उपस्थित करता है, इसे हम एक आख्यान की सहायता से स्पष्ट करना चाहेंगे । आख्यान इस प्रकार है :

तीन शिल्पी भवन-निर्माण के उद्देश्य से पत्थरों की कटाई-छँटाई के कार्य में रत थे । उनसे यह पूछे जाने पर कि आप क्या कर रहे हैं प्रथम शिल्पी ने कहा, "मैं रोजी कमा रहा हूं।" दूसरे शिल्पी का उत्तर था, "मैं एक छाल शिल्पी हूं अत: चाहता हूं कि पत्थरों की सर्वोत्तम कटाई-छँटाई की जा सके ।" तीसरे शिल्पी ने प्रश्नकर्ता को ध्यान में रखते हुए कहा, "मैं भवन-निर्माण। के कार्य में रत हूं ।"

प्रथम शिल्पी जानता है कि उसे उचित मजदूरी के बदले में, उचित मात्रा में काम करना है । इस शिल्पी में प्रबन्धक के गुण विद्यमान नहीं है । यह शिल्पी प्रबन्धक नहीं बन सकता। दूसरा शिल्पी एक कुशल कार्मिक है । उसे अपना कार्य ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण दिखलाई पड़ता है। अन्य व्यक्तियों के कार्यो से उसके कार्य का क्या सम्बन्ध है, वह नहीं जानता । उपक्रम के उद्देश्य क्या है, उस परिवेश में उसके कार्य का क्या महत्व है, उससे यह अपरिचित रहता है । इस प्रकार के प्रबन्धक (कार्मिक)अपने क्रियाकारी विशिष्टीकरण के विस्तारवादी में संलग्न हो जाते है और उनकी सह प्रवृत्ति उपक्रम में साम्राज्य-निर्माण को बढावा देती है । इस प्रकार के

प्रबन्धक उपक्रम को गौण तथा स्वयं के साम्राज्य को प्रमुख स्थान देते हैं । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार के प्रबन्धक उपक्रम के लिए एक समस्या के रूप में होते है और उनकी यह प्रवृत्ति उपक्रम के लिए घातक सिद्ध होती है । ये प्रबन्ध एम.बी.ओ. के मार्ग में बाधा उपस्थित करते है ।

आख्यान का तीसरा शिल्पी एक प्रबंधक का दृष्टिकोण रखता है । वह अपने कार्य को समग्र परिवेश में देखता है । इससे उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धक में सहायता मिलती है ।

जैसा कि पूर्व में उल्लेखित किया जा चुका है कि भविष्य में तकनीकी के विकास के साथ विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति अधिक बलवती सिद्ध होगी । तकनीकी विकास का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष भी हैं जिसकी ओर हम आपका ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे । तकनीकी विकास जहाँ एक और विशिष्टीकरण को बढ़ावा देता है वहाँ दूसरी ओर विभिन्न क्रियाओं के बीच परस्परावलम्बन में वृद्धि करता है । परस्परावलम्बन के कारण समन्वय की आवश्यकता बढ़ जाती है तथा परावलम्बव जो परस्परावलम्बन का एक अंग है, समन्वय को अनिवार्य बना देता है । यह अपेक्षित है कि कार्यकारी विशेषज्ञ, तकनीकी विकास के इस पक्ष को पहचान कर एम.बी.ओ. के अनुप्रयोग को उचित अवसर देगें ।

एम.बी.ओ. के मार्ग में अन्य अपनिवेश एवं बाधाएँ प्रबन्ध की सौपानिक संरचना तथा प्रबंध के विभिन्न स्तरों के अन्तक के कारण उपस्थित होती हैं । एम.बी.ओ. का अनुप्रयोग, सब का ध्यान उपक्रम के स्वामी पर निन्दित कर देता है, क्योंकि उसकी सहायता तथा सहयोग के बिना एम.बी.ओ. का प्रयोग सम्भव नहीं है । ऐसी स्थिति में सामान्य प्रवृत्ति स्वामी के आचरण एवं व्यवहार के अनुकरण की हो जाती है जिससे प्रबंधक का ध्यान निष्पादन से हट जाता है । प्रबन्ध विभिन्न स्तरों के अन्तरक उपक्रम को समग्र रूप में देखने के स्थान पर स्तरानुसार खण्डित तस्वीर प्रस्तुत करता है । यह प्रवृत्ति भी एम.बी.ओ. के मार्ग में बाधक सिद्ध होती है ।

एम.बी.ओ. के अनुप्रयोग में कर्मचारी संगठन के उद्देश्यों के निर्धारण में कठिनाई आती है । उनके उद्देश्यों की अभिव्यक्ति परिमाणात्मक रूप में कर पाना एक दुष्कर कार्य है ।
एम.बी.ओ. के मार्ग में आने वाली अन्य कठिनाइयाँ निम्नलिखित है :

(1) अल्पकालीन उद्देश्यों को अधिक महत्व प्रदान करना । कभी-कभी अल्पकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दीघकालीन उद्देश्यों की बलि चढा दी जाती है ।
(2) एम.बी.ओ. के दर्शन से जब दृष्टि हट जाती है तो यह प्रबंध का सूत्रीकरण मात्र बनकर रह जाता है । सूत्रों को पढ़ाना-सिखाना एक आसान काम है, जबकि दर्शन की शिक्षा-दीक्षा एक दुष्कर कार्य है ।
(3) उद्देश्य पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने पर, लोचविहीनता का भय बढ़ जाता है ।
(4) परिमाणात्मक प्रवृत्ति पर बल देने से गुणात्मक हानियाँ सम्भव है ।
(5) प्रबन्धक यह भूल जाते हैं कि प्रबन्ध उद्देश्य-निर्धारण से परे कुछ और भी है । प्रबंध का क्षेत्र अधिक व्यापक एवं समग्र होता है ।

उद्देश्यानुसार प्रबन्ध का दर्शन

ड्रकर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि व्यावसायिक उपक्रमों को एक ऐसे प्रबंध सिद्धान्त की आवश्यकता है जो वैयक्तिक शक्ति एवं दायित्व को पूरा-पूरा अवसर प्रदान करे और साथ ही विलक्षणता एवं प्रयासों को एक सामूहिक दिशा प्रदान करे, वैन भावना को जाग्रत करे और वैयक्तिक एवं सामान्य हितों में समष्टय स्थापित करे । उद्देश्यानुसार प्रबंध एवं स्व-नियंत्रण का है । प्रत्येक प्रबन्धक का हित इस प्रकार के प्रबन्ध में निहित होता है । इस प्रकार के प्रबन्ध में बाहय नियंत्रण का स्थान स्व-नियंत्रण ग्रहण कर लेता है । बाहय नियंत्रण की तुलना में स्व-नियंत्रण अधिक कठोर एवं प्रभावकारी सिद्ध होता है । बाहय नियंत्रण में प्रबन्धक के लिए कोई अभिप्रेरणा नहीं होती जबकि उप्ध्यशयानुसार प्रबन्ध में प्रबंध एवं स्वयं अपने उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं और आन्तरिक अभिप्रेरण से प्रेरित होकर कार्य करते हैं । इस प्रकार के प्रबन्ध में प्रबन्धक किसी के कहने से कार्य नहीं करता, वह स्वयं अपनी इच्छा से एक स्वतंत्र व्यक्ति की भांति कार्य करता है ।

उद्देश्यानुसार प्रबन्धक को प्रबन्ध के एक दर्शन के रूप में देखा जाना चाहिए । यह अपने आप में प्रबन्ध की एक उत्तम संकल्पना है । यह प्रबन्ध की विशिष्ट आवश्यकताओं एवं प्रबन्धकों द्वारा सामना की जाने वाली कठिनाइयों पर आधारित है । मानवीन क्रियाएँ मानवीय व्यवहार एवं मानवीय अभिप्रेरण इसका प्रमुख आधार होता है । इसे प्रबन्ध के सभी स्तरों, सभी प्रकार के व्यवसायों तथा सभी प्रकार के प्रंबंध कार्यो के लिए अपनाया जा सकता है । यह संगठन के उद्देश्यों को संगठन में कार्यरत कार्मिकों के वैयक्ति से उद्देश्यों में बदल देता है जिससे वांछित निष्पादन प्राप्त होने में सुगमता होती है और उद्देश्यों तक पहुंचा जा सकता है । इससे कार्य स्वतंत्रता को भी बढ़ावा मिलता है ।

एम.बी.ओ. की आलोचना : रैंसिस लिकर्ट जैसे ख्यातिप्राप्त प्रबन्ध-शास्त्री ने एम.बी.ओ. की आलोचना की है । उनके अनुसार उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध की विधि प्रबन्धकों पर दबाओ डालने की एक तकनीक है । इससे उत्पादन में तत्कालीन वृद्धि तो हो सकती है लेकिन उत्पादकता बे वृद्धि नहीं होती । उनकी दृष्टि में उत्पादकता में वृद्धि नही होती है । मानवीय सम्बन्धो एवं नेतृत्व प्रणाली की देन है । इसी प्रकार डॉ० एन.के. सेठी, जो सैण्ट जॉना विश्वविद्यालय (अमेरिका)में प्रबन्ध विभाग के अध्यक्ष है भी एम.बी.ओ. के तीव्र आलोचक है । उनकी सम्मति में एम.बी.ओ. का स्थान कर्म द्वारा प्रबंध को ग्रहण करना चाहिए ।

आलोचना करना सहज है, लेकिन जब तक प्रबन्ध क्षेत्र में कोई अन्य क्रान्तिकारी विचारधारा नहीं आती, एम.बी.ओ. के महत्व को कम नहीं किया जा सकता । इसकी लोकप्रियता एवं व्यापक अनुप्रयोग इसके आन्तरिक गुणों एवं व्यावहारिकता का सूचक है ।

3.7 तुलनात्मक प्रबन्ध

गत अध्याय में प्रबन्ध के सिद्धान्तों एवं प्रबन्ध की सार्वभौमिकता की विस्तृत से चर्चा की गई है । प्रबन्ध से सिद्धान्त, सभी स्थानों तथा स्थितियों में, सभी प्रकार के व्यवसायों में, समान रूप से प्रयोग में लाये जा सकते हैं । व्यवसाय की प्रकृति, स्वामित्व तथा परिमाण के फल रूप इन सिद्धान्तों के प्रयोग में कोई अन्तर नहीं पड़ता । ऐसी परिस्थिति में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या एक अधिवासी प्रबंधक जो एक देश में सफलतापूर्वक प्रबन्ध

कर सकता है क्या वह उसी सफलता से अन्य किसी देश में नहीं कर सकता अथवा नहीं ? प्रबन्धशास्त्री विलियम एच. न्यूमैन के शब्दों में, "क्या प्रबन्ध निर्यात योग्य है" ? इस प्रश्न के पीछे भावना यह है कि क्या प्रबन्ध और संस्कृतियों में कोई सम्बन्ध है, यदि सम्बन्ध है तो ऐसा परिस्थिति में संस्कृति प्रबंध को किस प्रकार प्रभावित करती है । सिद्धान्तों की सार्वभौमिकता के अध्ययन से तो ऐसा लगता है कि उक्त प्रश्न निरर्थक है । लेकिन यहाँ हम आपको बताना चाहेंगे कि इस प्रश्न को सरल और स्वाभाविक मानकर अनदेखी नहीं किया जा सकती । प्रश्न महत्वपूर्ण होने के साथ ही साथ जटिल भी है ।

महत्व एवं आवश्यकता अल्प-विकसित अथवा विकासशील देश अब तीव्र गति से अपना आर्थिक विकास करने की राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है । आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को गति देने की दृष्टि से उन्होंने विकसित राष्ट्रों से प्रचुर मात्रा में पूँजी तथा तकनीकी जानकारी के आयात करने की आवश्यकता को अनुभव किया । पूँजी तथा तकनीकी जानकारी का राष्ट्रों के बीच सुगमता से आदान-प्रदान किय । जा सकता है । तकनीकी जानकारी को कोई राष्ट्र दीर्घ समय तक गुप्त भी नहीं रख सकता । इस विषय में हम आपका ध्यान परमाणु बन के निर्माण से सम्बन्धित तकनीकी जानकारी की ओर आकर्षित करना चाहेंगे । बन के निर्माण सम्बन्धी तकनीकी जानकारी अत्यन्त जटिल है तथा उसे गुप्त रखने के भरसक प्रयत्नों के उपरान्त भी, यह तकनीकी ज्ञान विश्व के बहुत से देशों तक पहुँच गया है ।

विकासशील राष्ट्रों का आर्थिक विकास केवल पूँजी तथा तकनीकी ज्ञान की प्राप्ति से ही सुलभ नहीं हो जाता । " प्रबन्धक" के अभाव में आर्थिक विकास हेतु आवश्यक तत्व निष्क्रिय पड़े रहते हैं । अत: आर्थिक विकास के कम में प्रबन्ध का एक क्रान्तिक महत्व है जो उपयुक्त सभी तत्वों को गतिशीलता प्रदान करता है । प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डब्लू-डब्लू रोस्टोव ने आर्थिक विकास में प्रबंध के महत्व पर बल देते हुए लिखा है कि "एक छोटा व्यावसायिक विशिष्ट वर्ग (उद्यमी तथा अधिकारियों का)आर्थिक विकास के सूत्रपात में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकता है ।" प्रबंधशास्त्री सेल्स ने तो प्रबन्ध के महत्व को और भी स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है । उनके अनुसार - "अल्प-विकसित राष्ट्रों की आर्थिक विकास तथा स्थिरता प्राप्ति की विश्वव्यापी दौड़ में, अमेरिकी प्रबंध की जानकारी एक क्रान्तिक महत्व का तत्व है ।"

उक्त संदर्भ में प्रबन्ध का "निर्यात" तथा उसका "संस्कृति के साथ संबंध" जैसे प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाते हैं ।

संस्कृति : ऊपर उठाये गये प्रश्नों के उत्तर की खोज करने से पूर्व, हमें संस्कृति के अर्थ को समझना पड़ेगा । चकवर्ती राजगोपालाचारी के शब्दों में ' 'संस्कृति, रहन-सहन, व्यवहार या जीवन यापन की एक पद्धति है, जिसका व्यक्तियों के समूह द्वारा निर्माण किया जाता है तथा जिसका सम्प्रेषण एक सन्तति से दूसरी सन्तति को होता रहता है । "राजाजी आगे लिखते हैं कि ' 'इतिहास के क्रम में, व्यक्ति, संस्कृति में विभिन्न प्रतिमानों का निर्माण कर लेते हैं । संस्कृति के इन विभिन्न प्रतिमानों में काफी समता होते हुए भी बहुत बडी सीमा तक प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति की अपनी विशिष्टता होती है ।" राजाजी के ये अन्तिम शब्द अत्यधिक महत्व के हैं ।

इस प्रकार सुगमता से अनुमान लगाया जा सकता है कि विभिन्न समाजों में अपनायी गयी प्रबन्ध व्यवस्था में व्यावहारिक जगत में कितनी एकरूपता या समता अथवा विषमता पाई जाएगी । यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त विवेचन में हमने "समाज" शब्द का प्रयोग किया है । यह समाज सांस्कृतिक दृष्टि से गठित माना गया है । किसी भी राष्ट्र में इस प्रकार के अनेकों समाज हो सकते है और इस प्रकार किसी भी राष्ट्र में यह आवश्यक नही है कि प्रबंध की दृष्टि से वहां पूर्ण समता की स्थिति पायी जाए ।

3.8 प्रबन्ध एवं संस्कृति

प्रबन्ध एवं संस्कृति : प्रबन्ध की सार्वभौमिकता तथा संस्कृति का प्रबन्ध पर प्रभाव, दोनो ही महत्वपूर्ण है । पहले विषय के विवेचन का निष्कर्ष यह था कि प्रबन्ध के "सिद्धान्त" सार्वभौमिक हैं तथा वे देश और काल से प्रभावित नहीं होते । दूसरे विषय के विवेचन का निष्कर्ष यह निकलता है कि " प्रबन्ध " सांस्कृतिक विभिन्नताओं से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता । प्रकट रूप में देखने से उक्त दोनों निष्कर्ष विरोधाभासी हैं, लेकिन यदि गहराई से देखा जाए तो ऐसा नहीं है । हमारा प्रयास उक्त निष्कर्षो में पुनर्मेल कर वास्तविकता की खोज करना होगा ।

प्रबन्ध के सिद्धान्त सार्वभौमिक हैं इसमें कोई संदेह नहीं है । ध्यान देने की बात यह है कि हम सिद्धान्तों की प्रकृति की चर्चा कर रहे हैं । प्रत्येक विज्ञान के सिद्धान्त सार्वभौमिक होते है चाहे वह भौतिक विज्ञान हो या जीव विज्ञान, अर्थशास्त्र हो या मनोविज्ञान । भौतिक विज्ञान के सिद्धान्त भारत या जापान के लिए, रूस या अमेरिका के लिए अलग-अलग नहीं हो सकते । यह तो हुआ प्रबन्ध के विज्ञान का पहलू ।

दूसरी और जब हम प्रबन्ध के संस्कृति बद्ध होने की चर्चा करते हैं तो हमारा ध्यान प्रबन्ध के दार्शनिक पक्ष की ओर जाता है । अनेक विद्वानों ने विभिन्न देशों में दीर्घकाल के अनुभव और अनेषण के आधार पर प्रबन्ध के दार्शनिक पक्ष तथा उनके संस्कृतिबद्ध होने की बात कही है । इन विद्वानों में अग्रिण हैं गोंजालेज तथा मैक्मिलन, हरबिंसन तथा मायरस और ओबर्ग । इस संबंध में गोंजालेज तथा मैक्मिलन का कथन है कि प्रबन्ध का वह पक्ष जिसमें सार्वभौमिकता का अभाव है, उसका संबंध अन्तरवैंयक्तिक सम्बन्ध से है जिसके अंतर्गत प्रबन्ध एवं कार्मिकों, प्रबन्ध एवं सम्भारको, प्रबन्ध एवं ग्राहकों समाज, प्रतिस्पर्धी तथा राज्य के प्रबन्ध आते हैं ।"

प्रबन्ध के संस्कृतिबद्ध होने की बात पीटर एफ.ड्रकर को पढ़ने से और अधिक स्पष्ट हो जाती है । ड्रकर के अनुसार " प्रबन्ध विज्ञान न होकर व्यवहार ज्ञान अथवा आचरण है । इस प्रकार यह आयुविज्ञान, विधिशास्त्र और यन्त्रशास्त्र के समान है । यह ज्ञान न होकर निष्पादन है ।" ड्रकर का यह स्पष्ट मत है कि प्रबन्ध संस्कृति-मुक्त नहीं हो सकता । प्रबन्ध का व्यवहार समाज में किया जाता है अत: यह समाज से और समाज इससे प्रभावित होता है । यदि यह समाज की परम्पराओं, मूल्यों और विश्वासों को व्यवहार में उपयोग में लाता है तो अधिक सार्थक सिद्ध हो सकता है । मेरी पार्कर फोलट की मान्यतानुसार प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रम है।

3.9 पर्यावरिक निर्धारक तथा प्रबन्ध कार्य

प्रबन्ध का आचरण समाज के पर्यावरण की भिन्नता के कारण भिन्न - भिन्न पाया जाता है । सर्वप्रथम हम पर्यावरण का निर्माण करने वाले घटकों को समझें । ये घटक ही दीर्घकाल में संस्कृति का निर्माण करते हैं । घटकों को पहचानने के पश्चात् उनके प्रबन्ध-कार्यो पर पड़ने वाले प्रभाव को देखने की आवश्यकता होगी ।

पर्यावरिक निर्धारक निम्नांकित चार शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किए जा सकते हैं :

(1) शैक्षणिक ।

(2) सामाजिक, सांस्कृतिक।

(3) वैधानिक-राजनैतिक, तथा

(4) आर्थिक ।

मैसी ने पर्यावरिक निर्धारक तथा प्रबन्ध-कार्यो का जो सम्बन्ध बताया है उसे अग्रांकित सारिणी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

3.10 सारांश

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पर्यटन संगठन में कार्यरत प्रबन्धक को प्रबन्ध की आधुनिक विचारधाराओं रो भी भली भांति परिचित होना चाहिये । ताकि वह अधिकाधिक लाभ की प्राप्ति करते हुये संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त कर सके । प्रबन्ध का व्यवहारात्मक दृष्टिकोण यह बताता है की माननीय व्यवहार का अध्ययन प्रबन्धक के लिए महत्वपूर्ण है । प्रणालीबद्ध दृष्टिकोण सम्पूर्ण संगठन को एक तंत्र की संज्ञा देता है । संयोगिक दृष्टिकोण विधमान परिस्थितियों व सम्पूर्ण वातावरण पर बल देता है एवं तदनुरूप व्यूह रचना बनाने पर बल देता है । एम.बी.ओ. भी प्रबन्धको को लक्ष्य प्राप्ति हेतु उपयोगी पद्धति सुझाता है तथा इस हेतू प्रबन्धक को एक निश्चित किया व चरणों को बतलाता है । इसकी सफलता इस बात पर निर्भर है कि प्रबन्धक मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को किस प्रकार दूर करता है?

प्रबन्ध व संस्कृति में घनिष्ट सम्बन्ध होता है अत: प्रबन्धक संगठन व समाज की संस्कृति व सांस्कृतिक भिन्नताओं की अनदेखी नहीं कर सकता । इसी प्रकार पर्यावरण के चार प्रमुख घटकों- शैक्षणिक, समाजिक-सांस्कृतिक, वैधानिक-राजनैतिक व आर्थिक का अध्ययन भी प्रबन्धन के लिये अनिवार्य हो जाता है ।

3.11 अपनी प्रगति को जानने के लिये अभ्यास

1. प्रबन्ध की आधुनिक विचारधारा से आपका क्या आशय है ।

....

....

....

....

2. उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की कमियों का वर्णन कीजिए ।

....

....
....
....

3. प्रबन्ध की संस्कृति-बद्धता से आप क्या समझते हैं ।

....
....
....
....

4. तुलनात्मक प्रबन्ध के क्षेत्र में प्रचलित विभिन्न प्रतिरूपों का वर्णन कीजिए एवं उनका पारस्परिक अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

....
....
....
....

खण्ड - 2 प्रबन्ध के कार्य

इकाई- 4 संगठनात्मक नियोजन

इकाई- 5 संगठन

इकाई- 6 संगठन संरचना

इकाई- 7 संगठन विकास

इकाई- 8 स्टाफिंग कार्य

इकाई- 9 केरियर नियोजन एवं प्रबन्धकयि विकास

इकाई 4 - संगठनात्मक नियोजन

ढांचा

4.1 परिचय
4.2 नियोजन का अर्थ एवं परिभाषा
4.3 नियोजन की विशेषताए
4.4 नियोजन की प्रकृति
4.5 महत्व एवं अच्छी योजना की विशेषताऐ
4.6 नियोजन के सिद्धान्त
4.7 नियोजन प्रक्रिया
4.8 नियोजन के तत्व
4.9 नियोजन के लाभ व सीमायें
4.10 अपनी प्रगति को जानने के लिये अभ्यास

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप सक्षम होगे :-

(अ) नियोजन की अवधारणा एवं प्रकृति को समझने में ।

(ब) नियोजन के महत्व एवं सिद्धान्त की जानकारी ।

(स) नियोजन के तत्व एवं प्रक्रिया क्या है?

(द) नियोजन के लाभ एवं सीमाएँ ।

(य) एक प्रबन्ध के रूप में उक्त सभी को पर्यटन में लागू मे ।

4.1 परिचय

नियोजन प्रबन्ध का एक प्रमुख कार्य है । इसकी उपयोगिता एवं इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि इसका स्थान प्रबन्ध के अन्य सभी कार्यो में सर्वोपरि हैं । यह प्रबन्ध का सर्वप्रथम और आधारभूत कार्य माना गया है । इसकी आवश्यकता न केवल व्यवसाय के क्षेत्र में होती है अपितु मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होती है । एक व्यक्ति अपने व्यावहारिक जीवन में क्रियाओं के सम्बंध में योजना बनाता है, एक गृहणी आगन्तुक मेहमानों के स्वागत एवं सत्कार के लिए योजना बनाती है, एक कर्मचारी माह के प्रारम्भ में विभिन्न खर्चो की योजना है, एक अनुसन्धानकर्ता अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व आवश्यक योजना बनाता है, एक समाज सुधारक समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए योजना बनाता है, एक प्रवर्तक कम्पनी के समामेलन की योजना बनाता है, एक विद्‌यार्थी नवीन सत्र के प्रारम्भ में योजना बनाता है तथा योजना देश के चहुंमुखी विकास के लिए पंचवर्षीय योजना बनाता हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रत्येक फर्म, संस्था, समाज-सुधारक, विशेषज्ञ, अनुगधानकर्ता, विद्‌यार्थी एवं सरकार सभी को प्रत्येक चरण नियोजन का सहारा लेना होता है । लेकिन नियोजन करना सरल

कार्य नहीं है । इसके लिए पर्याप्त अध्ययन, चिन्तन, मनन और परिश्रम की आवश्यकता होती है ।

4.2 नियोजन का अर्थ एंव परिभाषा

साधारण शब्दों में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भविष्य में क्या है, कैसे करना है, कब करना है और किसे करना है का पूर्व निर्धारण ही नियोजन है । इस दृष्टि से नियोजन एक बौद्धिक किया है जिसका उत्तरदायित्व व्यवसाय में एक पृथक विभाग का होना चहिए । वैज्ञानिक प्रबन्ध के जन्मदाता एफ. डज्यू. टेलर ने भी प्रत्येक कारखाने में अलग से योजना विभाग की स्थापना पर बल दिया था । शील्ड के मतानुसार "योजना विभाग प्रबन्ध का हृदय है जिसका एक मात्र कार्य उत्पादन के विभिन्न पहलुओं में कार्यरत कर्मचारियों की आवश्यकता को पूरा करना है ।"

प्रबन्ध जगत में नियोजन का अर्थ निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपलब्ध वैकल्पिक नीतियों, विधियों, एवं कार्यक्रमों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन है । एक व्यवसायी एवं एक प्रबन्धक को कदम-कदम पर निर्णय लेना होता है और समय-समय पर उपलब्ध वैकल्पिक साधनों, नीतियों, विधियो, एवं कार्यक्रमों में से सर्वोत्तम का चयन करना होता है । **प्रसिद्व प्रबन्ध विद्वान पीटर एफ. ड्रकर** का मत है कि "एक प्रबन्धक द्वारा की गई प्रत्येक किया निर्णय पर आधारित होती है ।"

नियोजन की परिभाषाएं

1- **हेयन्स एवं मेसी-** " नियोजन प्रबन्धक का एक वह कार्य है जिसके अन्तर्गत वह क्या करेगा के सम्बन्ध में पूर्व निर्णय लेता है । यह एक विशेष प्रकार की निर्णयन-प्रक्रिया है जिसका सारतत्व इसकी भविष्यता है । यह एक बौद्धिक किया है जिसके लिए सृजनात्मक चिन्तन एवं कल्पना की आवश्यकता होती है ।

2- **कून्ट्ज एवं ओ डोनेल** के अनुसार " क्या करना है कब करना है, और किसे करना है- का पूर्व निर्धारण ही नियोजन है । "

3- **जॉर्ज आर.टेरी** के अनुसार " नियोजन भविष्य में झांकने की एक विधि या तकनीक है यह भावी आवश्यकताओं का एक रचनात्मक पुनर्निरक्षिण है ताकि वर्तमान क्रियाओं को निर्धारित लक्ष्यों के संदर्भ में समायोजित किया जा सके ।"

विभिन्न विद्वानों दारा प्रस्तुत की गई नियोजन की परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात हम यह कह सकते हैं कि नियोजन एक बौद्धिक किया है जिसके माध्यम से प्रबन्धक अपने साधनों को निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार समायोजित करता है और लक्ष्य पूर्ति के लिए क्या करना है, कैसे करना है और किसे करना है का पूर्व निर्धारण करता है।"

4.3 नियोजन की विशेषताएं

विभिन्न विद्वानों दारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर नियोजन की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है:

(1) **पूर्वानुमान**

पूर्वानुमान नियोजन का सार है । प्रत्येक नियोजन चाहे वह अल्पकालीन हो या दीर्घकलिन पूर्वानुमान पर आधारित होता है लेकिन पाठकों कों यह ध्यान रखना चाहिए कि पूर्वानुमान स्वयं में नियोजन नही होता, यह तो नियोजन का आधार होते है । पूर्वानुमान से तात्पर्य भविष्य में झांकना होता है जबकि नियोजन से तात्पर्य भविष्य को मध्यनजर रखते हुए वर्तमान में भविष्य के लिए निर्णय लेना होता है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पूर्वानुमान एवं नियोजन दोनों में पर्याप्त अन्तर है । हेनरी फेयोल ने पुर्वानुमान एंव नियोजन दोनों के लिए PREVOYANCE शब्द का प्रयोग किया है । उसके अनुसार इस शब्द के अन्तर्गत ' भविष्य का मूल्याकंन' एवं उसके लिए प्रावधान दोनों सम्मिलित होते हैं । उन्होंने नियोजकों को विभिन्न पूर्वानुमानों के संश्लेषण के रूप में निर्देशित किया है चाहे वे अल्पकालीन हों या दीर्घकालीन, विशिष्ट हो या सामान्य । इसके लिए उन्होंने एक वर्षीय और दसवर्षीय पूर्वानुमानों की अनुशंसा की और स्पष्ट किया कि दस वर्षीय अनुमानों में प्रत्येक पांच वर्ष बाद या यदाकदा और आवश्यक हो तो प्रतिवर्ष आवश्यक संशोधन कर लेना चाहिए । फेयोल ने पूर्वानुमानों में आवश्यक संशोधन करने का सुझाव इसीलिए प्रस्तुत किया कि यह कार्य विश्वसनीय पूर्वानुमानों के अभाव में भली प्रकार पूरा नहीं किया जा सकता । अत: नियोजन की प्रमुख विशेषता में इसे स्वीकार किया गया कि नियोजन पूर्वानुमानों पर आधारित होता है ।

(2) निश्चित लक्ष्य

नियोजन की दूसरी विशेषता यह है कि इसके निश्चित लक्ष्य या उद्देश्य होते हैं । यह विशेषता इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक कार्य के कुछ न कुछ उद्देश्य आवश्यक होते हैं। प्रत्येक उपक्रम में नियोजन का उपक्रम, विभाग एवं कार्यरत व्यक्तियों के लक्ष्यों से गहरा सम्बंध होता है । प्रत्येक नियोजक इन्हीं लक्ष्यों को मध्यनजर रखते हुए अपनी योजनाएं बनाता है । अत: सत्य ही है कि जिस प्रकार प्रस्ताव और स्वीकृति के बिना ठहराव नहीं किया जा सकता, ठीक उसी निश्चित लक्ष्यों के बिना नियोजन नहीं किया जा सकता । बिली ई. गोज के अनुसार, "'योजनाए यों पर ध्यान केन्द्रित कर सकती हैं । ये उन क्रियाओं के बारे में भविष्यवाणी कर सकती है जो उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक होगी । प्रबन्धकीय नियोजन इच्छित लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित हुए एक दृढ़ एवं समन्वित प्रकियाओं के ढांचे की प्राप्ति करना चाहता है ।"

(3) सर्वव्यापकता

नियोजन की अन्य विशेषता इसकी सर्वव्यापकता है । इसकी आवश्यकता केवल उपक्रम विशेष में होता है अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होती है । प्रत्येक व्यक्ति अपने साधनों को निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार समायोजित करता है और भविष्य के लिए वर्तमान में निर्णय लेता है । इसी तरह एक संगठन के प्रत्येक स्तर पर भी नियोजन की आवश्कयता होती है । उच्च अधिकारी से निम्न अधिकारी तक के सभी व्यक्तियो को लक्ष्य पूर्ति हेतु यह किया (नियोजन)करनी पड़ती है । : नियोजन केवल उच्च अधिकारियों की बपौती नहीं है । यह तो संगठन के प्रत्येक स्तर के अधिकारी का कर्तव्य है ।

(4) लोचता एवं निरन्तरता

नियोजन एक निरन्तर एवं लोचपूर्ण प्रक्रिया है । प्रत्येक नियोजक को हुई परिस्थितियों के अनुरूप ही अपनी योजनाएं तैयार करनी पड़ती है वह नियोजक ही सफल होता है जो परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप न्यूनतम लागत पर कुशल योजनाएं बना लेता है । एवं ओ'डेनेल के अनुसार "प्रत्येक नियोजक को अनुमानों और घटनाओं की सामयिक जांच चाहिए एवं एक इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति के अनुरूप अपनी योजनाओं का पुननिर्माण करना चाहिए ।"

(5) एकता

फेयोल का कहना है कि एक समय में एक कार्य के लिये केवल ही योजना लागू की जा सकती है । एक से अधिक या दो योजनाएं लागू करने से न केवल परेशानी, एवं अव्यवस्था उत्पन्न होगी अपितु योजना का महत्व भी समाप्त हो जायेगा । लेकिन उनका यह भी कहना है कि आवश्यकतानुसार एक ही योजना को कई उप-योजनाओं में विभक्त किया सकता है । अत: यह स्पष्ट है कि विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रबन्धकों द्वारा किये गये नियोजन में उदेश्य के आधार पर एकता होनी चाहिए । नियोजन में एकता होने से इच्छित लक्ष्य की पूर्ति सरलता से की जा सकती है । इसीलिए उपक्रमों में एक वृहत योजना तैयार की जाती है और बाद में उसी के अनुरूप अनेक उपयोजनाएं तैयार कर ली जाती हैं ।

(6) चुनाव

नियोजन की यह विशेषता इंगित करती है कि विभिन्न वैकल्पिक क्रियाओं में से सर्वश्रेष्ठ का चुनाव नियोजन सम्मिलित करती है । कुछ विद्वानों ने नियोजन को एक विशेष प्रकार के निर्णयन के रूप में सम्बोधित किया है । लेकिन यहां स्पष्ट करना अनुपयुक्त न होगा कि नियोजन एवं निर्णयन में अन्तर होता है अत: हमें इन दोनों को पृथक समझना चाहिए । प्रत्येक प्रबन्धक के सामने विभिन्न वैकल्पिक उद्देश्य, नीतियाँ, कार्यक्रम एवं कार्य पद्धतियाँ होती हैं और उसे इन सभी में से संस्था के पूर्व निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति हेतु सर्वश्रेष्ठ का चुनाव करना होता है । इस प्रकार नियोजन में चुनाव सम्मिलित होता है ।

(7) प्राथमिक कार्य

नियोजन प्रबन्ध का एक प्राथमिक कार्य है जिसे प्रबन्ध सम्बन्धी अन्य कार्यों के पूर्व ही किया जाता है । इस कार्य के सम्पन्न हो जाने के पश्चात ही प्रबन्ध के अन्य कायों की शुरूआत होती है । प्रबन्ध के अन्य कार्यों यथा संगठन, समन्वय, निर्देशन, उत्प्रेरण, नियन्त्रण, कर्मचार्रियों की नियुक्ति आदि की उपयोगिता नियोजन पर ही आधारित होती है । अन्य शब्दों में ये सभी कार्य पूर्व निर्धारित नियोजन की क्रियान्विति कि लिए ही किये जाते है ।

(8) अन्य

(i) नियोजन एक परस्पर निर्भर एवं दृढ़ प्रक्रिया है । एक उपक्रम के विभिन्न विभागों के भिन्न-भिन्न कार्यक्रम ही एकीकृत नियोजन का ।नर्माण करते हैं ।

(ii) नियोजन परिशुद्ध होना चाहिए, अर्थात प्रत्येक नियोजन इच्छित लक्ष्य पूर्ति के लिए अपने अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र आदि के सन्दर्भ में उपयुक्त होना चाहिए ।

(iii) नियोजन एक मार्गदर्शक का कार्य करता है ।

(iv) नियोजन में संगठनात्मक तत्व विद्‌यमान होता है ।

(v) नियोजन में समय तत्व अधिक महत्व रखता है ।

एल. एफ. उर्विक ने एक अच्छी योजना की निम्न विशेषताए बतलाई है:-

(i) यह सरल होनी चाहिए ।

(ii) यह स्पष्ट परिभाषित उद्देश्यों पर आधारित होनी चाहिए ।

(iii) यह लोचपूर्ण होनी चाहिए ।

(iv) यह सन्तुलित होनी चाहिए ।

(v) यह उपलब्ध साधनों का सर्वोत्तम उपयोग करने वाली होनी चाहिए ।

(vi) यह क्रियाओं का एक न्यायोचित विश्लेषण एवं वर्गीकरण प्रस्तुत करने वाली होनी चाहिए ।

4.4 नियोजन की प्रकृति

क्रून्ट्ज एवं ओ'डोनेल के अनुसार नियोजन की प्रकृति को निम्नलिखित चार आधारभूत सिद्धातों द्वारा समझा जा सकता है:

(1) लक्ष्य पूर्ति में योगदान

(2) नियोजन की प्राथमिकता

(3) नियोजन की सर्वव्यापकता

(4) योजनाओं की कार्यकुशलता

उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर नियोजन की प्रकृति का निम्नलिखित शीर्षकों में अध्ययन किया जा सकता है:

(1) एक सतत् प्रक्रिया

नियोजन निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया है । यह ऐसी प्रक्रिया है जिसकी आवश्यकता व्यवसाय में प्रारम्भ से अन्त तक बनी रहती है । एक व्यवसायी को न केवल व्यवसाय की स्थापना के समय ही नियोजन की आवश्यकता होती है अपितु व्यवसाय के निर्बाध संचालन एवं विकास के लिए भी नियोजन का सहारा लेना पड़ता है । उसे हर कदम पर निर्णय लेने होते है जो नियोजन का ही अंग होता है। परिस्थितियों, साधनों एवं समय में परिवर्तन स्वाभाविक है अत: उनके अनुसार ही उद्देश्यों, नीतियों, कार्यविधियों और कार्यक्रमों में परिवर्तन करने होते है । इस प्रकार एक योजना के दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी आदि का कम चलता रहता है ।

(2) लक्ष्य पूर्ति मे योगदान

नियोजन को लक्ष्य पूर्ति का साधन माना गया है । प्रत्येक योजना एवं सभी गौण योजनाओं का मुख्य उद्देश्य उपक्रम में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान देना होता है । कून्ट्ज एवं ओ' डोनेल के अनुसार "'इस सिद्धान्त का प्रतिपादन संगठित उपक्रमों की प्रकृति से हुआ है जो इस तथ्य पर बल देता है कि समूह-लक्ष्यों की प्राप्ति आपसी सहयोग द्वारा ही सम्भव है ।" नियोजन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए न केवल नीतियों, पद्धतियों एवं कार्यक्रमों की ही स्थापना है अपितु इनके क्रियान्वयन का भी भरसक प्रयत्न करता है ।

(3) प्रबन्धकीय कार्यो में सर्वोपरि,

नियोजन प्रबन्ध के अन्य कार्यों यथा संगठन, समन्वय, निर्देशन, एवं नियन्त्रण में सर्वोपरि है । इसलिए इसे प्रबन्ध का प्रथम एवं आधारभूत कार्य माना जाता है । अभाव में प्रबन्ध के अन्य सभी कार्यों की कोई उपयोगिता नहीं होती अर्थात वे न तो प्रारम्भ ही सकते हैं और न पूर्ण किये जा सकते है । लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रबन्ध के अन्य सभी कार्य महत्वहीन है । ये सभी कार्य भीं उतने ही महत्वपूर्ण है जितना कि नियोजन है । फिर भी नियोजन इस सभी कार्यों का केन्द्र बिन्दु है इसीलिए इसे प्रबन्ध का प्रथम एवं सर्वोपरि कार्य माना जाता है ।

(4) एक बौद्धिक क्रिया

नियोजन न केवल एक सतत् प्रक्रिया ही है अपितु एक बौद्धिक प्रक्रिया ही है । हेयन्स एवं मेसी के अनुसार "नियोजन एक बौद्धिक किया है जिसके लिए सृजनात्मक चिन्तन एवं कल्पना आवश्यक है । नियोजन निर्धारित लक्ष्य पूर्ति हेतु उपलब्ध विभिन्न वैकल्पिक नीतियों, कार्य-पद्धयतियों, एवं कार्यक्रमों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करता है । ऐसे चयन के लिए उसे उपलब्ध विभिन्न साधनों का विश्लेषण करना होता है । जिसके लिए पर्याप्त ज्ञान, अनुभव, चिन्तन एवं दूरदर्शिता ही आवश्यकता होती है । अत: नियोजन को एक बौद्धिक प्रक्रिया माना गया है ।

(5) नियोजन की सर्वव्यापकता

नियोजन प्रबन्धकों का एक ऐसा कार्य है जिसकी आवश्यकता हर जगह जाती है चाहे वह सामाजिक संस्था हो या धार्मिक, व्यावसायिक हो या राजनैतिक । एक संगठन में प्रत्येक स्तर यह कार्य सम्पन्न किया जाता है चाहे संगठन छोटा हो या बड़ा । उच्च अधिकारी से लेकर निम्न तक के सभी व्यक्तियों को लक्ष्य पूर्ति हेतु नियोजन करना होता है । अत: यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि नियोजन केवल शीर्ष प्रबन्धक का ही कार्य नहीं है अपितु प्रत्येक श्रेणी के प्रत्येक, का कार्य है ।

(6) योजनाओं की कार्यकुशलता

नियोजन प्रबन्धकों की कार्यकुशलता का आधार माना गया है । यह प्रेत्येक स्तर के प्रबन्ध द्वारा निर्मित योजनाओं का मूल्यांकन करता है और उनकी प्रभावशीलता की जानकारी है। वही योजना अधिक कुशल एवं श्रेष्ठ मानी जाती है जो न्यूनतम लागत पर अधिकतम परिणाम उपलब्ध कराती हो । इस प्रकार नियोजन प्रबन्धकीय कार्यकुशलता के मापन का एक अच्छा आधार है । पाठकों को यहां पर ध्यान रखना चाहिए कि कार्यकुशलता का मापन आदान-प्रदान अनुपात द्वारा होता है जिसमें लागत के अतिरिक्त व्यक्तिगत एवं सामूहिक सन्तोष भी सम्मिलित होता है ।

(7) नियोजन निर्णयन नहीं है

निर्णयन नियोजन का एक अंग होता है अत: नियोजन का क्षेत्र निर्णयन की तुलना में काफी व्यापक है ।

4.5 महत्व एवं अच्छी योजना की विशेषताएं

नियोजन का महत्व

नियोजन प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है जिसकी आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को होती है । एक व्यवसायी को आरम्भ से अन्त तक इसका सहारा लेना पडता है । जिस प्रकार उद्देश्यहीन व्यक्ति जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता ठीक उसी प्रकार बिना नियोजन के एक व्यवसायी भी व्यावसायिक जगत में टिक नहीं सकता । अत: आलोचकों का यह कथन कि नियोजन आवश्यक नहीं है, इसमें श्रम, समय एवं धन का दुरूपयोग होता है, महत्वहीन है । नियोजन प्रबन्ध के अन्य कार्यों को दिशा प्रदान करता है और उन्हें प्रभावी बनाता है । नियोजन के अभाव में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के बारे में सोचना केवल कल्पना मात्र ही होगा । इसलिए यह कहा जा सकता है कि निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु नीतियों, कार्यविधियों एवं कार्यक्रमों में उचित समन्वय स्थापित करने में नियोजन की आवश्यकता एवं महत्व का अद्‌वितीय स्थान है । जॉर्ज आर. टेरी के अनुसार, "नियोजन प्रबन्ध के अन्य कार्यों जैसे संगठन करना, गति देना और नियन्त्रण करना का आधार है । नियोजन द्‌वारा क्रियाओं का निर्धारण किये बिना कोई ऐसी क्रिया नही होगी जिसका संगठन किया जाये, जिसे गति प्रदान की जाये और जिसका नियन्त्रण किया जाये । यह विचाराधारा प्रबन्ध-प्रकिया में नियोजन के महत्त्व को स्पष्ट करती हैं ।"

(1) प्रबन्धकीय कार्यो का आधार

नियोजन प्रबन्ध के अन्य कई कार्यों का आधार है । यह प्रबन्ध का एक ऐसा कार्य है जो संगठन, समन्वय, उत्प्रेरण, निर्देशन, नियन्त्रण और कर्मचारियों की भर्ती को दिशा प्रदान करता है उन्हें प्रभावपूर्ण बनाता है, उनकी उपयोगिता एवं कार्यकुशलता में वृद्धि करता है और उनके निष्पादन में सहायता प्रदान करता है । इसके अतिरिक्त यह निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न वैकल्पिक नीतियों, कार्यविधियों एवं कार्यक्रमों में से सर्वश्रेष्ठ का चुनाव करता है और विभिन्न क्रियाओं में तालमेल स्थापित करता है ।

(2) अनिश्चितता एवं परिवर्तनों का सामना करना

भविष्य अनिश्चित एवं अज्ञात है अत : अनिश्चित और परिवर्तनशील परिस्थितियों का सामना करने के लिए नियोजन का महत्व है । यदि भविष्य निश्चित होता और परिस्थितियों में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की सम्भावना नहीं होती तो नियोजन का कोई विशेष महत्व नहीं रहता क्योकि एक बार नीतियों, कार्यविधियों और कार्यक्रमों का निर्धारण करने के बाद फिर भविष्य में उन्हीं का अनुसरण किया जा सकता था लेकिन वास्तव में ऐसा करना सम्भव नहीं है। भविष्य तो सदैव ही अनिश्चित एवं परिवर्तनशील रहता है क्योंकि परिस्थितियों को सामना करने के लिए एक व्यप्तसायी को नियोजन रूपी शस्त्र का सहारा लेना ही पड़ता है।

(3) उद्देश्य की ओर ध्यान केन्द्रित करना

निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर उच्च प्रबन्धकों का ध्यान केन्द्रित करने में भी नियोजन का विशेष महत्व है । हम जानते हैं कि प्रत्येक व्यवसायिक उपक्रम में नियोजन लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर निर्देशित करता है । **कून्ट्ज एवं ओ' डोनेल** के अनुसार "सुविचारित सभी योजनाएं अन्त: विभागीय क्रियाओं में एकरूपता लाती है और पूर्णतया विभागीय योजनाओं कें विकास में स्वतन्त्रता के क्षेत्र को प्रतिबंधित करती हैं ।" प्रत्येक विभागीय प्रबन्धक अपनी

नीतियों, कार्यविधियों और कार्यक्रमों की अन्य विभागों से समन्वित करता है तथा प्रतिद्वन्दी न होकर पूरक एवं सहयोगी का प्रयत्न करता है । इस प्रकार नियोजन लक्ष्य पूर्ति की ओर उच्च प्रबन्धकों का ध्यान केन्द्रित करने में सहायक होता है ।

(4) आर्थिक मितव्ययिता प्राप्त करना

नियोजन के माध्यम से एक व्यवसायी सरलतापूर्वक आर्थिक मितव्ययिरा प्राप्त कर सकता है । सुविचारित नियोजन से संचालन एवं लागत व्यय में कमी आ जाती है । नियोजन के द्वारा उपलब्ध वैकल्पिक कार्यक्रमों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन कर लिया जाता है और बाद में उसी का अनुसरण किया जाता है । इसके साथ ही प्रभावी नियोजन के माध्यम से अनुत्पादक एवं असंबन्धित कार्य विधियों को समाप्त किया जा सकता है और उनमें तारतम्य एवं समन्वय स्थापित किया जा सकता है फलत: लागत में कमी आती है । इसके अतिरिक्त नियोजन द्वारा उपलब्ध साधनों का सदुपयोग करने से भी लागत में कमी आ जाती है ।

(5) प्रबन्धकीय नियन्त्रण की आधारशिला

नियोजन प्रबन्धकीय नियन्त्रण की आधारशिला है । यह एक ऐसा शस्त्र है जिसके द्वारा प्रबन्धक अपने अधीनस्थों की क्रियाओं पर सुगमता से नियन्त्रण स्थापित कर सकता है और निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकता है । इसके अतिरिक्त लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए आवश्यक बजट ।बनाये जाते हैं और ये बजट पूर्वानुमानों पर आधारित होते है जो नियोजन का आधार व अंग होते है । बजट वित्तीय नियन्त्रण का साधन होते हैं, जो विचलनों का पता लगाते है और सुधारात्मक उपाय भी प्रस्तुत करते हैं ।

(6) उतावले निर्णय पर रोक

उतावले निर्णयो पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए नियोजन अति आवश्यक है । यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो अपने में चुनाव को शामिल करती है । उपलब्ध विभिन्न वैकल्पिक कार्यविधियो का विश्लेषण करके सर्वश्रेष्ठ का चयन किया जाता है । जिसमें पर्याप्त समय लगता है । इस प्रक्रिया को अपनाने से उतावले निर्णय पर रोक लगती है फलत: होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है ।

(7) अन्य

(i) नियोजन संगठन को प्रभावी बनाने का एक साधन है । इसके से कार्य में होने वाले अनावश्यक विलम्ब को रोका जा सकता है और अव्यवस्थित किया को व्यवस्थित किया जाता है । फलत: संगठन शक्तिशाली हो जाता है ।

(ii) नियोजन अधिकारों के प्रत्यायोजन की किया को सरल बना देता है । निर्धारित लक्ष्यों, नीतियों, कार्यविधियों एवं कार्यक्रमों के अनुरूप हीं उच्च अधिकारी अधीनस्थों को अधिकारों का प्रत्यायोजन कर सकते हैं ।

(iii) नियोजन राष्ट्रीय समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है । हमारे देश की पंचवर्षीय योजनायें इसकी आवश्यकता एवं महत्व का स्पष्ट दिग्दर्शन करती है । आज हम जो प्रगति कर पाये हैं वह नियोजन का ही परिणाम है ।

(iv) नये एवं सृजनशील विचारों के प्रोत्साहन में सुविचारित नियोजन की आवश्यकता एवं महत्व को भुलाया नहीं जा सकता ।

एक अच्छी योजना की विशेषताएं :-

समान्य उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रत्येक योजना में कुछ आधारभूत विशेषताओं का होना आवश्यक है । **उर्विक** के अनुसार एक अच्छी योजना में निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिए

(1) यह स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्यों पर आधारित हो ।

(2) यह सरल हो ।

(3) यह प्रमापों या स्तरों की स्थापना करती हो अर्थात यह क्रियाओं के वर्गीकरण एवं विश्लेषण के लिए उचित आधार प्रस्तुत करती हो ।

(4) यह लोचशील हो ।

(5) यह संतुलित हो ।

(6) यह नवीन अधिकारों एवं प्रसाधनों की उत्पत्ति के पूर्व उपलब्ध प्रसाधनों के अधिकतम सदुपयोग में सहायक हो ।

आर.सी.डेविस के अनुसार सामान्य उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक अच्छी योजना में निम्नलिखित सामान्य विशेषतायें होनी चाहिये

(1) यह उद्देश्यपूर्ण होनी चाहिए ।

(2) यह तार्किक दृष्टि से सुदृढ़ होनी चाहिए।

(3) यह भविष्य को ध्यान में रखने वाली होनी चाहिए ।

(4) यह लोचशील होनी चाहिए ।

(5) यह स्थायित्वता स्थापित करने वाली होनी चाहिए ।

(6) यह विस्तृत होनी चाहिए ।

(7) यह स्पष्ट होनी चाहिए ।

(8) यह सरल होनी चाहिए एवं

(9) इसे मित्व्ययी होना चाहिए ।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि एक अच्छी योजना में निम्न विशेषतायें होनी चाहिए -

(1) स्पष्ट निर्धारित उद्देश्य

प्रत्येक योजना के विवरण जो उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं, पूर्णतया निश्चित, स्पष्ट संक्षिप्त एवं शुद्ध होने चाहिए । इस प्रकार ही अच्छी मानी जाती है जिसके उद्देश्य स्पष्ट रूप में निर्धारित होते हैं। योजना के उद्देश्यों का निर्धारण पक्षपात या भावनात्मक परिणामों के आधार पर न किया जाकर ठोस आधार एवं तथ्यों पर किया जाना चाहिए ।

(2) सरल

एक अच्छी योजना की अन्य विशेषता यह है कि यह सरल होनी चाहिए ताकि संस्था का प्रत्येक व्यक्ति इसे आसानी से समझ सके । यह योजना सरल उस समय कहलाती है जब यह उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कम से कम दबावों, प्रभावों एवं तत्वों को प्रदान करती हो और इनमें में कम से कम सम्बन्धों की स्थापना करती हो । अनावश्यक रूप से जटिल योजना अनेक

समस्याओं जन्म देती है । संगठन के निम्न स्तर पर कार्य करने वाले कर्मचारियों में अनुभव, योग्यता,, समझ की कमी हो सकती है । अत: योजना अत्यन्त सरल हानी चाहिए ।

(3) स्पष्ट

एक योजना का विवरण जहां तक सम्भव हो अस्पष्टताओं से मुक्त होना । अन्य शब्दों में योजना पूर्णतया स्पष्ट होनी चाहिए । इस विशेषण के अभाव में किसी भी को योजना के क्रियान्वयन के परिणामों के प्रति उत्तरदायी ठहराना कठिन हो जाता है । योजना न होने पर क्रियान्वयन के लिये शीघ्र और निश्चित कदम उठाना भी मुश्किल हो जाता है । के अभाव में बार-बार मौखिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है जो अनेक समस्याओं को देती है । अत: एक योजना अस्पष्टता से पूर्णतया मुक्त होनी चाहिए ।

(4) विस्तृत

योजना विस्तृत होनी चाहिए । प्रत्येक योजना में उन सभी मानवीय एवं क्रियाओं का समावेश होना चाहिए जो उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक हो । यद्यपि योजना की विशेषता उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु की जाने वाली क्रियाओं की प्रकृति और शर्तों को विस्तृत रूप से नहीं करती, फिर भी इस तथ्य पर बल देती है, कि एक योजना में अनेक मानवीय और क्रियाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए ।

(5) भविष्यता

योजना भावी क्रियाओं का अनुमान है । अत: प्रत्येक योजना का निर्माण परिस्थितियों का ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए । एक योजना किसी उत्पन्न समस्या या भविष्य में होने वाली समस्या के समाधान हेतु सर्वश्रेष्ठ कार्य पथ का दिग्दर्शन करती है इसलिए प्रत्येक में भविष्यता का गुण होना चाहिए, अन्यथा क्रियाओं के आधार के रूप में इसका अल्प महत्व रह जाता है । व्यावसायिक क्रियाओं की प्रभावी एवं मितव्ययी योजना उन व्यक्तियों की योग्यताओं पर निर्भर करती है जो योजना के सम्बंध में पूर्वानुमान लगाने हैं आँकडों एवं तथ्यों को एकत्रित करते है, और व्यावसायिक संगठन को प्रभावित करने वाले भावी घटकों की प्रकृति व आवश्यकताओं की जानकारी करते हैं ।

(6) लोच

प्रत्येक योजना में लोच का गुण विद्यमान होना चाहिए ताकि उसमें बिना किसी बाधा के आवश्यक परिवर्तन किये जा सके । एक योजना तभी लोचशील मानी जाती है जब इसे किसी अत्यधिक हानि या प्रभाव के परिवर्तनशील परिस्थितियों में शीघ्रता व आसानी से किया जा सके। अत: योजना लोचशील व विस्तृत होनी चाहिए जो आधारभूत परिवर्तनों को आसानी समायोजित कर सके । एक योजना में भविष्य में होने वाले परिवर्तनों को लागू करने के लिए कार्यपथों का प्रावधान भी होना चाहिए ।

(7) मितव्ययी

एक व्यावसायिक योजना आवश्यक रूप से मितव्ययी होनी चाहिए । प्रत्येक संस्था के साधन सीमित होते है अत: साधनों को मद्देनजर रखते हुए यह खर्चीली नहीं होनी चाहिए । साधनों की सीमितता के कारण किसी तरह उद्देश्यों की प्राप्ति हो जाए इस पर ही सर्वाधिक ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए अपितु उद्देश्यों की प्राप्ति पर होने वाले व्ययों को भी ध्यान में

रखा जाना चाहिए । इस प्रकार वह योजना ही अधिक अच्छी मानी जाती है जो मितव्ययी ढंग से संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव बनाती है ।

(8) स्थायित्वता

एक अच्छी योजना में स्थायित्वता का गुण होना चाहिए । एक योजना उस समय स्थायी मानी जाती है जब कम्पनी की दिर्धकालीन प्रवृतियों में परिवर्तन होने पर भी उसमें कोई आधारभूत संशोधन न करने पड़े । प्रत्येक योजना जनसंख्या में वृद्धि, विशिष्ट क्षेत्र में तकनीकी विकास एवं व्यवसाय को प्रभावित करने वाले अन्य दीर्घकालीन परिवर्तनों से प्रभावित होती है । अत: कोई भी व्यावसायिक योजना ऐसी नहीं हो सकती जो पूर्णतया अपरिवर्तनशलि या स्थायित्वता रखती हो, फिर भी योजना में स्थायित्वता का गुण होना आवश्यक है । एक व्यावसायिक योजना को प्रबन्ध का औजार माना जाता है । इसलिए जब किसी व्यावसायिक योजना में दिन-प्रतिदिन परिवर्तन किये जाते हैं तो निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाती है ।

(9) एक अच्छी योजना सन्तुलित होनी चाहिए । उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु साधनों के प्रयोग में सन्तुलित होना आवश्यक है।

(10) एक अच्छी योजना के निर्माण के समय अधिकारियों के द्वारा अधीनस्थों के साथ परामर्श करना चाहिए । ऐसा करने से योजना के क्रियान्वयन में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती और न्यूनतम प्रयासों से अधिकतम परिणामों की प्राप्ति हो जाती है । योजना के निर्माण में अधीनस्थों की भागिता आवश्यक है ।

(11) अच्छी योजना स्पष्ट, सरल एवं विश्वस्त तो होनी ही चाहिए लेकिन उसमें व्यावहारिकता का गुण भी विद्यमान होना चाहिए । ऐसी कोई भी व्यावसायिक योजना अच्छी नहीं कही जा सकती जिसका क्रियान्वयन करना सम्भव नहीं हो ।

(12) एक अच्छी योजना **तार्किक दृष्टि से सुदृढ़** होनी चाहिए ।

4.6 नियोजन के सिद्धान्त

कून्ट्ज ओ'डोनेल ने नियोजन के अनेक सिद्धान्त बतलाये है । उन्होंने इस सिद्धान्तों को उनकी उपयोगिता एवं उपयोग के देष्टिकोण से निम्नलिखित तीन समूहों में विभक्त किया है.

(1) नियोजन के उद्देश्य एवं प्रकृति के अनुसार

(अ) उद्देश्यों के योगदान का सिद्धान्त ।

(ब) नियोजन की कार्यकुशलता का सिद्धान्त ।

(स) नियोजन की प्राथमिकता का सिद्धान्त ।

(2) नियोजन की संरचना के अनुसार

(अ) नियोजन की मान्यताओं का सिद्धान्त ।

(ब) समय का सिद्धान्त।

(3) नियोजन की प्रक्रिया के अनुसार

(अ) विकल्पों का सिद्धान्त ।

(ब) सीमाकारी घटकों का सिद्धान्त ।

(स) वचनबद्धता का सिद्धान्त ।

(द) लोचशीलता का सिद्धान्त ।

(य) नाविक परिवर्तन का सिद्धान्त, एवं

(र) प्रतिस्पर्धात्मक मोर्चाबन्दी का सिद्धान्त ।

कून्ट्रज एवं ओ'डोनेल के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी नियोजन के कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । संक्षेप में नियोजन के प्रमुख सिद्धान्त निम्नालिखित हैं

(1) उद्देश्यों के प्रति योगदान का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि नियोजन संस्था के उद्देश्यों की में योगदान देने वाला होना चाहिए ।

(2) नियोजन-आधारो का सिद्धान्त

नियोजन करते समय नियोजन के आधार (या मान्यताओं)का सही, स्पष्ट पूर्ण ज्ञान होना चाहिए ।

(3) कार्यकुशलता का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार नियोजन न्यूनतम प्रयत्नों एवं लागतों द्वारासंगठन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग देने। वाला होना चाहिए ।

(4) प्राथमिकता का सिद्धान्त

यह इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक कार्य योजना बनाकर करना ।

(5) लोच का सिद्धान्त

इसके अनुसार नियोजन यथासम्भव लोचपूर्ण होना चाहिए ।

(6) नाविकीय परिवर्तन का सिद्धान्त

जिस प्रकार नाव चलाने वाला नाव को खेते समय अपने लक्ष्य को सदैव में रखता है ठीक उसी प्रकार प्रबन्धकों को भी नियोजन का समय-समय पर मूल्यांकन करते चाहिए एवं आवश्यकतानुसार समायोजन कर लेना चाहिए ।

(7) प्रतिबद्धता का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार नियोजन कम से कम उतने समय के लिए अवश्य होना चाहिए जितने समय में संस्था विनियोगकर्ताओं, कर्मचारियों, उपभोकताओं आदि के प्रति किए गए वायदों को पूरा न कर दे ।

(8) व्यापकता का सिद्धान्त

इसके अनुसार नियोजन प्रबन्ध के सभी स्तरों के अनुकूल होना चाहिए ।

(9) नीति संरचना का सिद्धान्त

यह इस बात पर बल देता है कि नियोजन को प्रभावी बनाने के लिए ठोस एवं सुपरिभाषित नीतियां बनाई जानी चाहिए ।

(10) समय का सिद्धान्त

नियोजन में समय का विशेष ध्यान रखना चाहिए ताकि सभी कार्यक्रम व उप-योजनाएं निर्धारित समयावधि में पूरे हो जाएं ।

(11) विकल्पों का सिद्धान्त

नियोजन के अन्तर्गत सभी निर्णय श्रेष्ठतम विकल्प के चयन पर आधारित होने चाहिए।

(12) सीमित करने वाले घटकों का सिद्धान्त

नियोजन करते समय समिति संसाधनों का अधिकतम प्रयोग करना चाहिये ।

(13) अति प्रतिस्पर्धात्मक मोर्चाबन्दी का सिद्धान्त

यह इस बात पर बल देता है कि नियोजन करते समय प्रतिस्पर्धा सं गठानों की नियोजन तकनीक को ध्यान में रखना चाहिए ।

(14) सहयोग का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त बतलाया है कि नियोजन का कार्य संस्था में काम करने वाले सभी कर्मचारियों के सहयोग व परामर्श से किया जाना चाहिए ।

4.7 नियोजन प्रकिया

जॉर्ज आर.टेरी के अनुसार नियोजन प्रक्रिया के प्रमुख चरण निम्नलिखित है :-

1. समस्या का स्पष्टीकरण ।
2. अन्तर्निहित क्रियाओं के सम्बन्ध में पूर्ण सूचनाएं प्राप्त करना ।
3. सूचनाओं का विश्लेषण एवं वर्गीकरण ।
4. नियोजन की बाधाओं एवं मान्यताओं की स्थापना ।
5. वैकल्पिक योजनाओं को निश्चित करना ।
6. प्रस्तावित योजना के लिए समय एवं कम का निर्धारण ।
7. प्रस्तावित योजना का चुनाव, एवं
8. प्रस्तावित नियोजन के अनुवर्तन हेतु प्रावधान ।

कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल के अनुसार नियोजन प्रक्रिया में निहित चरण निम्न हैं : -

1. उद्देश्यों का निर्धारण ।
2. नियोजन मान्यताओं की स्थापना ।
3. वैकल्पिक कार्यपथों का निर्धारण ।
4. वैकल्पिक कार्यपथों का मूल्यांकन ।
5. सर्वश्रेष्ठ कार्यपथ का चुनाव, एवं
6. सहायक योजनाओं का निर्माण ।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नियोजन प्रक्रिया में विभिन्न विद्वानों । ने विभिन्न चरणों को सम्मिलित किया है । इन सभी के विचारों का अध्ययन करने के पश्चात् कह सकते हैं कि नियोजन-प्रक्रिया में निम्न आवश्यक कदम होने चाहिए

(1) उद्देश्यों का निर्धारण

नियोजन-प्रक्रिया का प्रथम कदम उद्देश्यों का निर्धारण करना है । हेतु सर्वप्रथम किसी व्यावसायिक संस्था के नियोजन उद्देश्य निर्धारित कर लेना चाहिए । तत्पश्चात विभागों एवं उप-विभागों के उद्देश्यों का निर्धारण करना चाहिए । इन निर्धारित उद्देश्यों से संस्था के सभी कर्मचारी अवगत होने चाहिए ताकि वे अपने प्रयास उसी ओर निर्देशित कर सके । यह सत्य है कि नियोजन कुछ अर्थपूर्ण उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए क्योकि उद्देश्य यह स्पष्ट करते है कि मूलत: क्या करना है कहां ध्यान केन्द्रित करना है और नीतियों, कार्यविधियों, बजट एवं कार्यक्रमों उपयोग उपयोग लेना? अत: नियोजन के उद्देश्य इस रूप में निर्धारित किये जाने चाहिए कि सम्बन्धित व्यक्ति उन्हें आसानी से समझ सके एवं क्रियान्वित कर सके ।

(2) वैकल्पिक कार्य-विधि का निर्धारण

नियोजन आधारों का निर्धारण करने के बाद वैकल्पिक कार्य-विधि का निर्धारण करना होता है । इस चरण पर कार्य करने की वैकल्पिक कार्य-विधियों की खोज की जाति है। इस चरण का आधार यह है कि किसी भी कार्य को करने की अनेक विधियां होती है । अत: सर्वश्रेष्ठ विधि की खोज की जानी चाहिए । सर्वश्रेष्ठ विधि जहां एक ओर कार्य के सफल निष्पादन को सम्भव बनाती है वहीं दूसरी ओर व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि करती है ।

(3) वैकल्पिक कार्य-विधियों का मूल्यांकन करना

काम करने की वैकल्पिक विधियों का पता लगाने एवं उनके विभिन्न पहलुओं के परीक्षण के बाद नियोजक को विकल्पों का मूल्यांकन करना पड़ता है । भविष्य की अनिश्चितता एवं परिवर्तनशीलता के कारण कार्य-पद्धतियों का सापेक्षिक मूल्यांकन कठिन कार्य हो जाता है किन्तु सफल नियोजन के लिए यह एक अनिवार्य है।

(4) सर्वोत्तम कार्यविधि का चयन

वही कार्यविधि सर्वोत्तम मानी जाती है जो संस्था को लाभों की प्राप्ति में सहायक होती है । यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि कभी-कभी वैकल्पिक कार्यविधियों का मूल्यांकन करने से यह स्पष्ट होता है कि उपक्रम के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए कोई एक विधि उपयोगी न होकर अनेक विधियों का मिश्रण उपयोगी है तो इस स्थिति में किसी एक कार्यविधि का चयन करने के स्थान पर मिली-जुली कार्यविधि का चयन करना लाभप्रद होता है ।

(5) नियोजन करना

यह नियोजन-प्रक्रिया का अन्तिम चरण है । इसमें सर्वोत्तम कार्यविधि चयन के आधार पर नियोजन किया जाता है । नियोजन के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने एवं प्रत्येक अवस्था का निर्धारण करके इसे विस्तारपूर्वक तैयार किया जाता है । इस प्रकार यह कदम नियोजन को अन्तिम रूप प्रदान करता है।

(6) सहायक योजनाओं का निर्माण

एक मूल योजना के निर्माण के पश्चात् उसे ठीक ढंग से क्रियान्वित करने के लिए अनेक सहायक या उप-योजनाओं का निर्माण करना होता है । ये सहायक या उप-योजनाएं पूर्ण रूप से स्वतन्त्र योजनाएं न होकर मूल योजना का ही अंग होती है । संस्था के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मूल योजना तो एक ही होती है लेकिन संस्था के अलग-अलग विभागों और

की योजनाएं भिन्न-भिन्न होती हैं । इस प्रकार इन सभी विभागों की योजनाएं सहायक या उपयोजनाएं कहलाती हैं जो मूल योजना का ही अंग होती है ।

(7) क्रियान्वयन में सहयोग प्राप्ति

नियोजन कर लेने से एवं अनेक सहायक योजनाएं बना लेने से ही निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो जाती । निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु नियोजन के क्रियान्वयन में संस्था के प्रत्येक व्यक्ति का हार्दिक सहयोग प्राप्त करना होता है । इस हेतु सभी व्यक्तियों को नियोजन की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए, क्रियान्वयन में उनकी सलाह ली जानी चाहिए एवं उनके सुझावों पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए । इस प्रकार इस चरण में कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त करके नियोजन का क्रियान्वयन किया जाता है ।

(8) अनुवर्तन

नियोजन का क्रियान्वयन करने मात्र से ही नियोजन प्रक्रिया समाप्त नहीं हो जाती । नियोजन प्रक्रिया का एक अन्तिम चरण और है, अर्थात यह विदित करना कि नियोजन के क्या परिणाम रहे हैं अनुवर्तन की आवश्यकता इसलिए है कि परिवर्तनशील परिस्थितियों के सन्दर्भ में नियोजन में आवश्यक संशोधन किये जा सकें और निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके । अत: अनुवर्तन को नियोजन-प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग माना जाने लगा है ।

4.8 नियोजन के तत्व

नियोजन के क्षेत्र या तत्व या संघटकों के अन्तर्गत हम मुख्यत: निम्न को सम्मिलित करते है: -

1. उद्देश्य या लक्ष्य
2. नीतियाँ
3. कार्यविधियाँ
4. विधियाँ
5. नियम
6. बजट
7. कार्यक्रम
8. मोर्चाबन्दी

(1) उद्देश्य या लक्ष्य

नियोजन का प्रथम कार्य उद्देश्यों या लक्ष्यों को निर्धारित करना होता है । लक्ष्य नियोजन के आधार होते हैं । लक्ष्य निर्धारण नियोजन का प्रथम चरण होता है लक्ष्यों की प्राप्ति नियोजन का अभीष्ट या अन्तिम बिन्दु नहीं होता, यह तो आधारभूत किया है जिससे प्रबन्ध की अन्य क्रियाओं (जैसे- संगठन, समन्वय, नियन्त्रण, आदि)के स्वरूप का निर्धारण होता है । लक्ष्य केवल सम्पूर्ण उपक्रम के ही नहीं होते, वरन् केन्द्रीय या शीर्ष लक्ष्यों के अनुसार प्रत्येक विभाग भी अपने लक्ष्य निर्धारित । करता है ।

(2) नीतियां:

नीतियाँ नियोजन का एक अन्य तत्व या संघटक है । एक योजना उद्देश्यों को तो परिभाषित करती ही है यह उनकी प्राप्ति के मार्ग को भी बतलाती है । अन्य शब्दों में उद्देश्य प्रबन्धकों को यह स्पष्ट करते है कि उन्हें क्या करना है और नीतियां यह स्पष्ट करती है कि इन उद्देश्यों की कैसे करनी है। नीतियाँ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सिद्धांतों का सामान्य विवरण होती हैं जो विभिन्न स्तरों पर कार्य कर रहे अधिशाषियों की क्रियाओं का मार्गदर्शन करती हैं । व्यापारिक उपक्रमों की नीतीयां अनेक प्रकार की हो सकती हैं जैसे उपक्रम में केवल स्थानीय व्यक्तियों की नियुक्ति करना, प्रयोग में जाने वाला माल देशी होना, केवल नकद विक्रय उत्पाद को एक निश्चित मूल्य पर ही बेचा जाना ।

संगठनात्मक स्तरों के आधार पर नीतियों को निम्नलिखित भागों में किया जा सकता है :

1. आधारभूत नीतियां
2. सामन्य नीतियां
3. विभागीय नीतियां

आधारभूत नीतियों का प्रयोग प्राय: उच्च प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है । ये नीतियां संगठन की प्रत्येक इकाई को प्रभावित करती है और विस्तृत होने के साथ-साथ महत्वपूर्ण भी होती हैं । उदाहरणार्थ ग्राहकों की संतुष्टि या ग्राहकों के हितों को ध्यान में रखा जाना एक आधारभूत नीति है । सामान्य नीतियां मध्यस्तरीय प्रबन्धको से सम्बंधित होती है और उनके द्वारा ही लागू भी की जाती हैं । ये नीतियां विशिष्ट प्रकृति की होती है एवं इनका क्षेत्र भी सीमित होता है । विभागीय नीतियां निम्न स्तरीय प्रबन्धकों यथा फोरमैन एवं सुपरवाइजर्स से सम्बंधित होती हैं और दिन प्रतिदिन सम्पादित की जाने वाली विभागीय क्रियाओं पर लागू होती हैं ।

एक अन्य दृष्टिकोण से नीतियों को हम निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते है:

1. आधारभूत नीतियां
2. बाहर से लादी हुई नीतियां,
3. अनुरोधित नीतियां

आधारभूत नीतियां उच्च प्रबन्धकों द्वारा तय की जाती हैं जो अधीनस्थ प्रबन्धकों के मार्गदर्शन का कार्य करती हैं । कुछ नीतियां बाहर से लादी हुई होती हैं जैसे, सरकारी नीति । नीतियां ऐसी होती हैं जो अधीनस्थों के अनुरोध या समस्याओं से उत्पन्न होती है । इन्हें नीति के नाम से सम्बोधित किया जाता है । अधीनस्थों की समस्याओं के निवारण के सम्बन्ध में तैयार की गई नीतियों में यदि कोई विवरण नहीं होता है तो उनकी याचना सुनने के बाद पुन: नीतियां बनाई जाती है ।

व्यावसायिक उपक्रमों में किये जाने वाले प्रमुख कार्यों के अनुसार नीतियों के वर्गीकरण का एक अन्य आधार निम्न प्रकार है :-

1. क्रय नीतियां
2. उत्पादन नीतियां
3. विक्रय नीतियां

4. वित्त नीतियां

5. सेविवर्गीय नितियां

अच्छी नीतियों की विशेषताएं :

जॉन जी. ग्लोवर के अनुसार अच्छी नीतियों में निम्न विशेषतायें होनी चाहिए

1. इन्हें संस्था के उद्देश्यों से सम्बंधित होनी चाहिए और उन सभी व्यक्तियों को स्पष्ट होनी चाहिए जिनके द्वारा इनको लागू करना है ।
2. इन्हें समझने योग्य शब्दों में प्रस्तुत करना चाहिए और नीतियां लिखित होनी चाहिए ।
3. इन्हें वर्तमान और भावी किया के लिए आधार निश्चित करना चाहिए ।
4. ये स्थिर होनी चाहिए लेकिन व्यावसायिक आवश्यकताओं एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनूरूप परिवर्तन योग्य होनी चाहिए ।
5. ये न्यायोचित एवं पूरा करने योग्य होनी चाहिए ।
6. जो व्यक्ति इन्हें लागू करने के लिए उत्तरदायी है उन्हें नीतियों को लागू करने में स्वतन्त्रता दीं जानी चाहिए ।
7. इन्हें एक कम्पनी के आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक वातावरण के अनूरूप होना चाहिए ।
8. ये इतनी विस्तृत होनी चाहिए कि इनमें बहु त सी क्रियाओं को सम्मिलित किया जा सके ।
9. इन्हें एक सिद्धान्त के रूप में होना चाहिए, जिनके द्वारा कार्य करने के नियम बनाये सकें ।
10. इन्हें व्यापक शब्दों में कार्य करने की विधि स्पष्ट करना चाहिए ।
11. अपने किया-क्षेत्र की सीमाओं को भी स्पष्ट करना चाहिए ।

(3) कार्यविधियां

कार्यविधियां भी नियोजन का एक आवश्यक तत्व है क्योंकि यह ही पर्याप्त नहीं होता उद्देश्य निर्धारित कर लिये जाये और नीतियां बना ली जाये । एक नियोजन को यह भी स्पष्ट चाहिए कि उद्देश्यों की प्राप्ति कैसे की जायेगी और नीतियों को कैसे प्रभावी ढ़ग से लागू किया जायेगा । इस प्रकार कार्यविधियां प्रबन्धकों एवं अधीनस्थों को लक्ष्य पूर्ति की विधि स्पष्ट करती है यहां यह जान लेना आवश्यक होगा कि कार्यविधियां भी नीतियों की तरह अधिक दृढ़ नहीं होती है। कार्यविधियां किसी कार्य को सर्वश्रेष्ठ ढंग से करने का एक निश्चित आधार प्रदान करती हैं नीतियों और कार्यविधियों में भी अन्तर होता है । नीतियां किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त निर्धारित करती है और कार्यविधियां उस उद्देश्य के प्राप्त करने के लिए सर्वश्रेष्ठ तरीकों का बोध कराती है । उदाहरण के लिए महाविद्यालय की पर्यटन परिषद् से प्रत्येक पयर्टन के छात्र सदस्य को एक पुस्तक मिलेगी यह नीति सम्बन्धी बात है लेकिन पुस्तक प्राप्ति के लिए किससे मिलना होगा? निर्गमन रजिस्टर में ब्यौरा कौन एवं कैसे रखा जायेगा? पुस्तकें लौटाने की क्या विधि होगी? आदि कार्यविधि' की ओर संकेत करते हैं ।

(4) विधियां

निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति का आधार विधियां ही होती हैं । अत: विधियों को भी नियोजन एक तत्व माना गया है । **जॉर्ज आर. टेरी** के अनुसार "विधि उद्देश्यों उपलब्ध सुविधाओं, समय, एवं प्रयासों के कुल व्यय पर पर्याप्त ध्यान देते हुए किसी कार्य के निष्पादन के ढंग को निर्धारित का परिणाम है ।

कार्यविधि एवं विधि में भी अन्तर है । कार्यविधि के अन्तर्गत निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उठाये जाने वाले कदमों की एक शृंखला सम्मिलित होती है जबकि विधि केवल एक ही किया से सम्बंध रखती है एवं स्पष्ट करती है कि क्या विशिष्ट कदम उठाया जाये? इस प्रकार विधि एक कार्यविधि के अनेक कदमों में से किसी एक कदम से सम्बन्धित है । अत: कार्यविधि की तुलना में एक विधि अधिक विस्तृत होती है ।

(5) नियम

नियम भी नियोजन के आवश्यक तत्व होता है । नियम यह स्पष्ट करता है कि विशिष्ट परिस्थिति में किसी विशिष्ट कार्य को कैसे किया जाय? **कून्ट्ज एवं ओ'डोनेल** के अनुसार "नियम योजनाएँ है जो आवश्यक क्रियाओं का मार्गदर्शन करते हैं और इनका चयन अन्य योजनाओं की भांति विभिन्न विकल्पों में से होता है । अमान्यता: ये योजना का सरलतम रूप होते है ।" कुछ व्यक्ति नीतियों, कार्यविधियों एवं नियमों को एक ही अर्थ में समझते है लेकिन इनमें पर्याप्त है । एक नियम के अनुसार एक परिस्थिति के सन्दर्भ में निश्चित और विशिष्ट किया होनी या नही होनी चाहिए । इस प्रकार इस रूप में यह एक कार्यविधि से सम्बन्धित है और उसका मार्गदर्शन करता है । लेकिन यह क्रियाओं के कम का निर्धारण नहीं करता । यहां यह स्पष्ट करना उपयुक्त होगा कि कार्यविधियों का अंग हो भी सकते हैं और नहीं भी । नियम और नीतियों में भी अन्तर होता है । का उद्देश्य निर्णयन प्रक्रिया में विवेक के क्षेत्र को छूते हुए विचारों का मार्गदर्शन करना होता है । यद्‌यपि नियम भी मार्गदर्शन का कार्य करते हैं लेकिन इनमें और नीतियों में अन्तर इस प्रकार किया जा । सकता है कि नियमों को लागू करने में स्वेच्छा की गुंजाइश नहीं रहती । अन्य शब्दों में नीतियों के क्रीयान्वयन में प्रबन्धकों के पास स्वेच्छा का कुछ अंश रह जाता है जबकि नियमों को उन्हें अक्षरश: लागू करना होता है ।

(6) बजट

कून्ट्ज एवं ओ'डोनेल के अनुसार, "एक बजट एक योजना की भांति अनुमानित परिणामों का विवरण है जो आकड़ों में अभिव्यक्त होता है ।" प्रत्येक संस्था के अन्तर्गत जो भी कार्यक्रम तैयार किये जाते हैं उनमें मुद्रा, मनुष्य, सामग्री, उपकरण आदि का प्रयोग निहित होता है । बजट इन सभी साधनों को आकड़ों के रूप मे व्यक्त करते हैं आकड़े या तो वित्तीय संदर्भ में व्यक्त किए जाते है या मानव-घण्टों या मशीन या उत्पादित इकाइयों या अन्य किसी रूप में जिन्हें संख्या में आसानी से मापा जा सके। बजट अनेक प्रकार के हो सकते है जैसे, क्रय बजट, विक्रय बजट, श्रम बजट, आय-व्यय बजट, रोकड़ बजट आदि । बजट प्रबन्धकीय नियन्त्रण का एक साधन है । यह एक ऐसा शस्त्र है जिसके माध्यम से प्रबन्धक नियोजन का मूल्यांकन

करते हैं और आवश्यक नियन्त्रण स्थापित करते है लेकिन बजट को नियन्त्रण का एक पूर्ण साधन नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि बजट का यह उद्देश्य तब पूरा नहीं होता जब तक कि नियोजन के माध्यम से उन्हें योजनाओं के रूप में विकसित न किया और उनका प्रयोग कार्यो के अनुरूप न किया जाए ।

(7) कार्यक्रम

कून्ट्ज एवं ओ'डोनेल के अनुसार, "कार्यक्रम नीतियों, कार्यविधियों, नियमों, सौंपे गये कार्यों और एक क्रिया-समूह का संचालन करने के लिए आवश्यक तत्वों का सम्मिश्रण है जिसे आवश्यक पूंजी बजट द्वारा सर्मथन प्राप्त होता है ।" **लुईस ए. ऐलन** के अनुसार, "कार्यक्रम उद्देश्य की प्राप्ति के आवश्यक प्रयासों का क्रम है जो प्राथमिकता क्रम में व्यवस्थित होते हैं।" कार्यक्रम किसी संस्था में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले कार्यों के क्रम का निर्धारण करते हैं । ये अल्पकालीन, दीर्घकालीन, विशिष्ट, सामान्य, व्यापक एवं संकुचित हो सकते हैं । कार्यक्रम किसी कार्य की संक्षिप्त योजना है जिसे निर्धारित कम में लक्ष्यों के अनुरूप, नीतियों के आधार पर एवं कार्यविधियों के अनुरूप तैयार किया जाता है ।

(8) मोर्चाबन्दी

प्रबन्ध में मोर्चाबन्दी या व्यूहरचना या रणनीति आदि शब्दों का प्रयोग युद्ध एवं खेल के क्षेत्र की तरह किया जाता है । जिस प्रकार युद्ध एवं खेल के मैदान में प्रतिपक्षी को हराने के लिए अनेक युक्तियों का सहारा लेना पड़ता है और उनकी तैयारी को ध्यान में रखकर ही अपनी तैयारी करनी पड़ती है ठीक उसी प्रकार पर्यटन के क्षेत्र में भी एक व्यवसायी को प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने के लिए मोर्चाबन्दी करनी पड़ती है । अर्थात् उसे अपनी योजनायें प्रतिद्वन्द्वियों की योजनाओं को ध्यान में रखकर ही तैयार करनी पड़ती है । उदाहरण के लिए एअरलाइन्स विक्रय वृद्धि हेतु मूल्यों में कमी कर देती है तो दूसरी प्रतियोगी संस्था को प्रथम संस्था द्वारा अपनाई गई नीति को व्यर्थ करने कि लिए मूल्यों में कमी करनी चाहिए या किस्म में सुधार करना चाहिए या विज्ञापन पर ध्यान देना चाहिए या उपभोक्ता सन्तुष्टि के लिए नये साधनों का विकास करना चाहिए आदि निर्णय ही मोर्चाबन्दी करना कहलाता है । अत: किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि मोर्चाबन्दी वे योजनायें है जो प्रतिद्वन्द्वियों की क्रियाओं को नजर में रखते हुए ही तैयार की जाती है । मोर्चाबन्दी आन्तरिक और बाहरी दोनों तरह की हो सकती है । आन्तरिक मोर्चाबन्दी संगठन-संरचना से सम्बंध रखती है जबकि बाह्य मोर्चाबन्दी बाह्य प्रतिद्वन्द्वियों से सम्बन्ध रखती है । अत: हम कह सकते है कि निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु उपयुक्त मोर्चाबन्दी करना नियोजक का एक महत्वपूर्ण कार्य है ।

4.9 नियोजन के लाभ व सीमाएं

नियोजन प्रबन्ध का एक प्राथमिक कार्य है जिसकी आवश्यकता व्यवसाय के अतिरिक्त धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में होती हैं । प्रत्येक क्षेत्र में किये जाने वाले कार्यो की शुरूआत नियोजन से ही क्यों होती है? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि नियोजन के अनेक फायदे या अनेक लाभ है । नियोजन के कुछ प्रमुख लाभ इस प्रकार है:

(1) उपलब्ध प्रसाधनों का अधिकतम सदुपयोग

नियोजन का प्रमुख लाभ यह है कि इसके माध्यम से पर्यटन संगठन के उपलब्ध प्रसाधनों का अधिकतम सदुपयोग किया जा सकता है । ऐसा इसलिए सम्भव है कि नियोजन सभी उपलब्ध प्रसाधनों के मध्य उपयुक्त तालमेल बिठाये रखता है । नियोजन के माध्यम से ही उपक्रम की विभिन्न क्रियाओं यथा संगठनात्मक, क्रियात्मक, संचालनात्मक में उपलब्ध प्रसाधनों का अधिकतम सदुपयोग किया जा सकता है ।

(2) व्यवसायी को दिशा बोध

नियोजन पूर्व निर्धारित लक्ष्यों के आधार पर व्यवसायी का मार्ग प्रशस्त करता है । ऐसा इस कारण से सम्भव है कि लक्ष्यों, नीतियों, कार्य पद्धतियों, विधियों, कार्यक्रमों एवं बजटों सभी का पहले से ही निर्धारण होता है और व्यवसायी इन्हीं के अनुरूप अपनी क्रियाएं सम्पादित करता है । बिना नियोजन के एक व्यवसायी की वही स्थिति होती है जो एक नाविक की बिना लक्ष्य निर्धारित किये जहाज चलाने पर होती है ।

(3) मितव्ययिता

नियोजन के माध्यम से अनेक लागतों में कमी आ जाती है, फलत: प्राप्त होती है । नियोजन के माध्यम से जहां एक ओर श्रम, सामग्री आदि से सम्बंधित पर रोक लगाई जाती है वहां दूसरी ओर उपलब्ध प्रसाधनों का अधिकतम सदुपयोग करके भी प्राप्त की जाती है ।

(4) प्रबन्धकीय कार्यो के निष्पादन में सहयोग ।

नियोजन प्रबन्धन के अन्य कार्यों तथा संगठन, समन्वय, आदि के निष्पादन में सहायता प्रदान करता है । नियोजन के माध्यम से एक उपक्रम का संगठनात्मक ढांचा निर्धारित किया जाता है । नियोजन कर्मचारियों की विभिन्न क्रियाओ में एकरूपता स्थापित है और भावी मार्ग प्रशस्त करता है । नियोजन प्रभावी नियन्त्रण स्थापित करने में भी सहायक है । नियोजन लक्ष्यों और प्रमाणों को निर्धारित करता है और वास्तविक निष्पादन से इनकी तुलना कर विचलनों को दूर करने के उपाय सुझाता है ।

(5) अनिश्चितताओं में कमी

भविष्य अनिश्चित है फलस्वरूप पर्यटन व्यवसाय भी भावी जोखिम से होता है । नियोजन इन अनिश्चितताओं में कमी करने के साथ-साथ जोखिमों में भी कम है । पूर्वानुमान नियोजन प्रक्रिया का एक अंग है जो भावी परिस्थितियों का अनुमान लगाकर अनिश्चितताओं में कमी करता है ।

(6) प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि

नियोजन एक पर्यटन संस्था कि प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि करता है । नियोजन के माध्यम से एक संस्था पर्यटन उद्‌योग में लगी अन्य संस्थाओं में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा बनाये रखने में समर्थ होती है । **मेकूफारलैण्ड** के अनुसार "नियोजन के माध्यम से नवीन उत्पादों का निर्माण किया जा सकता है, संयन्त्र क्षमता में वृद्धि की जा सकती है, कार्य-विधियों में परिवर्तन किया जा सकता है, उत्पाद की किस्म में सुधार किया जा सकता है, उत्पाद की आकृति में परिवर्तन किया जा सकता है और ग्राहकों की आवश्यकताओं एवं रूचियों का अनुमान लगाया जा सकता है जिससे संस्था की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि की जा सकती है।

(7) परिवर्तन के अनुसार योग्यता में सुधार

डी.ई.हुसे के अनुसार, "नियोजन का एक प्रमुख लाभ यह है कि माध्यम से परिवर्तनों का सामना करने के लिए एक संगठन की योग्यता में वृद्धि हो जाती है ।" संगठन का नियोजन व्यावसायिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों को तो नहीं रोक सकता लेकिन के सभी प्रबन्धकों को होने वाले परिवर्तनों के प्रति सावधान कर देता है और संगठन को इन ' से लाभ उठाने का अवसर प्रदान करता है ।

(8) नियोजन किसी उपक्रम के विकास एवं सुधार में सहायक होता है ।

(9) प्रभावी नियोजन के माध्यम से कार्य की अधिक प्रभावशाली कार्य पद्धयतियों एवं विधियों का विकास किया जा सकता है ।

(10) एक अच्छा नियोजन अधिकारों के प्रत्यायोजन को सरल बना देता है।

(11) नियोजन-प्रक्रिया को सम्पूर्ण संगठन में एक कुशल सम्प्रेषण के साधन के रूप में समझा जा सकता है । अन्य शब्दों में, नियोजन संगठन में सम्प्रेषण व्यवस्था कार्य भी करता है ।

(12) नियोजन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है । अत: नियोजक सदैव लक्ष्यों की प्राप्ति पर ध्यान केन्द्रित करता हैं ।

(13) नियोजन के माध्यम से भावी संकटों का पूर्वानुमान लगाकर इनका निवारण सुनिश्चित किया जा सकता है ।

(14) अच्छा नियोजन नये एवंसृजनशील विचारों को प्रोत्साहित करता है ।

(15) प्रभावी नियोजन कर्मचारियों के मनोबल में वद्धि करता है और उन्हें कार्य करने हेतु अभिप्रेरित करता है ।

नियोजन की सीमाएं

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नियोजन के अनेक लाभ हैं । इन लाभों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि प्रबन्धक नियोजन कार्य पर्याप्त सावधानी एवं सतर्कता के साथ करें । योग्य एवं अनुभवी प्रबन्धक ही इस कार्य को कुशलता के साथ कर सकते हैं । प्रबन्धको को नियोजन कार्य के निष्पादन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । इस हेतु उन्हें सीमाओं को ध्यान में रखते हुए कार्य करना चाहिए । नियोजन की कुछ सीमाएं निम्नलिखित हैं:

नियोजन की सीमाओं को निम्न शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है.

1. नियोजकों में कमियों के कारण ।

2. नियोजन की तकनीकों की सीमाओं के कारण ।

3. नियोजन के दोषों या कमियों के कारण ।

(1) नियोजकों में कुछ कमियों के कारण

विद्वानों का मत है कि नियोजन की कुछ सीमाएं इस कारण से है कि नियोजन करने वाले व्यक्तियों में कुछ न कुछ कमियां पायी जाती हैं । नियोजन करना सरल कार्य नही है । इस कार्य हेतु योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों की आवश्यकता होती है । उपयुक्त योग्यता रखने वाले नियोजकों के अभाव में कुछ त्रुटियां होना स्वाभाविक है जिनके कारण ही नियोजन असफल

हो जाता है और उन परिणामों की प्राप्ति होती है जिनकी नियोजन करते समय सम्भावना भी नही थी । अत: इस कठिनाई के निवारण हेतु नियोजन का कार्य उच्च योग्यता प्राप्त व्यक्तियों द्वारा ही किया जाना चाहिए ।

(2) नियोजन की कुछ तकनीकी सीमाओं के कारण

नियोजन के लिए कुछ तकनीकों का प्रयोग किया जाता है उनमें भी कुछ कमियां देखने को मिलती है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में अभी तक भी नियोजन की कुशल तकनीकों का विकास नहीं हुआ है । नियोजन का आधार पूर्वानुमान होते है । पूर्वानुमान के लिए जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है वे पूर्ण विश्वसनीय नहीं है । पूर्वानुमान हेतु आवश्यक सूचनाएं एवं आकड़े एकत्रित करने के लिए किसी ठोस तकनीक का विकास न होने के कारण जो भी आकड़े एकत्रित किये जाते है वे पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं होते, फलत: नियोजन वास्तविकता से काफी परे होता है । इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रकार के नियोजन में क्रियात्मक अनुसंधान का प्रयोग भी नहीं किया जाता फलस्वरूप नियोजन की उत्कृष्टता में कमी आती है ।

(3) नियोजन के दोषों या कमियों के कारण

नियोजन की कुछ सीमाएं स्वयं नियोजन के कुछ दोषों या कमियों के कारण पायी जाती हैं । नियोजन के कुछ दोष निम्नलिखित प्रकार है!

1. कुछ आलोचकों का यह कहना है कि नियोजन अमितव्ययी है। इसे बनाने में पर्याप्त समय, श्रम एवं धन का व्यय होता है।
2. कुछ आलोचकों का कहना है कि नियोजन सुदृढ़ तौर-तरीके के आधार पर कार्य करने के लिए बाध्य करता है । आज का युग परिवर्तनशील है अत: नियोजन में अधिक दृढ़ता नहीं होनी चाहिए ।
3. नियोजन पूर्व निर्धारित कार्य पद्धतियों, विधियों, कार्यक्रमों एवं प्रमापों के आधार पर कार्य करने के लिए बाध्य करता है । फलत: व्यक्तियो में पहलपन के गुण का उपयोग नहीं हो पाता ।
4. कुछ आलोचकों का मत है कि नियोजन आवश्यकता से लोचशील होता है । परिस्थितियों में मामूली परिवर्तन से ही नियोजन में परिवर्तन दिया जाता है जबकि अनेक ऐसी घटनाएं हैं जिनके बारे में अनुमान लगाने में नियोजन असमर्थ रहता है । उदाहरणार्थ अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि के कारण फसल का नष्ट हो जाना, सरकार द्वारा आधारभूत परिवर्तन करना, व्यावसायिक संकटों को उदय होना आदि ।
5. नियोजन प्रक्रिया में प्रबन्धकों के सहयोग, मार्गदर्शन एवं हिस्सेदारी का अभाव पाया जाता है ।
6. नियोजन प्रक्रिया में रेखा अधिशासियों के सहयोग प्राप्त नहीं हो पाती ।
7. नियोजन-समूह का दिन-प्रतिदिन की संचालनात्मक समस्याओं में उलझे रहना ।
8. योजनाओं का सामयिक मूल्यांकन करने में असफल रहना ।
9. अल्प समय में अधिक से अधिक कार्य करने की प्रवृति पायी जाना ।

10. औपचारिकताओं पर अत्याधिक ध्यान देना ।

4.10 सारांश

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि एक श्रेष्ठ पर्यटक प्रबन्धक को नियोजन के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी होना चाहिए । साथ ही वह इस जानकारी को पर्यटन संगठन में लागू व संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में भी सक्षम हो । नियोजन की प्रमुख विशेषताओं में मुख्य से पूर्वनुमान, निश्चित लक्ष्य, सर्वव्यापकता, लोचता, एकता, चुनाव, इत्यादि है । नियोजन एक सतत् प्रक्रिया है जो लक्ष्य प्राप्ति में योगदान देती है । इसे प्रबवंधकीय कार्यो मे सर्वोपरि माना जाता है । नियोजना निर्णयन नहीं है । नियोजन का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि यह पर्यटन प्रबन्ध के कार्यों का आधार है व अनिश्चितता एवं परिवर्तनों का समाना करने, उद्देश्यों की ओर ध्यान केन्द्रित करने एवं आर्थिक मितव्ययता को सुनिश्चित करता है ।

नियोजन के सिद्धान्तों में योगदान का सिद्धान्त, कार्य कुशलता सिद्धान्त, व्यापकता का सिद्धान्त, मान्यताओं का सिद्धान्त, लोचशीलता का सिद्धान्त, नीति निर्धारण, तथा वचनबद्धता के सिद्धान्त प्रमुख हैं । नियोजन के तत्वों के अन्तर्गत उद्देश्य, नीतियां कार्य विधियां, नियम, बजट, कार्यक्रम, मोर्चाबन्दी इत्यादि आते हैं ।

4.11 अपनी प्रगति को जानने के लिए अभ्यास

1. नियोजन क्या है? इसके उद्देश्य एवं प्रकृति की विवेचना कीजिए ।

....

....

....

....

2. नियोजन के आधारभूत सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ।

....

....

....

....

3. नियोजन प्रक्रिया को संक्षेप में समझाइए।

....

....

....

....

4. पर्यटन के क्षेत्र में नियोजन का क्या महत्व है।

....

....

....

....

इकाई-5 : संगठन

ढांचा

5.0 उद्देश्य
5.1 परिचय
5.2 संगठन का आशय एवं परिभाषा
5.3 संगठन की आवश्यकता एवं महत्व
5.4 बुरे संगठन के दोष एवं लक्षण
5.5 संगठन प्रकिया
5.6 संगठन के सिद्धान्त
5.7 संगठन संरचना
5.8 औपचारिक व अनौपचारिक संगठन
5.9 सारांश
5.10 अपनी प्रगति को जानने के लिये अभ्यास

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगे

(अ) संगठन की आवश्यकता एवं महत्व को समझने में ।

(ब) संगठन की प्रकिया को समझने में

(स) संगठन के सिद्धान्त एवं संगठन संरचना को समझने में ।

(द) पर्यटन के क्षेत्र में संगठन क्यों आवश्यक है यह जानने में ।

5.1 परिचय

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्यशील होते हैं तो संगठन की आवश्यकता पड़ती है । उद्देश्य के अल्पकालीन होने से संगठन की आवश्यकता में कोई कमी नहीं आती । **मूने** ने उदाहरण देते हुए लिखा है यदि कुछ व्यक्तियो को मिलकर एक बड़ा सा पत्थर भी उठाना है तो इस क्षणिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी उन्हें संगठन की आवश्यकता होगी ।

प्रबन्ध जगत में संगठन के प्रति अभिरूचि, टेलर के क्रियात्मक फौरमैनशिप तथा आयोजन कर्मचारियों की विचारधारा के प्रतिपादन से जागृत हुई । इस विषय पर प्रथम विस्तृत एवं विधिवत लेखन मूने तथा रैले का है इस विषय पर बेच की पुस्तक ‘(Organisation)' तथा ऐलन की पुस्तक "Management and Orgnisation" आधुनिक प्रबन्ध साहित्य में बेजोड़ मानी जाती है । समाजशास्त्रियों में मैक्स वेबर ने संगठन पर अपने विचार बड़े प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किए हैं । आज से दौ सौ वर्ष पूर्व स्मिथ एडम ने उत्पादन के विभिन्न कारकों की गणना करते समय भूमि, श्रम तथा पूंजी के साथ संगठन की चर्चा की है । अर्थशास्त्र के क्षेत्र में 'संगठन' का यह प्रथम पदार्पण माना जाना चाहिए ।

5.1 संगठन का आशय एवं परिभाषा

ऑग्ल भाषा के शब्द 'Organisation' की उत्पत्ति 'Organism' से हुई है । वैब्सटर शब्दकोश के अनुसार 'Organism' एक ऐसी जटिल संरचना है जिसमें परस्पराश्रित मूल तत्वों का सम्पूर्ण भाग से सम्बन्ध उनकी सम्पूर्ण भाग में निर्धारित क्रियाओं द्वारा निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए, मानव शरीर की संरचना को ही लीजिए । शरीर के विभिन्न अवयवों जैसे हाथ, पैर ,मुंह, ऑख, नाक ओर मस्तिष्क आदि की सुनिश्चित एवं स्पष्ट क्रियाएं निर्धारित हैं । ये सभी क्रियाएं पारस्परिक रूप से एक दूसरे अवयव की क्रियाओं पर आश्रित रहती हैं । चलते समय दौड़ते हुए अथवा खाना खाते हुए सभी आवश्यक अवयव किसी न किसी क्रिया का सम्पादन करते हैं ।

इस प्रकार की कार्य प्रणाली में दो बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं । प्रथम तो मानव शरीर के विभिन्न अवयवों का समन्वित रूप से कार्य करना तथा मस्तिष्क द्वारा एक केन्द्रीय विभाग के रूप में समस्त अवयवों की क्रियाओं का नियोजन, निर्देशन, संचालन एवं नियंत्रण । विभिन्न विभागों अथवा व्यक्तियों के कार्य कलापों में समन्वय स्थापित करने को भी संगठन के रूप में जाना जाता हे ।

परिभाषायें

विभिन्न विद्वानों द्वारा संगठन की परिभाषाओं का अध्ययन करने के पूर्व हमें ज्ञात होना चाहिये कि सामूहिक संज्ञा के रूप में 'संगठन' का आशय व्यक्तियों के एक विशेष समूह से होता है । जबकि भाव वाचक संज्ञा के रूप में समूहबद्ध करने की प्रक्रिया को 'संगठन' के नाम से जाना जाता है । संगठन की परिभाषाओं को निम्न रूप में वर्णित किया जा सकता है ।

(अ) संगठन, सामूहिक क्रिया के रूप में :

1. "संगठन का आशय, व्यक्तियों के एक समूह से है जो निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति लिए मिलकर कार्य करता है ।" - मैक्फारलैण्ड
2. "संगठन मूलत: व्यक्तियो का एक समूह है जो एक नेता के निर्देशन में सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु सहयोग करते है ।" - आर.सी.डेविरा
3. "संगठन सामान्य हितों की पूर्ति के लिए बनाया गया मनुष्यों का एक समुदाय है।" - सूने एवं रैले

(आ) संगठन, भाव वाचक संज्ञा के रूप में :

4. "संगठन एक कार्य विधि है जिसके द्वारा आवश्यक विभागों में, व्यक्तियों या समूह द्वारा किये जाने वाले कार्य को, इरा प्रकार संयोजित किया जात।- है कि उनके प्रयत्नों को श्रृंखलाबद्ध करके कुशल, व्यवस्थित एवं समन्वित बनाया जा सके ।" - ओलिवर शेल्डन
5. "किसी समान्य उद्देश्य अथवा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशिष्ट अंगो का मैत्रीपूर्ण संयोजन ही संगठन कहलाता है ।" - प्रो.हैन

(इ) संगठन कार्य को विभिन्न इकाइयों में बांटने की प्रक्रिया के रूप में :

6. "किसी कार्य को पूरा करने के लिए किन-किन क्रियाओं को किया है, का निर्धारण करना एवं उन क्रियाओं को व्यक्तियों के मध्य वितरित करना ही संगठन कहलाता है।" - उर्वरक

7. "संगठन प्रबन्ध की संरचना है क्योंकि वह अधिक सार्थक कार्य सम्पादन के लिए कुल उत्तरदायित्व को उचित भागों में विभक्त या वितरित करता है ।" - ई.एफ.एस.ब्रेच

(ई) संगठन समाकलन की प्रक्रिया के रूप में :

8. "संगठन का वास्तव में विभिन्न क्रियाओं तथा घटकों के बीच का सम्बन्ध है ।" - विलियम आर. स्प्रीगल ।

9. "कर्मचारियों एवं उनके कार्यो में एकीकरण तथा सामंजस्य करने की क्रिया को संगठन कहते है ।" - जी.ई मिलवर्ड

(उ) संगठन, एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण :

10. "संगठन एक विधिसंगत एवं साभिप्राय भूमिकाओ अथवा अवस्थितियों की सरंचना है ।" - कुंण्टज एवं ओ'डोनेल

11. " संगठन अंशत: संरचनात्मक सम्बन्धों का प्रश्न है तथा अंशत: सम्बन्धों का मामला है ।" - नियोल तथा ब्राण्टन

इस प्रकार हम देखते हैं कि संगठन जहाँ एक ओर विभिन्न कार्यो एवं क्रियाओं में प्रभावपूर्ण सामंजस्य स्थापित करने की प्रकिया है वहाँ दूसरी और कार्यरत व्यक्तियों के बीच सुर सम्बन्ध स्थापित करने की कला है जिससे कि उनके मध्य बिना बाधा के सम्प्रेषण हो सके तथा शव भूमिकाओं की संरचना की जा सके । ।

5.3 संगठन की आवश्यकता व महत्व

संगठन की आवश्यकता व महत्व के विषय में निम्न शब्द महत्वपूर्ण हैं- "हम परिवार रूपी संगठन में जन्म लेते हैं, शिक्षा प्राप्त करते हैं । तथा बड़े होते हैं और फिर हममें अधिकांश व्यक्ति अपना समय समाज रूपी संगठन में ही व्यतीत करते है । हम में से अधिकांश व्यक्ति संगठन में ही मरेंगे तथा दफनाने के समय सबसे बड़े संगठन (अर्थात राज्य)की आज्ञा प्राप्त करनी पड़ेगी । संगठन के कुशल संचालन के अभाव में हमारा सामाजिक जीवन स्तर, सांस्कृतिक स्तर तथा हमारा जनतान्त्रिक जीवन बनाये ही नहीं रखा जा सकता ।" यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कॉरपोरेशन के विक्रय के समय सन् 1901 में अमरीका के विख्यात उधोगपति एण्ड्रयू कार्नेगी के निम्न शब्द भी संगठन के महत्व पर प्रकाश डालते हैं- "हमारा सारा धन हमारे महान् कार्य एवं कारखाने सब कुछ ले जाओ, लेकिन हमारा संगठन हमारे पास रहने दो, और मैं कुछ ही वर्षो में पुन: अपने आप को स्थापित कर लूंगा । "

लोन्सबरी फिश के ये विचार भी स्मरणीय हैं, "संगठन की उपयोगिता चार्ट से कही अधिक होती है । यह वह तन्त्र है जिसकी सहायता के प्रबन्ध व्यवसाय का संचालन, असन्वय तथा नियन्त्रण करता है । संगठन वास्तव में प्रबन्ध की आधारशिला है । यदि संगठन विषयक नियोजन में किसी प्रकार का दोष रह जाता है तो प्रबन्ध व्यवस्था का कार्य कठिन व प्रभावहीन

हो जाता है । इसके विपरीत, यदि संगठन स्पष्ट, तर्कसंगत, पूर्व-नियोजित व आवश्यकताओं के अनुरूप है, तो इसे दृढ़ व स्वस्थ प्रबन्ध की आधारशिला समझना चाहिए ।" एक श्रेष्ठ संगठन प्रशासन को सुविधाजनक बनाता है, विशिष्टीकरण को प्रेरित करता है तक विकास व उत्पादकता को प्रोत्साहित करता है । संगठन की महत्ता निम्न विवेचन से स्पष्ट हो जाती है :

(1) प्रशासन व प्रबन्ध की सुगमता

समान्यत: प्रशासन का मूल कार्य नीति-निर्धारित करना तथा प्रबन्ध का कार्य प्रशासन द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत नीतियों को कार्यान्वित करना होता है किन्तु संगठन ही वह महत्वपूर्ण तन है जो प्रशासन द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक होता है । प्रबन्ध का प्रमुख कार्य स्वयं काम करने की अपेक्षा दूसरों से काम लेना है । परन्तु दूसरों से कार्य लेना कोई साधारण काम नहीं है । यह एक कला है जिसकी नियत विधि होनी चाहिए । व्यवस्थित संगठन ही वह विधि है जिसके द्वारा मानवीय प्रयासों को एक निश्चित दिशा देकर उन्हें अधिक सार्थक व प्रभावशाली बनाया जाता है ।

(2) विशिष्टीकरण को बढ़ाव

संगठन से विशिष्टीकरण को भी बढावा मिलता है । श्रेष्ट संगठन के अन्तर्गत ही विशेषज्ञों की नियुक्ति की जा सकती है अवस्था संगठन के अभाव में कार्य का भार बढ़ता है । तथा जब कुछ व्यक्ति ही विविध प्रकार के कार्य करते है तो इससे अकुशलता को बढावा मिलता है, अव्यवस्थित तरीके रो कार्य सम्पादित होता है तथा प्राय: अधूरा रहता है ।

(3) विकास व उत्पादकता को बढ़ावा

प्रत्येक उपक्रम का उद्देश्य अपनी क्रियाओं को विकसित एवं विसारित करना होता है । यह कार्य संगठन द्वारा ही सम्भव होता है । आज विश्व में जितने वृहत्त स्तर के व्यवसाय दिखाई पड़ते हैं, जिनमें सहस्त्रों की संख्या में श्रमिक कार्य करते हैं, वे संगठन की ही देन है । बिना कुशल संगठन के वृहत्त व्यवसाय एक दिन भी टिक नहीं सकते ।

(4) रचानात्मक विचारधारा को प्रोत्साहन

कुशल संगठन के अन्तर्गत सब कुछ पूर्णत: व्यवस्थित होता है । फलस्वरूप कर्मचारियों में रचनात्मक चिंतन करने की शक्ति जाग्रत होती है ।

(5) सुविधाजनक समनयू

संगठन के माध्यम से विभिन्न व्यक्तियों, कार्यो एवं विभागीय क्रियाओं के अध्य सुन्दर समन्वय स्थापित किया जा सकता है ।

(6) मानवीय साधनो का श्रेष्ठम उपयोग

चूंकि संगठन श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण पर बल देता है, अत: इसके । मानवीय संसाधन का श्रेष्ठ उपयोग सम्भव हो जाता है ।

(7) अधिकारों के प्रत्यायोजन में सुविधा

श्रेष्ठ संगठन में अधिकारों का प्रत्यायोजन सुविधाजनक ढ़ग का से किया जा है । संगठन चार्ट से अधिकारी को यह ज्ञात हो जाता है कि उसके अधीनस्थ कौन- है? तथा किस अधीनस्थ की क्या क्षमताएं हैं?

(8) विकास एवं समृद्धि में सहायक

एक श्रेष्ठ संगठन का यह भी लाभ है कि वह संस्था के विकास व समृद्धि में सहायक होता है । यही नही एक अन्न व सन्तुलित संगठन तकनीकी सुधारों हेतु सवार्धीक अवसर प्रदान करता है ।

(9) सृजनशीलता को प्रेरणा

ऐलन के अनुसार श्रेष्ठ का यह संगठन से स्वतन्त्र व सृजनशील विचारों को प्रोत्साहन मिलता है तथा कार्मिकों में काम करने के लिए पहल-शक्ति की भावना पनपती है ।

(10) मानोबल में बृद्धि

अच्छे संगठन के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के कार्य एवं अधिकार निश्चित से उनको अपने अस्तित्व का ज्ञान हो जाता है, जो अन्ततोगत्वा उनके मनोबल में वृद्धि । सहायक होता है ।

(11) सम्प्रेषण की सुविधा

श्रेष्ठ संगठन में सम्प्रेषण व्यवस्था प्रभावी ढंग से काम करती है तथा बाधांए नहीं आती। फलस्वरूप प्रबन्ध व्यवस्था सरल हो जाती है ।

(12) सन्तुलन की स्थापना

संगठन डाग कार्यभार, अधिकार, दायित्व तथा विभागीय प्रयासों में सन्तुलन की स्थापना की जाती है जिससे संस्था की प्रतिस्पर्धी स्थिति सुदृढ़ हो जाती है ।

(13) कर्मचारियों के आवर्तन में कमी

श्रेष्ठ संगठन में कर्मचारी सन्तुष्ट रहते हैं तथा वे उसे छोड़ कर अन्यत्र नहीं जाना चाहते । फलस्वरूप कार्मिक आवर्तन की दर में कमी आती है ।

(14) कार्यकुशलता में वृद्धि

निश्चित उद्देश्यों, कार्यो, दायित्वों, व परस्पर मधुर सम्बन्धों से कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है और अन्ततः संस्था की छवि निखरती है ।

(15) भ्रष्टाचार की समाप्ति

अच्छे संगठनों में भ्रष्ट कर्मचारी प्रवेश नही कर पाते, फलतः संगठन में भ्रष्टाचार के दुर्गुण प्रवेश नहीं कर पाते है ।

(16) नियन्त्रण में सुविधा

निर्धारित कार्यो की स्थिति में नियन्त्रण करना भी सुविधाजनक होता है ।

5.4 बुरे संगठन के दोष एवं लक्षण

पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार "कमजोर संगठन संरचना के अन्तर्गत उत्तम निष्पादन की आशा रखना व्यर्थ है, चाहे प्रबन्ध के व्यक्तिगत रूप से कितने ही श्रेष्ठ क्यों न हों ।"

एक कमजोर संगठन में निम्न दोष पाये जाते हैं

1. उपक्रम के विभिन्न विभागों में असन्तुलन
2. समन्वय का अभाव
3. औपचारिकता की अधिकता तथा लालफीताशाही का बोलबाला

4. अधिकार तथा उत्तरदायित्व में साम्य का अभाव
5. केन्द्रीयकरण की प्रवृति को बढ़ावा
6. अधिकारों के भारार्पण का अभाव
7. उपक्रम में अव्यवस्था की प्रवृत्ति
8. प्रतिभा के विकास में बाधा
9. उच्च प्रबन्धकों का नैत्यिक कार्यो में फसें रहना
10. मनोबल का निम्न स्तर
11. लक्ष्यों की प्राप्ति में असमर्थता का अनुभव
12. कर्मचारियों के पारस्परिक सम्बन्धों का अपरिभाषित रह जाना
13. सरल संगठन संरचना के स्थान पर जटिल संगठनात्मक ढांचे का निर्माण
14. निर्णय लेने में अधिक समय तथा निर्णयों की गुणवत्ता में गिरावट,
15. अनेक क्रियाओं की पुनरावृत्ति तथा एक ही क्रिया के सम्पादन में अनेकों कर्मचारियों तट प्रबन्धकों का प्रयत्नशील रहना ।

उपयुक्त दोषों में से अनेक दोष संगठन के न होकर उसके गलत उपयोग के हैं । इसलिए कुश संगठन से ही ये समस्त दोष समाप्त नहीं हो सकते, इस हेतु उनके श्रेष्ठ उपयोग को सुनिश्चित करना भी महत्वपूर्ण है ।

अकुशल संगठन के लक्षण

पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार एक अकुशल संगठन की पहचान निम्न लक्षणों से की जा सकती है :

1. एक अकुशल संगठन का प्रमुख लक्षण है प्रबन्धकीय के स्तरों में वृद्धि । प्रबन्ध के स्तरों में वृद्धि के फलस्वरूप उद्देश्यों में संभ्रान्त की स्थिति उत्पन्न होती है । इस प्रकार के संगठन में समन्वयकों, "सहायकों" तथा त्वरित रूप से कार्य निपटाने के लिए विशेष अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है । इन अधिकारियो का स्वयं का कार्यक्षेत्र अस्पष्ट होता है तक इन से यह आशा की जाती है कि वे अपने उच्चाधिकारियों के काम के निपटारे में सहायता करेंगे तथा दिन-प्रतिदिन की क्रियाओं से छुटकारा दिलाकर उच्च प्रबन्धकीय कार्यो के लिए अधिक समय निकाल पाने में सहायक होंगे ।
2. अकुशलसंगठन का दूसरा लक्षण है औपचारिकता में बढोतरी तथा संगठन संरचना में दिखाई गई वाहिकाओं के माध्यम से ही कार्य सम्पादन करने की प्रवृति का पाया जाना।
3. **प्रबन्धकों की आयु संरचना संतुलन पर ध्यान न देना - संगठन** में प्रबन्धकों की आयु सन्तुलन पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए । युवा तथा वृद्ध आयु वर्ग के व्यक्तियों का होना आवश्यक है । अनुभवी प्रबन्धक जहां एक ओर मार्गदर्शन प्रदान करते हैं वहाँ युवा प्रबन्धकों की पदोन्नति के मार्ग को भी प्रशस्त करते हैं। युवा प्रबन्धकों के माध्यम से संगठन में नये रक्त का संचार होता है तथा उपक्रम निरन्तरता में बनी रहती है ।

जिस प्रकार किसी रोग की पहिचान डाक्टर रोग के लक्ष्यों से कर निदान हैं । उसी प्रकार अकुशलसंगठन के लक्षण, संगठन की रुग्णावस्था के सूचक हैं जिन्हें पहिचान समय रहते उचित कदम उठाने की आवश्यकता है ।

5.5 संगठन प्रकिया

किसी भी उपक्रम हेतु संगठन संरचना का निर्माण करने के लिए जो उठाये जाते हैं, वे निम्न प्रकार हैं :

(1) कार्यो को परिभाषित करना

सर्वप्रथम संस्था द्वारा किए जाने वाले समस्त कार्यो को परिभाषित किया है । कार्यो को परिभाषित करते समय संस्था के उद्देश्यों को ध्यान में रखना आवश्यक होता । प्रत्येक कार्य को उपकार्यो में विभाजित किया जाता है ताकि कि उसे कर्मचारियों में बांटा जा सके।

(2) क्रियाओं को श्रेणीबद्ध करना

समान प्रकृति अथवा सम्बन्धित क्रियाओं को श्रेणीवद्ध किया जाता है । क्रियाओ को श्रेणीबद्ध करने से विभागों तथा उपविभागों का निर्माण होता है । श्रेणीबद्ध करने के लिए संस्था के उद्देश्यों, ग्राहकों की प्रकृति, भौगोलिक क्षेत्र, तथा उत्पादन विधि को आधार बनाया जाता है ।

(3) कर्मचारियों के मध्य कार्य का विभाजन

क्रियाओं को श्रेणीबद्ध करने के उपरान्त अगला कदम है कार्यो का के मध्य विभाजन करना । कार्य विभाजन में कर्मचारियों की रूचि, शारीरिक क्षमता, शैक्षणिक मान्यता, कार्य अनुभव आदि को ध्यान में रखना आवश्यक होता है ।

(4) अधिकारों का हस्तान्तरण

कर्मचारियों के मध्य कार्य विवरण द्वारा कार्य सम्पादन का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाता है । उत्तरदायित्वों की पूर्ति के लिए आवश्यक अधिकार भी कर्मचारियों को सौंपे जाने चाहिए ।

(5) समन्वय

संगठन संरचना की अन्तिम प्रक्रिया है विभिन्न विभागों के बीच समन्वय करना । ऐसा करना आवश्यक है ताकि उपक्रम के समस्त विभाग एकजुट होकर संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति में प्रयत्नशील हो सकें । विभिन्न विभागों के बीच सम्बन्धों को परिभाषित करना ही संगठन प्रक्रिया की अन्तिम कड़ी होती है ।

कुन्ट्ज तना ओ'डोनेल के उानुसार संगठन प्रक्रिया में निम्नलिखित प्रमुख चरण है :

(i) उपक्रम के उद्देश्यों का निर्धारण ।

(ii) व्युत्पन्न उद्देश्यों, नीतियों तथा योजनाऔ का निर्धारण ।

(iii) उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु क्रियाओं को परिभाषित करना तथा उनका वर्गीकरण ।

(iv) क्रियाओं को उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक साधनों से सम्बद्ध करना ताकि साधनों का अधिकतम उपयोग हो सके ।

(v) क्रियाओं की प्रत्येक श्रेणी का उत्तरदायित्व प्रबन्धकों को सौंपना तथा उन्हें उपयुक्त अधिकार प्रदान करना ।

(vi) क्रियाओं की श्रेणियों का पारस्परिक गठ-बन्धन । इस प्रकार का गठबन्धन समतल तथा लम्बवत हो सकता है । यह गठ-बन्धन अधिकार सम्बन्धों तथा सूचना पद्धति पर आधारित होता है ।

5.6 संगठन के सिद्धान्त

संगठन संरचना के ज्ञान के क्रमिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि संगठन के सर्वमान्य सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जा सके । 'सिद्धान्त' से हमारा प्रयोजन उन मूलभूत घटकों से है जिनके प्रयोग से संगठन संरचना अधिक प्रभावोत्पादक बन पाती है तथा दूसरी ओर उन घटकों की कमी प्रबन्ध की कार्यशीलता को कम कर देते हैं । यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि उक्त कसौटी के अजगर अभी तक संगठन के सर्वमान्य सिद्धान्तों का निरूपण नहीं हो पाया है ।

एफ.डब्ल्यू टेलर तथा हेनरी फेयोल ने संगठन के सिद्धान्तों के प्रतिपादन में पहल की थी । लेकिन इस क्षेत्र में सर्वाधिक योगदान **कर्नल लिण्डाल उर्विक** का माना जाता है । सर्वप्रथम सन 1928 में उर्विक ने संगठन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया । उनके ये सिद्धान्त (औधोगिक प्रशासन का शब्द कोष)नामक पुस्तक में छपे हैं । उर्विक की विचारधारा अन्य लेखकों एवं चिन्तकों जैसे सूने तथा रैले, ग्रेकुनाज से काफी प्रभावित हुई है । उर्विक ने अपने पूर्व प्रतिपादित सिद्धान्तो में समय-समय पर संशोधन एवं परिवर्तन किया हैं । उनके द्वारा प्रतिपादित संगठन के प्रमुख सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं :

(1) उद्देश्यों का सिद्धान्त

संगठन के प्रत्येक भाग का स्पष्ट उद्देश्य होना चाहिए । संगठन संरचना इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु की जाती है । उद्देश्य साध्य है और उन्हें प्राप्त करने के लिए संगठन माध्यम का कार्य करता हैं । संगठन में कार्यरत व्यक्ति को संगठन के उद्देश्यों से अर्नाभेज्ञ है तो सम्भव है कि वे एक दिशा में न चलें और संगठन की शक्ति क्षीण होती चली जाये । उद्देश्यों की स्पष्टता उन्हे कार्य की सही दिशा प्रदान करती है ।

(2) विशिष्टीकरण का सिद्धान्त

अच्छे संगठन में व्यक्ति की इच्छा एवं क्षमता के अनुसार एक समय में एक ही कार्य दिया जाता है । जब एक व्यक्ति को एक ही कार्य पूरा करने का दायित्व सौंपा जाता है तो वह उस कार्य को लगन से सम्पादित करता है एवं निश्चिन्त होकर वह उस कार्य में दक्षता प्राप्त करता है । विशिष्टीकरण का अर्थ है व्यक्ति को उसकी कार्य क्षमता, इच्छा, अनुभव एवं योग्यता के अनुरूप कार्य सौंपा जाना चाहिये ।

(3) समन्वय का सिद्धान्त

संगठन संरचना का उद्देश्य ही उपक्रम के विभिन्न विभागों द्वारा जाने वाले कार्य में समन्वय स्थापित करना है । ऐसा करने से प्रयत्नों में एकता आ पाएगी ।

(4) अधिकार का सिद्धान्त!

साधारणतया सर्वोच्च अधिकार किसी एक स्तर पर केन्द्रित रहते हैं संस्था का कार्य विभिन्न इकाइयों एवं क्रियाओं में विभाजित होने के कारण हर स्तर पर अधिकार दिया जाना

आवश्यक है । क्योंकि जब किसी व्यक्ति को कुछ दायित्व सौंपे गये हैं तो उसे उन दायित्वों का निर्वाह करने लिए आवश्यक अधिकार भी दिये जाने चाहिए ।

(5) उत्तरदायित्व का सिद्धान्त

अधिकार एवं उत्तरदायित्व एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । इस सिद्धान्त अनुसार अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा किये गये कार्यो के लिए उच्च अधिकारियों का पूर्ण दायित्व है ।

(6) व्याख्या का सिद्धान्त

प्रत्येक पदाधिकारी एवं कर्मचारी के मध्य कर्तव्य, दायित्व अधिकार तथा अन्य अधिकारियों के साथ उनके सम्बन्धो की स्पष्ट व्याख्या की जानी चाहिए । ऐसी व्याख्या लिखित में होनी चाहिए और सूचनार्थ उसे प्रकाशित भी करा देना चाहिए ।

(7) अनुरूपता का सिद्धान्त

उत्तरदायित्व के अनुरूप ही अधिकार प्रदान किए जाने चाहिये । बिना के उत्तरदायित्व का निर्वाह करना सम्भव नहीं है और दूसरी ओर, उत्तरदायित्व की अनुपस्थिति अधिकारों का कोई प्रयोजन नहीं है ।

(8) नियन्त्रण का क्षेत्र

नियन्त्रण के क्षेत्र से आशय एक अधिकारी द्वारा विभिन्न अधीनस्थों की क्रियाओं पर नियन्त्रण बनाये रखने से है । अधिकारी कितने अधिनस्थों की क्रियाओं पर नियन्त्रण बनाये रख सकता है, यह उसकी योग्यता पर निर्भर करता है । सामान्यता: इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी अधिकारी को पांच या अधिकतम छ: अधीनस्थों के कार्यो का पर्यवेक्षण करना चाहिए ।

(9) सन्तुलन का सिद्धान्त

संगठन की विभिन्न इकाइयों में संतुलन रखा जाना चाहिए । इस सिद्धान्त के अनुसार, संगठन संरचना में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि एक इकाई बहुत बड़ी और दूसरी इकाई बहुत छोटी न रह जाये । जैसे मानव शरीर के विभिन्न अवयवों के बीच एक विशिष्ट अनुपात की होना आवश्यक है । उसी प्रकार संगठन इकाईयों में भी सन्तुलन स्थापित किया जाना चाहिये ।

(10) निरंतरता का सिद्धान्त

संगठन एक निरन्तर जारी रहने वाले प्रक्रिया होती है इसलिए किसी भी उपक्रम की संगठन संरचना में निरंतर सुधार के प्रयास किए जाने चाहिये ।

उर्विक द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त सार्वभौमिक माने जाते हैं । कुछ विद्वान इन्हें परम्परागत संगठन के सिद्धान्त की भी संज्ञा प्रदान करते हैं ।

कून्ट्ज और औ'डोनेल ने अपनी पुस्तक में निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है:-

1. उद्देश्य की एकता का सिद्धान्त ।

2. कुशलता का सिद्धान्त
(उपकमों के उद्देश्यों की प्राप्ति न्यूनतम व्यय पर प्राप्त करना कुशलता का परिचायक माना जाता है ।)

3. नियन्त्रण के क्षेत्र का सिद्धान्त ।

4. पदाधिकारियों के सम्पर्क का सिद्धान्त ।

5. दायित्व की पूर्णता का सिद्धान्त ।

6. अधिकार एवं दायित्व की क्षमता का सिद्धान्त ।

7. निर्देश की एकता का सिद्धान्त का सिद्धान्त ।

8. अधिकार के भारांपण का सिद्धान्त

9. अधिकार- स्तर का सिद्धान्त

   किसी भी प्रबन्ध अधिकारी को अपने स्तर के विषयों पर, जो अधिकारों के भारार्पण से निर्धारित किये जाते हैं, स्वयं ही निर्णय लेने चाहिए । इन विषयों को उसे अपने उच्चाधिकारियो के निर्णय हेतु प्रेषित नहीं करना चाहिए ।

10. कार्य के विभाजन का सिद्धान्त ।

11. प्रकर्यो की व्याख्या का सिद्धान्त ।

12. सन्तुलन का सिद्धान्त ।

13. अलगाव का सिद्धान्त ।

14. लोच का सिद्धान्त, एवं

15. नेतृत्व को सहज बनाने का सिद्धान्त ।

5.7 संगठन संरचना

संगठन संरचना से हमारा आशय किसी उपक्रम की समग्र संगठन व्यवस्था का रूप निर्धारित करने से है । विलियम एच. न्यूमैन के अनुसार, किसी उपक्रम के संगठनात्मक कलेवर का निर्धारण करते समय अनेक महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखना चाहिए जैसे-अधिकारों की सीमा, विशिष्टीकरण की दशा, उपलब्ध कर्मचारियों की योग्यता, संगठन संरचना की लागत, प्रबन्धकीय संदेशवाहन की विधि आदि । कून्ट्ज तथा ओ'डोनेल के अनुसार, संगठन संरचना के अन्तर्गत विभिन्न व्यक्तियों की उपक्रम में संशय भूमिका की स्थापना करना होता है । ऐसा करने के लिए समग्र उपक्रम एवं उसके भागा/उपभागों के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सम्पादित की जाने वाली समस्त क्रियाओं की गणना करना, उन क्रियाओं का वर्गीकरण करना, वर्गीकृत क्रियाओं को प्रबन्धकों को सौपना, प्रबन्धकों के अधिकारों का भारार्पण, क्रियाओं के समूह को समन्वित करना तथा अनौपचारिक रूप से समतलीय तथा शीर्षवृत सम्बन्धों की स्थापना करना आवश्यक होता है, इरा संगठन संरचना को 'प्रबन्धकीय अधिकारों के सम्बन्धों' के नाम से भी जाना जाता है ।

संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले घटक ।

पीटर एफ.ड्रकर के मतानुसार संगठन-संरचना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है एवं त्रुटिपूर्ण संरचना से संस्था का विनाश भी हो सकता हैं । किसी उपक्रम की संगठन संरचना को प्रभावित वाले घटक निम्नलिखित है :

(1) संगठन के उद्देश्य

आर.सी.डेविस के अनुसार संगठन संरचना का निर्धारक घटक है संस्था के उद्देश्य ।" संगठन संरचना स्वयं में उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक साधन है, अतएव संगठन का निर्माण करते समय संस्था के उद्देश्यों को ध्यान में रखना चाहिए ।

(2) संगठन का आकार

संगठन का आकार भी संरचना को प्रभावित करता है । यदि संगठन आकार छोटा है तो केन्द्रीय व्यवस्था अपनाई जा सकती है और बडा आकार होने की दशा में अधिकारों का प्रत्यायोजन या केन्द्रीयकरण किया जा सकता है ।

(3) कार्यो की प्रकृति

प्रत्येक संस्था की स्थापना कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्यो को सम्पन्न करने के लिए की जाती है, अत: कार्यो कि प्रकृति का भी संगठन संरचना पर प्रभाव पडता है । संरचना कार्य के अनुरूप होनी चाहिए ।

(4) प्रबन्धकीय व्यूह रचना

प्रबन्धकों की रणनीति का भी संगठन संरचना पर प्रभाव पडता है, अत: संगठन संरचना उनकी व्यूह-रचना के अनुकूल होनी चाहिए ।

(5) प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति या बाजार की दशा

प्रतिस्पर्धा की स्थिति को ध्यान में रखकर संगठन संरचना का निर्माण करना चाहिए क्योंकि के प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से संरचना विस्तृत या संकुचित हो सकती है ।

(6) व्यापारिक क्षेत्र

यदि व्यवसाय का क्षेत्र स्थानीय सीमाओं तक ही विस्तृत है तो संगठन का आकार छोटा और इसके विपरीत यदि व्यवसाय देश व विदेश की सीमाओं - विस्तृत है तो संरचना अधिक व्यापक व विस्तृत होगी ।

(7) वातावरण या पर्यावरण

देश के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक वातावरण का भी संगठन संरचना पर प्रभावी पढ़ता है । प्रभावी संरचना वह कहलाएगी जो संगठन को उस पर्यावरण के अनुरूप ढाल सके ।

(8) प्रबन्धकों की योग्यता

प्रबन्धकों की योग्यता पर भी संगठन संरचना निर्भर करती है । यदि प्रबन्धक योग्य होंगे तो उन्हें अन्य लोगों से परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी । वे रेखा संगठन का निर्माण करके अपने व्यवसाय का स्वयं संचालन कर सकते है । परन्तु पूर्णत: परिपक्व न होने की दशा में उन्हें विशिष्ट विशेषज्ञों का परामर्श लेना पड़ेगा एवं इरा हेतु किसी उ उपर्युक्त संगठन प्रारूप का चयन करना पड़ेगा ।

(9) पद-समता

इससे आशय यह है समान कार्य करने वाले व्यक्तियों के पद एवं अधिकारों मे समता बनी रहनी चाहिए जिससे परस्पर सम्बन्धों में कटुता पैदा न हो और सम्बन्ध मधुर बने रहे ।

(10) नियन्त्रण का विस्तार

संगठन संरचना का निर्माण करते समय नियन्त्रण के विस्तार का भी ध्यान रखना चाहिए ताकि प्रत्येक अधिकारी सुविधापूर्वक अपने अधीनस्थों की क्रियाओं का निरीक्षण व पर्यवेक्षण कर सके ।

(11) विभागीयकरण

विभागीयकरण के अनेक आधार हो सकते है, जैसे- वस्तु, ग्राहक, भौगोलिक क्षेत्र, प्रक्रिया, आदि और प्रत्येक आधार प्रत्यक्ष रूप से संगठन संरचना को प्रभावित करता है ।

(12) कर्मचारियों का मनोविज्ञान

संगठन संरचना पर इस बात का भी प्रभाव पड़ता है कि संस्था के कर्मचारियों का मनोविज्ञान कैसा है? यदि उनकी समस्त सामाजिक, आर्थिक, व मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हो रही है तो उनमें आदर, अपनत्व, स्वामिभक्ति तथा सहयोग की भावना जागृत रहेगी अन्यथा असन्तुष्ट होने की दशा में संगठन संरचना कुप्रभावित होगी ।

5.8 औपचारिक व अनौपचारिक संगठन

औपचारिक संगठन

आशय -जब किसी पर्यटन संस्था में काम करने वाले व्यक्तियों के कार्यक्षेत्र तथा उनकी स्थिति को निश्चित करके उनके कर्त्तव्यों, अधिकारों, दायित्व व पारस्परिक सम्बन्धो की स्पष्ट व्याख्या कर दी जाए, तो सम्बन्धों के ऐसे कलेवर को 'औपचारिक संगठन' कहते है । औपचारिक संगठन की कुछ प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार हैं :

1. लुईस ए. ऐलन - "औपचारिक संगठन सुपरिभाषित कार्यों की एक पद्धति है, प्रत्येक कार्यवश में, अधिकार, उत्तरदायित्व तथा हिसाब-देयता का नियत मापदण्ड होता है तथा सम्पूर्ण संगठन में ऐसी चेतना व्याप्त रहती है कि उपक्रम के सभी लोग अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक साथ मिलकर प्रभावशीलता के साथ काम करते हैं ।"

2. हरबर्ट साइमन- "औपचारिक संगठन में अमूर्त और बहुत कुछ स्थाई नियमों का समावेश होता है जो प्रत्येक सहभागी के व्यवहार को प्रभावित करते हैं ।"

3. रोथेलिसबर्गर तना डिक्सन - "औपचारिक संगठन से तात्पर्य मानवीय अन्तर-सम्बन्धों के ढंग से है जिसकी व्याख्या प्रणालियों, नियमों, नीतियों तथा अर्थव्यवस्था के सम्बन्धों द्वारा की जाती है ।"

4. चेस्टर आई.बर्नार्ड - "एक संगठन को उस समय औपचारिक माना जाता है जबकि दो या अधिक व्यक्तियों की क्रियाए सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए की जाती है । इस हेतु तीन बातों का होना आवश्यक है-

(i) प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के साथ सम्प्रेषण करने की स्थिति में हो,

(ii) वे काम करने के लिए तत्पर हों, और

(iii) उनके सदस्य समान हों ।"

औपचारिक संगठन के लक्षण या विषेशताए

औपचारिक संगठन की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है ।

(1) सामान्यत: उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्वैच्छिक जागरुकता के साथ स्थापित किए जाते हैं ।

(2) औपचारिक संगठन पूर्णत: व्यक्तिगत होता है ।

(3) यह आदर्श सम्बन्धों पर आधारित है ।

(4) सदस्यों के अधिकार व दायित्व स्पष्ट होते हैं ।

(5) इस प्रकार के संगठन में सत्ता का भारार्पण ऊपर से नीचे की ओर किया जाता है ।

(6) प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार व दायित्वों एवं स्थिति को प्रकट करने के लिए संगठन चार्ट व मैन्यूअल का उपयोग किया जाता है ।

(7) ऐसे संगठन नियत,प्रणालियों, नियमों ,नीतियों व पद्धतियों का प्रयोग करते हैं ।

(8) यह श्रम विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है ।

(9) कार्य का विशिष्टीकरण तथा निर्देश की एकता इनके मूल सिद्धान्त है ।

(10) इस प्रकार का संगठन अवस्थितियों को आधार बिन्दु मानकर चलता है ।

(11) इसमें सत्ता की क्रमबद्धता का कठोरता के साथ पालन किया जाता है ।

औपचारिक संगठन के प्रमुख लाभ निम्नलिखित है ।

1. **स्पष्ट, निश्चित व श्रम रहित-** चूंकि औपचारिक संगठन में प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार व दायित्व पहले से ही सुपरिभाषित होते हैं, अत: इसमें दोबारगी या के भ्रम लिए कोई स्थान नहीं रहता । प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि उसे क्या करना है, आदेश प्राप्त करना है, किसे आदेश देना है तथा वह किसके प्रति उत्तरदायी है । इससे संगठन की समस्त क्रियाओं में निश्चितता बनी रहती है ।
2. **विशिष्टीकरण-** चूंकि यह श्रम-विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है अत: विशिष्टीकरण के सभी लाभ प्राप्त होते है ।
3. **कर्मचारियों की कार्य-कुशलता का मूल्यांकन-**अधिकार एवं दायित्व सुपरिभाषित होने के कारण कर्मचारियों के कार्य तथा उनकी कार्यकुशलता का मूल्यांकन आसानी से किया जा सकता है।
4. **पदोनति-**उक्त स्तर सें निम्न स्तर तक की सोपान-श्रृखला पदोन्नति के मार्ग को सुस्पष्ट करती है।
5. **संगठन के उद्धेश्यों की प्राप्ति में सहायक-** औपचारिक संगठन संस्थागत उद्देश्यों को प्राप्त करने में बहुत सहायक होते हैं क्योंकि सभी बातें पूर्व नियोजित व स्पष्ट होती हैं ।
6. **समन्वयन में सुविधा-**सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या के कारण विभिन्न क्रियाओं व व्यक्तियों के मध्य समन्वय स्थापित करने में सुविधा होती है ।
7. **पक्षपात रहित-** सभी कार्य नियमानुसार व नियत सिद्धान्तों के अनुसार किए जाते है तथा कहीं भी पक्षपात नहीं होता है ।
8. **पद्धति का महत्व-** इसमें व्यक्ति अवशेष का महत्व समाप्त हो जाता तथा उसके स्थान पर विशिष्ट पद्धति या प्रणाली का महत्व होता है ।
9. **मधुर सम्बन्ध -** अधिकारों एवं दायित्वों के स्पष्ट विभाजन से मतभेद होने की आशंका नहीं रहती तथा सभी में मधुर सम्बन्ध बने रहते हैं ।

10. अन्य लाभ -

अ श्रम-विभाजन से सुरक्षा की भावना बनी रहती है ।

ब. लालफीताशाही समाप्त हो जाती है ।

स. सभी साधनों का श्रेष्ठतम व हर सम्भव उपयोग होता है ।

द. कोई भी व्यक्ति अपनी सफलता का दोष दूसरों पर नहीं डाल सकता ।

य. टालमटोल की भावना समाप्त हो जाती है ।

र. यह तर्क-संगत व्यवस्थित तथा आदेशात्मक होता है ।

औपचारिक संगठन के प्रमुख दोष निम्नांकित है :

1. मानवीय भावनाओं की अनदेखी- चूंकि यह अव्यक्तिगत संगठन होता है अत: इसमें मानवीय भावनाओं को ध्यान में नहीं रखा जाता । वास्तव में, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और बिना सामाजिक सम्बन्धों के वह जीवित नहीं रह सकता ।

2. अव्यावहारिक- इसमें यान्त्रिक रूप से काम किया जाता है । व्यवहार में ऐसे आदर्श सम्बन्ध देखने को नहीं मिलते ।

3. पहलपन का अभाव- इसमें कर्मचारियों की पहल शक्ति क्षीण हो जाती है ।

4. कठोरता-चूंकि औपचारिक संगठन में सभी काम निर्धारित विधियों, नियमों व पद्धतियों के अनुसार किए जाते है, अत: कार्य-निष्पादन में लोच नहीं रहती वरन कठोरता रहती है ।

5. अधिकरों का दुरूपयोग- इसमें अधिकारों के भार्रापण पर बल दिया जाता है, अत: अधिकारों के दुरूपयोग की आशंका बनी रहती है ।

6. अन्य दोष :

(i) यह नौकरशाही को जन्म देता है ।

(ii) यह समन्वय व नियंत्रण की समस्या को जन्म देता है ।

(iii) अनौपचारिक सम्बन्धों के विकास एवं संवहन में बाधा पैदा होती है ।

(iv) कार्मिक नियमों व आदेशों के गुलाम बन जाते हैं तथा सामाजिक संगठन की समान्य मान्यताओं व भावनाओं को भूल जाते हैं ।

(v) अत्यधिक नियमों व पद्धतियों के कारण लालफीताशाही पनपती है ।

(vi) लोगों का दृष्टिकोण भी संकुचित हो जाता है ।

(vii) अधिकारी व अधीनस्थ के सम्बन्ध तनावपूर्ण होने की आशंका बनी रहती है ।

औपचारिक संगठन

आशय एवं परिभाषाएं- यदि कर्मचारियों के पारस्परिक संम्बन्धो में किसी प्रकार की औपचारिकता नहीं बरती जाती तो उसे अनौपचारिक संगठन कहते हैं । संगठन उस दशा में अनौपचारिक कहा जाता है जब अन्र्तवैयक्तिक सम्बन्धों की स्थापना संयुक्त उद्देश्य के लिए अनजाने में ही हो जाती है । अनौपचारिक संगठन वह सामाजिक ढाँचा है जिसका वैयक्तिक आवश्कताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है । अनौपचारिक संगठन की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार है :

1. **कीथ डेविस-** “अनौपचारिक संगठन व्यक्तिगत एंव सामाजिक संगठन का ऐसा जाल है जिते स्थापितकरने के लिए किसी औपचारिक संगठन की स्थापना की आवश्यकता नहीं पड़ती ।
2. **जोसेफ एल. मैसी-** "औपचारिक संगठन मानवीय अन्तरक्रियाओं का वह समूह है जो स्वत: एवं स्वाभाविक ढंग से दीर्धकालीन अवधि तक साथ रहने से पैदा हो है ।"
3. **चेस्टर आई. बर्नार्ड-** “औपचारिक संगठन एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति निरन्तर एक दूसरे के सम्पर्क में रहते है किन्तु उनके सम्बन्धो का नियंत्रण औपचारिक संगठन द्वारा नहीं किया जाता वरन् वे एक दूसरे से निरन्तर सम्पर्क में रहते है ।"

औपचारिक संगठन के लक्षण या विशेषताएं

(1) अनौपचारिक संगठन में निर्णय स्वत: होते हैं ।

(2) ये प्राकृतिक व्यक्तिगत, व सामामाजिक सम्बन्धो पर आधारित होते है ।

(3) ऐसे संगठन का निर्माण व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है जैसे- ।

(अ)सामाजिक सन्तुष्टि, (ब)सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना। (स)सदस्यों के मध्य संवहन व्यवस्था बनाए रखना, तथा (द)सामाजिक नियन्त्रण । की व्यवस्था हेतु ।

(4) औपचारिक संगठन को संगठन चार्ट द्वारा प्रदर्शित नहीं किया जाता ।

(5) ये औपचारिक संगठन के पूरक होते हैं ।

(6) ये प्रबन्ध के सभी स्तरों पर पाए जाते हैं ।

(7) अनौपचारिक संगठन सम्पूर्ण संगठन का आन्तरिक भाग है ।

(8) ये पदों की क्रमबद्धता से मुक्त होते हैं ।

(9) इनके अपने नियम, प्रणालियां पद्धतियाँ व परम्पराएँ होती हैं

औपचारिक संगठन के लाभ ।

(1) ये समूह के सदस्यों को सामाजिक सन्तुष्टि प्रदान करते हैं ।

(2) सदस्यगण इससे मैत्री-भावना अन्य व्यक्तियों से मान्यता, सर्वयोग ,सुरक्षा तथा

(3) आत्म-सम्मान की भावनाओं की संतुष्टि करते हैं ।

(4) ये औपचारिक संगठन की दुर्बलताओं को दूर करते हैं ।

(5) इसमें कर्मचारियों के पारस्परिक सम्बन्ध सुदृढ़ होते है तथा पारस्परिक समझ का सृजन होता है ।

(6) यह मानवीय व्यवहार पर सामाजिक नियन्त्रण स्थापित करने प्रभावी एजेन्सी है ।

(7) ये प्रभावी सम्प्रेषण के श्रेष्ठ साधन है ।

(8) ये अधिक कार्य हेतु अभिप्रेरण प्रदान करते हैं ।

(9) ऐसे संगठन प्रबन्धकीय योग्यता की कमियों की पूर्ति करने सहायक होते हैं ।

(10) संगठन के सदस्यों का मनोबल सदैव ऊँचा रहता है ।

(11) ये प्रभावी समन्वय स्थापित करने में सहायक होते हैं ।

(12) इनमें ऊंच बीच, प्रदर्शन तथा भेदभाव का अभाव रहता है ।

(13) इनके द्‌वारा योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन आसान हो जाता है ।

(14) ये कर्मचारियों में मधुर सम्बन्धो की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं ।

अनौपचारिक संगठन के दोष

(1) ऐसे संगठन भीड़-प्रवृत्ति के अनुरूप कार्य करते हैं ।

(2) ये अफवाहे फैलाते हैं जिससे लोगों में अनावश्यक भ्रम पैदा होता है ।

(3) ये परिवर्तन का विरोध करते हैं ।

(4) ऐसे संगठन कभी-कभी विनाशकारी रूप धारण कर लेते है ।

(5) ये अकुशल श्रमिकों को संरक्षण देते हैं ।

(6) इनमें उत्तरदायित्व का निर्धारण करना कठिन होता है ।

(7) ये अस्थाई एवं अल्प आयु वाले होते हैं ।

5.9 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि संगठन का पर्यटन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है । अच्छे संगठन के फलस्वरूप प्रशासन व प्रबन्ध की सुगमता, विशिष्टीकरण को बढावा, विकास व उत्पादकता को बढावा, रचनात्मक विचारधारा को प्रोत्साहन, सुविधाजनक समन्वय आदि लाभों को सम्मिलित किया जाता है । संगठन बनाते समय सभी महत्वपूर्ण एवं आवश्यक बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए यदि संगठन अच्छा नही है तो उसके दुष्प्रभाव पर्यटन संगठन को लाभ कमाने में बाधा उत्पन्न कर सकते है ।

संगठन के सिद्धान्तों का अवलोकन किया जाना चाहिए इनमें प्रमुख हैं - उद्देश्य का सिद्धान्त, विशिष्टीकरण का सिद्धान्त, समन्वय का सिद्धान्त, अधिकारों का सिद्धान्त, उत्तरदायित्व का सिद्धान्त, व्याख्या का सिद्धान्त, अनुरूपता का सिद्धान्त, नियन्त्रण का सिद्धान्त, सन्तुलन का सिद्धान्त, निरंतरता आदि । औपचारिक संगठन को चलाने हेतु अनौपचारिक संगठन को नजरअन्दाज नहीं किया जाना चाहिए ।

5.10 अपनी प्रगति को जानने के लिए अभ्यास

1. संगठन को परिभाषित कीजिए ।

....

....

....

....

2. संगठन की प्रकिया स्पष्ट कीजिए ।

....

....

....

....

3. संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों को बताइये ।

....

....

....

....

4. पर्यटन में संगठन की उपयोगिता को स्पष्ट कीजिए ।

....

....

....

....

5. औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन से क्या आशय है? विवेचना कीजिए एवं प्रत्येक के लाभ एवं दोष बताइए ।

....

....

....

....

इकाई-6 : संगठन संरचना

ढांचा

6.1 परिचय

6.2 संगठन संरचना के तत्व/लक्षण

6.3 संगठन संरचना का अर्थ एवं परिभाषा

6.4 संगठन संरचना के निर्धारक घटक

6.5 संगठन संरचना के विभिन्न प्रारूप

6.6 संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले घटक

6.7 सारांश

6.8 अपनी प्रगति को जानने के लिये अभ्यास

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप निम्न बातों को समझने में सक्षम होंगे।

(अ) संगठन संरचना का अर्थ एवं परिभाषा ।

(ब) संगठन संरचना के तत्व एवं लक्षण ।

(स) संगठन संरचना के विभिन्न प्रारूप एवं घटक ।

(द) संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले घटक ।

(य) एक प्रबन्धक के रूप में संगठन की संरचना कर सकने में ।

6.1 परिचय

संगठन संरचना किसी भी संस्था की सफलता का एक महत्वपूर्ण घटक । इसके द्वारा संख्या की क्रियाओं, अधिकारों एवं दायित्वों के केन्द्रों एवं प्रवाह तथा कर्मचारियों आपसी सम्बन्धों को किया जाता है । इस प्रकार यह सम्पूर्ण प्रबन्ध की सफलता का केन्द्रीय आधार है। ब्रेच लिखते है कि संगठन संरचना प्रबन्ध की कार्यकुशलता का महत्वपूर्ण तत्व है, अत: पर विवेकपूर्ण का से विचार करने की आवश्यकता होती है ।"

6.2 संगठन संरचना के तत्व एवं लक्षण

1. यह संगठन के **सम्बद्धकारी सम्बन्धो** का मानचित्र है ।

2. इसका निर्धारण **प्रबन्धकीय निर्णयों** के द्वारा होता है ।

3. यह कार्य **भूमिकाओं, अधिकारों, दायित्वों एवं पारस्परिक एवं औपचारिक सम्बन्धों का निर्धारण है ।**

4. यह **कार्य विभाजन, विशिष्टीकरण** से भी सम्बन्धित है ।

5. यह संगठन व्यवहारों का एक **औपचारिक ढाँचा** है ।

6. यह व्यावसायिक क्रियाओं के निष्पादन तथा परिणामों की प्राप्ति का एक **साधन** है ।

7. यह प्रशासनिक व्यवस्था में लम्बवत, समतल एवं पार्श्विक कार्यकारी सम्बन्धो कार्य प्रवाह एवं सहायक अंगों को दर्शाती है ।

8. यह **संगठनात्मक समाकृति सरूप एवं अभिकल्प** है ।

9. **मिन्ट्बर्ग** के अनुसार इसके **पाँच** भाग हैं -

   (अ) सामरिक शीर्ष

   (ब) संचालकीय केन्द्र

   (स) मध्य पंक्ति

   (द) तकनीकी-ढाँचा तथा

   (य) सहायक कर्मचारी

10. इसे **प्रबन्धकीय सत्ता के सम्बन्ध** भी कहा जाता है ।

6.3 संगठन संरचना का अर्थ एवं परिभाषा

संगठन-संरचना से आशय किसी पर्यटन उपक्रम की समग्र संगठन-व्यवस्था का रूप अर्थात् संगठन-व्यवस्था का ढाँचा निर्धारित करने से है । जिस प्रकार किसी संस्था की नीतियाँ उन सीमाओं को निश्चित करती हैं जिनके अन्तर्गत कार्यक्रमों एवं कार्य-विधियों को निश्चित किया जाता है, ठीक उसी प्रकार संगठन-संरचना उस प्रारूप का कार्य करती है जिसके अनुसार उक्त संस्था के प्रशासनिक सम्बन्ध स्थापित एवं निश्चित किये जाते है ।

(1) **लियम एच. न्यूमैन** के **अनुसार**, "संगठन-संरचना किसी उपक्रम में सम्पूर्ण संगठनत्मक व्यवस्था से सम्बन्धित होती है ।"

(2) **ए.डक्यू विक्सबर्ग** के **अनुसार**, "संरचना व्यक्तियों तथा समूहों के मध्य विद्यमान सम्बन्धो को बिठाना है ।"

(3) **फेड लुथान्स** के अनुसार, "संगठन-संरचना से आशय संस्थात्मक व्यवहार के लिये बनाये गए ढाँचे से है" ।

(4) **ऊलबटै हेनरी एच.** के **अनुसार**, "संगठन-संरचना वह ठाँचा है जिसमें प्रबन्धकीय और परिचालनात्मक कार्य निष्पादित किये जाते है ।"

(5) **हर्ले** के **अनुसार**, "संगठन-संरचना एक फर्म की विभिन्न स्थितियों को धारित व्यक्तियों के बीच संम्बन्धो का ढाँचा है ।"

किसी उपक्रम के लिए संगठन-संरचना का उतना ही महत्व होता है जितना कि शरीर के लिए हड्डियों का । पीटर एफ.हकर के अनुसार, "संगठन-संरचना के गलत होने पर व्यवसाय की कार्यक्षमता विशेष रूप से प्रभावित होती है । यहाँ तक कि गलत संरचना व्यवसाय का विनाश भी कर देती है ।"

निष्कर्ष

उपरोक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् निष्कर्ष रूप में परिभाषा दी जा सकती है कि -"संगठन संरचना से आशय किसी संस्था की सम्पूर्ण समस्यात्मक व्यवस्था से है, जिसमें प्रबन्धकीय तक परिचालनात्मक कार्य निष्पादित किये जाते हैं ।"

6.4 संगठन संरचना के निर्धारक घटक

कुशल एवं प्रभावी संख्या के लिए संगठन-संरचना की स्वस्थता का होना नितान्त आवश्यक होता है । एक स्वस्थ संगठन-संरचना का निर्धारण करते समय निम्नलिखित घटको पर ध्यान देना चाहिए -

(1) क्रियाऔं का विभागीयकरण, समूहीकरण अथवा वर्गीकरण

किसी उपक्रम की संगठन संरचना के निर्धारण की दिशा में उठाया जाने वाला सबसे पहला कदम उसकी मूल क्रियाओं का विभागीयकरण करना है जो कि निम्न प्रकार से हो सकता है- (1)कार्यानुसार (2)विधि अनुसार (3)भूक्षेत्रानुसार (4)उत्पादन के अनुसार (5)संख्या अनुसार (6)ग्राहकों के अनुसार । विभागीकरण की उसी विधि को अपनाना चाहिए जिसमें **निम्नलिखित लाभों के मिलने की आशा हो** - (अ)समन्वय में सुविधा (ब)विशिष्टीकरण के लाभ (रा)नियन्त्रण की सुविधा (द)कर्मचारियों का विकास (य)न्यूनतम व्यय (र)स्थानीय दशाओं का तथा (ल)प्रमुख क्रियाओं पर अधिकतम ध्यान ।

जहाँ तक संभव हो, संबंधित उपक्रम के भागों, विभागों तथा उप-विभागों में मूल क्रियाओं का विभागीयकरण समान आधार पर किया जाना चाहिए । साथ ही उपक्रम के विभागीयकरण की समय-समय पर जाँच करते रहना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार सुधार करते रहना चाहिए । प्रत्येक विभाग तथा उप-विभाग के कार्यक्षेत्र की स्पष्ट रूप में व्याख्या दी जानी चाहिय । ऐसा करने से प्रभावपूर्ण नियन्त्रण स्थापित- करना सम्भव हो सकेगा ।

(2) सन्तुलन

प्रत्येक कार्य को संगठन में उसके प्राथमिक उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त महत्व देना चाहिए । संगठन के प्रत्येक तत्व को कुल संरचना के सन्दर्भ में देखना चाहिए क्योंकि किसी तत्व को अलग करके कोई भी निर्णय लेना सम्भव नहीं है । संगठन के विभिन्न तत्वों समझौता करने से सन्तुलित संगठन-संरचना की स्थापना होती है ।

(3) उत्तरदायित्व के केन्द्रो का निर्धारण

उपक्रम की मूल क्रियाओं का विभागीयकरण करने के उपरान्त उत्तरदायित्व के केन्द्रों का निर्धारण किया जाना चाहिए । इस संबंध में यह ध्यान रहे कि उत्तरदायित्व तथा अधिकार दोनों सहगामी होते हैं । उत्तरदायित्व के केन्द्रों के निर्धारण के सम्बन्ध में केन्द्रीयकरण अथवा विकेन्द्रीयकरण की नीति अपनायी जा सकती है । इस नीति के अनुसार ही उत्तरदायित्व के केन्द्रों का निर्धारण किया जा सकता है ।

(4) सुविधाजनक इकाइयों

संगठन संरचना के निर्धारण के सम्बन्ध में उठाया जाने वाला तीसरा कदम सुविधाजनक इकाइयों की स्थापना करना है । इनका संगठन करते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप में ध्यान देना चाहिये

(अ) समन्वय- उपक्रम के विभागों, उप-विभागों, कृत्यों तथा समितियों के मध्य पूर्ण समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए । उपक्रम का आकार अत्यधिक विशाल होने पर इरा कार्य के लिए समन्वय समितियों का निर्माण किया जा सकता है ।

(ब) कार्य में समानता - जहाँ तक सम्भव हो, समस्त संगठन में एक ही का से कार्य किया जाना चाहिए । इससे भेदभाव का उन्मूलन होकर कार्यो में समानता आती है।

(स) पर्याप्त ध्यान का आश्वासन-इस बात पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए कि कहीं उपक्रम का कोई विभाग उपेक्षित न रह जाये । इसके लिए पहले से ही समस्त विभागों को पर्याप्त ध्यान दिये जाने का आश्वासन प्राप्त होना चाहिए ।

(द) नियन्त्रण इकाइयाँ - उपक्रम की समस्त क्रियाओं पर आवश्यक नियन्त्रण स्थापित करने के लिए नियन्त्रण इकाइयों की स्थापना की जानी चाहिए ।

(य) विशिष्ट सुविधाओं एवं योग्यताओं का सामूहिक उपयोग - उपक्रम के सभी विभागों को लाभ पहुँचाने के लिए कुछ विशिष्ट सुविधाओं एवं योग्यताओं की की जाती है, जैसे-परिवहन की सुविधाएँ, वैधानिक सलाहकार की सेवाएँ आदि । इन विशिष्ट सुविधाओं एवं योग्यताओं का लाभ सभी विभागों को समान रूप में उपलब्ध होना चाहिए ।

(ट) सुविधाकारी इकाइयों की स्थिति- किसी उपक्रम की संगठन-संरचना में सुविधाकारी इकाइयाँ उन्हीं स्थानों पर सम्बद्ध की जानी चाहिए जहाँ से वे उपक्रम की प्रधान कार्य धारा में बिना किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न किये प्रभावी का से कार्य कर सकें, ।

(5) उच्च प्रबन्ध व्यवस्था

चूकि 'कम्पनी' अधिनियम द्वारा निर्मित एक कृत्रिम एवं अदृश्य व्यक्ति है, अत: इसकी संगठन-संरचना करते समय उच्च प्रबन्ध की व्यवस्था अवश्य की जानी चाहिए । इसके लिए योग्य एवं अनुभवी संचालक-मण्डल का गठन किया जाना चाहिए ।

(6) संरचनात्मक व्यवस्थाएँ

संरचनात्मक व्यवस्था से आशय संरचना सम्बन्धी ऐसी विधि अपनाने से है जिसके कारण सम्बन्धित विभागों एवं सुविधाकारी इकाइयों का कार्य सरलता से चलता रहे । इस हेतु आगे वर्णित पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक है । नियन्त्रण का विस्तार-नियन्त्रण का विस्तार उपयुक्त होना चाहिए । नियन्त्रण का विस्तार उन व्यक्तियों. की संख्या का सूचक है जो किसी एक पदाधिकारी के प्रति जवाबदेह हैं । उदाहरण के लिए, यदि किसी औद्योगिक उपक्रम में 5,000 कर्मचारी, 5 प्रबन्धक तक 1 प्रमुख प्रबन्धक कार्य करते हैं तो ऐसी स्थिति में मुख्य प्रबन्धक के नियन्त्रण का विस्तार 1 : 5 का होगा । संगठन में नियन्त्रण विस्तार उपयुक्त होना. चाहिए, अर्थात् निरीक्षकों एवं प्रबन्धकों पर उचित से अधिक संख्या में अधीनस्थ का भार नहीं थोपा जाना चाहिए । ध्यान रहे कि यदि कार्य सामान्य प्रकृति का हो तो नियन्त्रण का विस्तार बढाया जा सकता है । उच्चधिकारी - अधीनस्थ कर्मचारियों का अनुपात ऊँचे स्तर के पदों की दशा में 1 : 5 अथवा 1 4 तथा निम्नस्तरीय पदों की दशा में 1 : 20 अथवा 1 : 25 का हो सकता है । किसी अधिकारी को रिपोर्ट करने वाले अधिकारियों के पद समान होने

चाहिए । जिस उपक्रम में शाखाओं, कारखानों अथवा क्षेत्रीय कार्यालयों की संख्या अधिक हो, वहाँ उनके कार्यो का समानान्तर का से विभागीयकरण कर देना चाहिए ।

(7) निरन्तरता

अन्त में, संगठन-संरचना के निर्धारण के सम्बन्ध में निरन्तरता के सिद्धान्त का भी पालन किया जाना चाहिए । संगठन-संरचना ऐसी होनी चाहिए कि वह न केवल उपक्रम के तात्कालिक उद्देश्यों को पूरा करने में समर्थ हो अपितु निकट भविष्य के उद्देश्यों को भी पूरा करने में समर्थ हो ।

6.5 संगठन-संरचना के विभिन्न प्रारूप

संगठन के प्रारूप की आवश्यकता

संगठन प्रबन्ध का ढाँचा होता है जो कि उपक्रम में संलग्न व्यक्तियों के कार्यो एवं उनके सम्बन्धों की व्याख्या करता है । बिना उपयुक्त संगठन के उपक्रम एक मृतक व्यक्ति के समान होता है । जैसे-जैसे उपक्रम का आकार बस्ता जाता है, उसके संगठन की समस्या जबकि होती जाती है । उदाहरण के लिए, एक बडे आकार वाले उपक्रम में जहाँ हजारों व्यक्ति कार्य करते हैं, वहाँ यह समस्या उठ खडी होती है कि उसमें कार्य करने वाले कर्मचारियों के मध्य अधिकारों, कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का विभाजन किस प्रकार से किया जाये ताकि उपक्रम की कार्य-विधियों में पूर्ण सामंजस्य बना रहे एवं वह अपनी पूर्ण कुशलता के साथ कार्य करने में समर्थ हो सके । इस गंभीर समस्याओ का समाधान करने के लिए संगठन के विभिन्न प्रारूपों की आवश्यकता प्रतीत हु ई क्योंकि एक गे प्रकार का संगठन उपर्युक्त सभी उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकता । किस उपक्रम में संगठन का कौन-सा प्रारूप उपयुक्त होगा, यह उपक्रम की प्रकृति, आकार, क्षेत्र, उत्पाद की किस्म तथा कार्य-प्रणाली पर निर्भर करेगा ।

संगठन के विभिन्न प्रारूप

फंक के अनुसार - "किसी उपक्रम का आकार बढ जाने के कारण यदि किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा उसकी क्रियाओं का निरीक्षण करना कठिन हो जाये तो ऐसे व्यक्ति को अपना कुछ कार्य अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को सौंप देना चाहिए । ऐसी स्थिति में अन्य व्यक्ति उच्च सौंपे गये कार्य के प्रति उत्तरदायी हो जायेंगे ।" कार्य सौंपे जाने की निम्न तीन प्रमुख विधियाँ हैं - (1)रेखा, (2)कर्मचारी रेखा एवं कर्मचारी)तथा (3)क्रियात्मक । किन्तु आजकल संगठन के निम्न प्रारूप का प्रचलन है

(1) रेखा अथवा सैनिक संगठन,

(2) रेखा एवं कर्मचारी संगठन,

(3) क्रियात्मक संगठन,

(4) समिति संगठन,

(5) अन्तर इकाई प्रशासन संगठन,

(6) पार्श्व संगठन, एवं

(7) आब्यूह अथवा संयोजन संगठन ।

I रेखा संगठन

आशय एवं परिभाषा

यह संगठन की सबसे सरल एवं प्राचीन पद्धति है जिसमें ऊपर से लेकर नीचे तक रेखा जैसी स्थिति बन जाती है और संस्था के सर्वोच्च अधिकारी से लेकर निम्नतम अतिकाय तक मिलकर एक लम्बवत श्रृंखला के रूप में दिखलायी पड़ते हैं । कम्पनी के मालिकों से लेकर कन्धों, फोरमैन व श्रमिक स्तर तक सीधी रेखा का दायित्व एवं नियन्त्रण पाया जाता है । इसमें कार्यों का विभाजन कई स्वतन्त्र विभागों में किया जाता है । हरा पद्धति को कई नामों से पुकारा जाता है, जैसे - सैनिक संगठन, सोपानीय संगठन, विभागीय संगठन, लम्बवत् संगठन, आदि । इसके विभिन्न नाम होते हुए भी इनकी विशेषताएँ लगभग समान हैं ।

रेखा संगठन से आशय ऐसे संगठन से है जिसमें अधिकारों का प्रवाह उच्च-स्तर से निम्न-स्तर की तरफ तथा उत्तरदायित्वों का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर रेखाबद्ध रूप से होता है । इसमें शीर्ष-स्तर से नीचे तक एक रेखा बनती है जिसमें अधिकारों और दायित्वों की काडियाँ परस्पर एक-दूसरे से जुडी रहती हैं । **सी.बी गोइंग** के अनुसार, "रेखा संगठन में अधिकारों, और दायित्वों की रेखाएँ सम्पूर्ण संस्था में सतत रूप रो नीचे की ओर चलती हैं, जैसे पत्तियों की शिखाएँ तृप्त के पास एकत्रित होती हैं, अनेक पत्तियों के वृत्त हटनी मिलते हैं, अनेक टहनियाँ शाखाओं से मिलती है तथा कई शाखाएँ तने से मिलती हैं और शिखाएँ, वृत्त, टहनियॉ, शाखाएँ और तने को सामाध्रत पेड़ के जीवन एवं विकास में सभी कार्य करने पड़ते है ।" **मैक्फारलैण्ड** के अनुसार, "रेखा संगठन में प्रत्यक्ष शीर्ष रेखा सम्बन्ध होते है जो प्रत्येक स्तर की स्थिति एवं कार्यो से ऊपर तथा नीचे के स्तर से सम्बन्ध स्थापित करते हैं ।" **ऐलन** के अनुसार, "रेखा आदेश की वह श्रृंखला है जो संचालक-मण्डल के विभिन्न प्रत्यायोजनों एवं पुन: प्रत्यायोजन द्वारा अधिकारों एवं दायित्वों को उस बिन्दु तक पहुँचाती है जहाँ पर कम्पनी की प्राथमिक क्रियाओं को पूरा किया जाता है ।" इसमें सर्वोच्च अधिकारी जनरल मैनेजर होता । वह अपना आदेश विभागीय मैनेजर को देता है, विभागीय मैनेजर सुपरिण्टेण्डेण्ट को आदेश देता सुपरिण्टेण्डेण्ट फोरमैन को ओर फोरमैन श्रमिकों को आदेश देता है । इरा प्रकार अधिकार एवं दायित्व 'रेखा सीधे कम में ही चलती है । इसी कारण इसे रेखा संगठन कहते हैं । प्रत्येक व्यक्ति अपने नीचे के समस्त व्यक्तियों के ऊपर होता है तथा अपने से ऊपर के अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता ध्यान रहे, इसमें कोई भी अधिकारी समान स्तर पर कार्यरत किसी अधिकारी से न तो कोई अधिकार प्राप्त करता है और न उसे अधिकार देता है ।

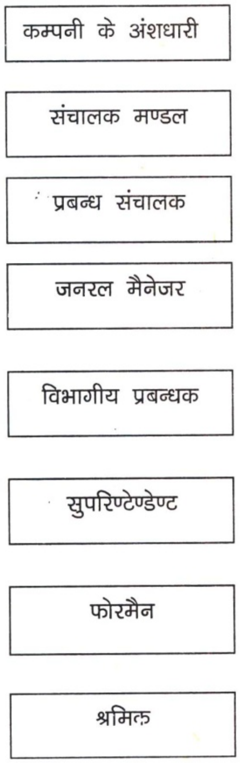

रेखा संगठन की विशेषताएँ

रेखा संगठन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(1) आदेश ऊपर से नीचे की ओर जाता है तथा निवेदन नीचे से ऊपर की ओर ।

(2) आदेश केवल एक ही पदाधिकारी रो मिलता है ।

(3) अधिकार-सत्ता एक सीधी रेखा के रूप में प्रवाहित होती है ।

(4) प्रत्येक कर्मचारी को निकटतम अधिकारी से आदेश मिलता है ।

(5) एक पदाधिकारी के नियन्त्रण में अधीनस्थ की संख्या सीमित होती है ।

(6) समन्वय में सुविधा रहती है ।

(7) दायित्व और अधिकार के मध्य कोई संघर्ष पैदा नहीं होता ।

(8) समूचा संगठन एक जंजीर की भांति होता है ।

(9) यह सबसे सरलता से क्रियान्वित किया जा सकता है ।

क्षेत्र अभवा उपयुक्तता

रेखा संगठन केवल कुछ विशेष प्रकार की पर्यक्ट इकाइयों में ही सफलतापूर्वक अपनाया सकता है । इसके लिए आवश्यक है कि -

(1) पर्यटन इकाई का आकार बहु त बड़ा न हो ।

(2) अधीन कर्मचारियों की संख्या अधिक न हो ।

(3) विभिन्न इकाईयों का सरलत ।पूर्वक विभाजन किया जा सकता है ।

(4) कार्य समनयक प्रकृति का हो ।

(5) कर्मचारी अनुशासनप्रिय हों ।

(6) श्रम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी समस्या न हो ।

रेखा संगठन के भेद

(1) शुद्ध रेखा संगठन

इसके अन्तर्गत किसी एक स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति की क्रियाएँ समान होती हैं । प्रत्येक क्रिया समूह अपने आप में एक पूर्ण इकाई होती है और स्वयं को सौंपे गये किसी कार्य का करन पूर्णत: समर्थ होता है । उनका वर्गीकरण केवल नियन्त्रण की सुविधा से किया जाता है । व्यवहार में ऐसे उपक्रम मुश्किल से ही मिलते हैं जहाँ समस्त क्रियाएँ शमान होती है । आधुनिक उद्योगों में संगठन की यह प्रणाली मुश्किल से ही देखने में आती है ।

(2) विभागीय रेखा सगस्य

इसे सैनिक संगठन भी कहते हैं । इसके अन्तर्गत उपक्रम को कई विभाग में बाँटा जाता है तथा प्रत्येक विभाग अपने आप में पूरा होता है । प्रत्येक विभाग का एक होता है जो कि विभागीय प्रबन्धक कहलाता है । प्रत्येक विभाग का प्रबन्धक अपने विभाग के संचालन के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है । इस पद्धति में अधिकारों एवं आदेशों का उच्च अधिकारियों से नीचे के अधिकारियों की ओर जाता है । प्रत्येक व्यक्ति आदेशों के पालन के अपने से ऊपर के पदाधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है । विभागों की स्थापना करते समय कार्यो समानता का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है ।

रेखा संगठन के लाभ

रेखा संगठन से होने वाले लाभ निम्नलिखित है -

(1) प्राचीन एवं सरल - यह प्रणाली सबसे प्राचीन एवं अत्यन्त सरल ।

(2) पूर्ण अनुशासन - जिस प्रकार फौज में पूर्ण अनुशासन रहता है, वैसे ही इस संगठन में सबसे अधिक अनुशासन रहता है क्योंकि अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर एक व्यक्ति पूर्ण अधिकार रहता है । श्रमिकों को अपने फोरमैन की बात माननी होती है । यही कारण है कि इस प्रणाली का नाम "सैनिक संगठन" भी रखा गया है ।

(3) अधिकारों का स्पष्ट विभाजन - इस संगठन में अधिकारों का स्पष्ट विभाजन होने के कारण कोई व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व को दूसरों के कन्धों पर डालकर अपनी ज़िम्मेदारी' से मुक्त नहीं हो सकता ।

(4) प्रत्यक्षता - रेखा संगठन में प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का अच्छी तरह से ज्ञान रहता है कि वह किस के प्रति उत्तरदायी है ।

(5) एकीकृत नियन्त्रण - संगठन की प्रस्तुत प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक स्तर पर कर्मचारी तथा पर्यवेक्षक एक ही नियन्त्रण में रहते हैं । इसके परिणामस्वरूप दोनों में सीधा सम्बन्ध रहता है ।

(6) निर्णय लेने में सुविधा - इसके अन्तर्गत निर्णय आसानी तथा शीघ्रता से लिये जा सकते हैं क्योंकि निर्णय लेने वाला प्राय: एक ही व्यक्ति होता है तथा उसके द्वारा लिये गये निर्णय का आसानी से विरोध नहीं किया जा सकता ।

(7) दोषी को दण्ड देने में सुविधा - चूकि इसमें कोई व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकता, फलतः दोषों अथवा त्रुटियों का आसानी से पता लगाकर दोषी को दण्ड देने में सुविधा रहती हे । अत: कार्मिक अधिक लगन से कार्य करते हैं ।

(8) लोचशीलता - यह पद्धति लोचदार है क्योंकि इसमें बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार तुरन्त समायोजन किया जा सकता है ।

(9) समन्वय - यह प्रभावशाली समन्वय में सहायक है क्योंकि एक विभाग की समस्त किया पर एक ही व्यक्ति का नियन्त्रण होता है ।

(10) सर्वसम्पन्न अधिकारियों का विकास - संगठन की इस प्रणाली के अन्तर्गत अधिकारी सम्बन्धित विभाग के सभी कार्यो को सम्पन्न करते हैं जिससे सर्वसम्पन्न अधिकारियों का विकास होता

(11) अन्य लाभ

(अ) इसमें लालफीताशाही को समाप्त अथवा कम किया जा सकता है ।

(ब) इसमें संवहन में सुगमता एवं शीघ्रता रहती है ।

(स) संगठन का यह प्रारूप शीघ्र कार्य करने के लिए उचित संरचना प्रदान करता है।

(द) इस प्रकार के संगठन में कोई भी व्यक्ति अपने दायित्वों को दूसरे के सिर नहीं मठ सकता क्योंकि दायित्वों का बँटवारा स्पष्ट रूप से होता है ।

(य) यह संगठन को स्थायित्व प्रदान करता है ।

रेखा संगठन के दोष अथवा हानियाँ

रेखा संगठन के उपर्युक्त लाभों से प्रभावित होकर यह नहीं समझ लेना चाहिए कि प्रस्तुत प्रणाली सर्वथा दोष मुक्त है अपितु इसमें निम्नलिखित दोषों का समावेश है-

(1) सम्पूर्ण प्रणाली एक ही व्यक्ति के गुणों पर आधारित होती है । सर्वोच्च अधिकारी ही व्यवसाय का निर्देशनुर्क्ता होता है । अत: यदि मुख्य अधिकारी अकुशल व अक्षम होता है तो संगठन की प्रगति रुक जाती है।

(2) क्रमचारिया का सीमित संख्या के कारण विशिष्टीकरण का लाभ नही उठाया जा सकता।

(3) समस्त कर्मचारियों से सहकारिता व सहयोग प्राप्त करना कठिन होता है ।

(4) कुछ अधिकारियों से सहकारिता व सहयोग प्राप्त करना कठिन होता है ।

(5) प्रत्येक कर्मचारी से यह आशा की जाती है कि वह विभाग के समस्त कार्यो में योग्य प्रमाणित हो, किन्तु यह सम्भव नहीं होता ।

(6) इस प्रणाली में कार्य के शीध्र होने में लालफीताशाही रूकावट डालती है ।

(7) अनुशासन पर अधिक बल दिए जाने के कारण इस प्रणाली में तानाशाही का दोष आ जाता है।

(8) एक जटिल व मिश्रित औधोगिक इकाई में विभागों का गठन करना कठिन होता है ।

(9) इस व्यवस्था में विशेषज्ञों को कोई स्थान नहीं दिया जाता जो कि आधुनिक तकनीकी युग में उपयुक्त नहीं कहा जा सकता ।

(10) सर्वोच्च अधिकारी पर कार्यभार अधिक होने के कारण वे भविष्य के लिए कोई निश्चित नीति व योजना का निर्माण नहीं कर पाते ।

(11) फोरमैन को इतना काम करना पड़ता है कि वे सुधार की ओर उतनी जल्दी ध्यान की दे सकते जितनी जल्दी देना चाहिए ।

(12) इनमें अच्छे कर्मचारियों को पुरस्कृत करने तथा निकम्मे कर्मचारियों ने सजा देने की कोई व्यवस्था नहीं है । ।

(13) इसमें अपनों के पक्ष में पक्षपात को बढावा मिलने की आशंका रहती है? पदोन्नति खुशामद के आधार पर होने लगती है और नौकरी की सुरक्षा तभी हो पाती है जब जी-हु जूरी की जाए ।

प्रोफेसररु एजेण्ट फ्लोरेन्स ने इस प्रकार की गलतियों को तीन शीर्षकों में बाटा है

(अ) सही जानकारी प्राप्त करने और उसके अनुसार कार्य करने जे विफलता ।

(ब) लालफीताशाही और तानाशाही ।

(स) विशेषज्ञों की कुशलता का अभाव ।

II रेखा एवं कर्मचारी संगठन

आशय एवं परिभाषा

संगठन के उपर्युक्त दोषों को दूर करने के लिए कर्मचारी एवं लम्बवत् संगठन का निर्माण हु आ। यद्यपि इस प्रणाली में भी कार्य का विभाजन स्वतन्त्र विभागों में किया जाता है और उत्तरदायित्व का विभाजन भी फलस्वरूप में ही होता है किन्तु विभागीय प्रमुखों के साथ तकनीक विशेषज्ञ भी नियुक्त किये जाते हैं । उनका कार्य सलाहकारी होता है, प्रबन्धात्मक नहीं । विशेषज्ञ विभिन्न विषयों पर सलाह देने के साथ-साथ अनुसन्धान कार्य में भी लगे रहते हैं । इस प्रणाली की विशेषता यह है कि इसमें सोचने एवं परामर्श देने तथा क्रियान्वयन के कार्य दोनों अलग-अलग हो हैं । विशेषज्ञ अथवा खेफ अधिकारी रेखा अधिकारियों को परामर्श देते है । इस प्रकार विशेषज्ञ या स्टॉफ अधिकारी सोचते हैं एवं परामर्श देते है तथा लाइन अधिकारी कार्य करते हैं लुइस ए. ऐलन 'अनुसार, "लाइन का आशय संस्था के उन पदों एवं तत्वों से है जो उपक्रम के उद्देश्यों को पूरा के लिए उत्तरदायी होते हैं । स्टॉप अथवा सहायक का आशय उन पदों से है जो लाइन को अधिकारीयों अपने को पूरा करने के लिए आवश्यक परामर्श एवं सहायता प्रदान करते है ।" इससे श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है । भूले के अनुसार, "संगठन में स्टाफ या कर्मचारी सेवा से आशय परामर्श से होता है जो अधिकार या आदेश से भिन्न होता है ।" यहाँ पर स्पष्ट करना आव होगा कि स्टाफ के परामर्श को मानना या न मानना पूर्णत: रेखा अधिकारी की इच्छा पर निर्भर करता है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि रेखा अधिकारी स्टाफ के परामर्श को मानने के लिए बाध्य है । इसमें करने तथा सोचने में स्पष्ट भेद है । 'रेखा' करने वाला तथा 'स्टाफ' वाला होता है ।

कर्मचारी एवं रेखा अथवा रेखा एवं सहायक संगठन के लक्षण

कर्मचारी एवं रेखा संगठन के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं :

(1) इसमें रेखा अधिकारियों की सहायता के लिए कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती है ।

(2) कर्मचारी विशेषज्ञों के रूप में होते हैं जिनका कार्य रेखा को परामर्श देना होता

(3) विशेषज्ञों का परामर्श वैज्ञानिक तथ्यों, यथार्थता तथा व्यावहारिकता पर आधारित होता है ।

(4) रेखा अधिकारी विशेषज्ञों के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं होते । विशेषज्ञ रेखा अधिकारियों को मात्र परामर्श ही दे सकते है, उन्हें किसने निर्णय को लेने के लिए विवश नहीं कर सकते ।

(5) इसमें अधिकार और उत्तरदायित्व ऊपर से नीचे की ओर सीधी रेखा में प्रवाहित होते है।

(6) इसमें सोचने एवं परामर्श देने तथा करने के कार्य अलग-अलग होते हैं ।

(7) विशेषज्ञों द्वारा परामर्श दिये जाने से जहाँ एक ओर रेखा अधिकारियों के कार्य का बोझ हल्का हो जाता है, वहाँ दूसरी ओर उनके द्वारा लिये गये निर्णय अपेक्षाकृत अधिक ठोस होते हैं ।

लाभ अथवा सकारात्मक पहलू

(1) विशेषज्ञों की नियुक्ति के लाभ

इस प्रणाली के अन्तर्गत रेखा अधिकारी को परामर्श देने हेतु विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती है । अत: कार्य में गलती होने की सम्भावना कम हो जाती है तथा कार्यक्षमता में वृद्धि होती है ।

(2) अनुसन्धान को प्रोत्साहन -

विभिन्न विषेशज्ञों की नियुक्ति के कारण अनुराव्यान को सबसे अधिक प्रोत्साहन मिलता है ।

(3) सोचने और करने में स्पष्ट भेद

इस प्रणाली के अन्तर्गत सोचने और करने की क्रियाओं को एक-दूसरे से अलग अलग कर दिया जाता है । सोचने वाले होते हैं स्टाफ अधिकारी तथा करने वाले होते है रेखा प्रबन्धक। अत: कार्य अधिक सुचारू रूप से सम्पन्न होता है ।

(4) कुशल कर्मचारियों के लिए सुअवसर

इसमें कुशल कर्मचारियों को उन्नति के लिए सुअवसर मिलता है क्योंकि उत्तरदायी पदों की संख्या में वृद्धि हो जाती है ।

(5) मितव्ययिता

इसमें अपव्याय रूक जाता है तथा कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है । इस पद्धति में पर्याप्त मितव्ययिता रहती है ।

(6) सुदृढ़ निर्णय

विशेषज्ञों द्वारा ये गये परामर्श के आधार पर रेखा अधिकारियों द्वारा लिये गये निर्णय सुदृढ़ होते हें ।

(7) कार्य-भार में कमी

इसमें रेखा अधिकारियों के कार्यभार में पर्याप्त कमी हो जाती है । अत: वे अपना समय अधिक महत्वपूर्ण कार्यो में लगा सकते हैं ।

(8) अन्य लाभ

(अ) विशेषज्ञों की विद्यमानता इस संगठन को अधिक लोच प्रदान करती है ।

(ब) इसमें विशेषज्ञों का प्रशिक्षक के रूप में लाभ उठाया जाता है ।

(स) यह संगठन विशिष्टीकरण के लाभ प्रदान करता है ।

(द) इसमें अधिकारों का केन्द्रीयकरण करना सम्भव है ।

हानियाँ या दोष

(1) **बहुत बडे संगठन के लिए अनुपयुक्त -** विद्वानों के मतानुसार यह शाली बहुत बडे संगठन के लिए अनुपयुक्त है ।

(2) **खर्चीली पद्धति -** बहुत अधिक संख्या में विशेषज्ञों की नियुक्ति किये जाने के कारण यह प्रणाली अपेक्षाकृत ख़र्चीली है । इसके अतिरिक्त, इसमें अनुसन्धान के कार्यो पा अत्यधिक व्यय करना पड़ता है ।

(3) **विशेषज्ञों का उत्तरदायित्व नहीं -** गलत सलाह देने पर विशेषज्ञों को उत्तरदायी नहीं कराया जा सकता है ।

(4) **संघर्ष की सम्भावना -** कभी कभी रेखा एवं स्टाफ विशेषज्ञों के मध्य एक दूसरे का दृष्टिकोण समझने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है । अत: गलतफहमी के कारण आपस में संघर्ष शुरू हो जाता है जिससे संगठन को क्षति पहुँचती है ।

(5) **भ्रम की आशंका -** कर्मचारियों के कर्तव्यों तथा दायित्वों का स्पष्ट विभाजन न होने के कारण श्रम उत्पन्न होने की आशंका रहती है ।

(6) **केन्द्रीयकरण के दोष -** इस संगठन के अन्तर्गत समस्त आदेशात्मक और निर्देशात्मक कार्य रेखा अधिकारी द्वारा किये जाते हैं । इसके फलस्वरूप केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन मिलता है जो संगठन का एक अवगुण है ।

रेखा तथा कर्मचारी कार्य में अन्तर ।

रेखा तथा कर्मचारी दोनों एक-दूसरे के सहायक एवं पूरक हैं । फिर भी प्रबन्ध क्षेत्र में इन दोनों में अन्तर किया जाता है । इन दोनों के अन्तर के संबंध में विभिन्न प्रबन्ध 'विद्वानों में भारी मतभेद हैं, और इस मतभेद ने प्रबन्ध विज्ञान में काफी कठिनाइयों एवं विसंगतियों को जन्म दिया है । कूण्ट्ज तथा ओ'डोनैल के शब्दों में, "सम्भवत: प्रबन्ध का और कोई क्षेत्र या विचार ऐसा नहीं है जिसमें इतनी कठिनाई और मतभेद हो तथा जिस पर विचार करने में इतना समय लगाया गया हो जितना रेखा कर्मचारी सम्बन्धों को निर्धारित करने में लगाया गया है ।" इन दोनों में अन्तर के सम्बन्ध में मुख्य रूप से दो विचारधाराएँ हैं । पहली विचारधारा के अनुसार, एल.ए. ऐलन. एल.ए। एप्पले तथा सिम्पसन, आदि के विचार है कि "रेखा क्रियाएँ वे हैं जो उपक्रम के पूर्व-निर्धारित उपदेशयों को प्राप्त करने में सीधा उत्तरदायित्व वहन करती हैं । कर्मचारी तत्वों का तात्पर्य उन पदों एम तत्वों से है जो रेखा अधिकारियों को इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु परामर्श एवं सेवा प्रदान करने हेतु उत्तरदायी एवं अधिकृत हैं ।" इरा विचारधारा के अनुसार, संगठन की संचालन सम्बन्धी क्रियाएँ होगी । इस विचारधारा के समथक उत्पादन,

विक्रय तथा वित्त-प्रबन्ध को रेखा क्रिया ते है तथा सेविवर्गीय प्रबन्ध, शुणवत्ता-नियन्त्रण तथा लेखा-कार्य को कर्मचारी अथवा विशेषज्ञ कि मानते हैं ।

रेखा तथा कर्मचारी कार्यो के अन्तर के संबंध में दूसरी अधिकार सत्ता पर आधारित है। इस वर्ग में जेडी. मूल तना कूण्ट्ज एवं ओ-डोनैल आदि हैं ।मूने के अनुसार, प्रत्येक संगठन में सत्ता का कमश: तथा अबाधित स्तरीकरण होता है जो के प्रत्येक वर्ग में नीचे से लेकर ऊपर तक चलता है । स्तरों की इसी क्रमबद्ध व्यवस्था ले संगठन के सोपानीय सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है । इसका आशय है कि प्रत्येक उपक्रम में अधिकारी तथा अधीनस्थ का सम्बन्ध पाया जाता है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक अधिकारी अपने अधीनस्थ ड़र प्रत्यक्ष रूप से शासन करता है । सत्ता के ऐसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध को रेखा सम्बन्ध को और अन्य को कर्मचारी अथवा परामर्शात्मक सम्बन्ध माना जाता है । इस प्रकार कर्मचारी क्रियाओं की प्रकृति परामर्शात्मक तथा द्वितीयक स्तर की है ।

'रेखा संगठन' तथा 'रेखा एवं कर्मचारी संगठन" में अन्तर

रेखा संगठन में रेखा अधिकारी सम्मिलित किये जाते हैं जो समस्त प्रबन्धकीय कार्य का निष्पादन करते हैं, तथा आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति का उत्तरदायित्व निभाते हैं । इसके विपरीत, रेखा एवं कर्मचारी संगठन में रेखा अधिकारी तो समस्त प्रशासकीय कार्य का निष्पादन करते है एवं कर्मचारी अधिकारी रेखा अधिकारियों को सहायता उपलब्ध करने हेतु परामर्शदाताओं की स्थिति में कार्य करते हैं । कर्मचारी अधिकारियों का कार्य केवल रेखा अधिकारी को परामर्श एवं विशेषज्ञ सेवाएँ उपलब्ध कराना होता है जिसके आधार पर रेखा अधिकारी कार्य का निष्पादन करते हैं ।

III क्रियात्मक अथवा कार्यात्मक संगठन

आशय - क्रियात्मक संगठन पद्धति एफ.डब्ल्यू. टेलर की देन है । इस पद्धति का विकास टेलर ने प्रबन्ध में विशिष्टीकरण करने के प्रयासों के अन्तर्गत किया है । उनका यह मत था कि एक व्यक्ति समस्त कार्यो का विशेषज्ञ नहीं हो सकता । अत: कार्यरत कर्मचारियों को वही कार्य दिया जाना चाहिए जिसमें वे दक्ष हों । टेलर के अनुसार, ' 'इस पद्धति में प्रबन्ध का नियन्त्रण इस प्रकार का होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को कम कार्य करना पड़े । अत: उसका कार्य यथासम्भव छोटी से छोटी प्रक्रिया में विभाजित कर दिया जाता है । इस प्रकार के किया-विभाजन से एक व्यक्ति का संबंध केवल एक ही अधिकारी तक रहता है जो आवश्यक आदेश अथवा सूचनाएँ देता है...... ।' इस प्रणाली में प्रत्येक छोटे से छोटे कार्य के लिए भी एक निरीक्षक (विशेषज्ञ)नियुक्त किया जाता है जो अपने कार्य की पूर्ण रूप से निगरानी रखता है । इस व्यक्ति को अपने कार्य से संबंधित प्राय: सभी अधिकार प्राप्त रहते हैं । उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति जो माल की किस्म का विशेषज्ञ है, इस बात की जाँच करता रहेगा कि माल ठीक किस्म का बन रहा है अथवा नही, उसे अन्य बातों से कोई सरोकार नहीं है । प्रबन्ध के विशिष्टीकरण के आधार पर टेलर ने आठ विशेषज्ञों की कल्पना की थी जो किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आदेश-निर्देश देते है । उनके द्वारा निर्धारित चार विशेषज्ञ कार्यालय संबंधी कार्यो

से जुडे रहते हैं तथा शेष चार विशेषज्ञ कारखाने से जुड़े रहते है । कार्यालय विशेषज्ञों का कार्य नियोजन करना है तथा कारखाना विशेषज्ञ उत्पादन कार्यो में संलग्न रहते है ।

टेलर के अनुसार क्रियात्मक पद्धति में निम्न आठ अधिकारी होते हैं जो अपना-अपना कार्य करते है

6:1 - क्रियात्मक पद्धति के अधिकारिगण का चित्र द्वारा प्रदर्शन

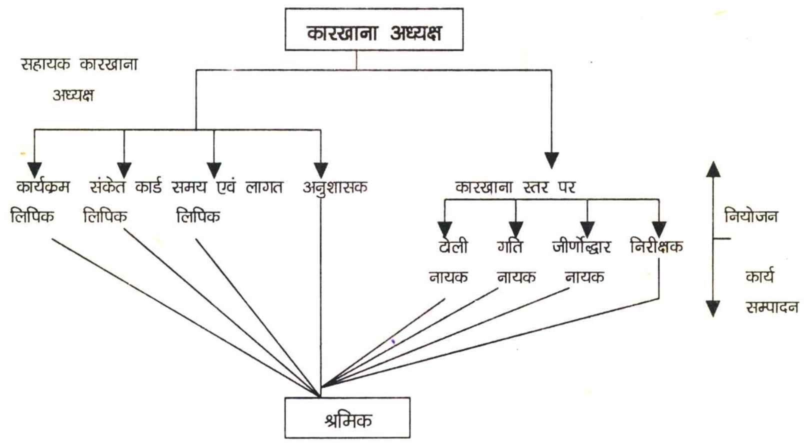

(1) टोली नायक

यह प्रत्येक श्रमिक के कार्य को निश्चित कर उसके लिए उसे आवश्यक सामग्री देता है तथा काम करने के लिए आवश्यक सूचना प्रदान करता है । आवश्यकता पड़ने पर श्रमिक की सुविधा के लिए कार्य करने की रीति का प्रदर्शन भी करता है ।

(2) गति नायक'

श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए कार्य क्यों तथा किस प्रकार किया जाये, इस हेतु आवश्यक सूचना देने तथा कार्य करने की विधि का प्रदर्शन करने का कार्य व्यक्ति करता है ।

(3) निरीक्षक

यह निर्मित वस्तुओं की किस्म की जाँच करता है ।

(4) जीर्णद्धार नायक

यह इस बात की देख-रेख करता है कि श्रमिक अपनी मशीन को प्रकार से रखते हैं या नहीं । वह मशीन सफाई व तेल इत्यादि की व्यवस्था करता है और पुर्जो की मरम्मत की व्यवस्था करता

(5) कार्यक्रम लिपिक

यह दैनिक कार्यक्रम की योजना बनाता है । किस क्रम में व्यक्ति से लिया जाना चाहिए तथा कौन-सा कार्य कहाँ हो रहा है और उनका अधिकारी कौन है इस आशय की सूचना बनाता है ।

(6) संकेत कार्ड लिपिक

यह व्यक्ति योजना विभाग के लिए आदेश पत्र बनाता है । इन आदेशपत्रों के आधार पर वह किस प्रकार किन यन्त्रों पर कार्य करेगा, इसका आदेश विभिन्न टोली नायकों को देता है।

(7) समय तथा परिव्यय लिपिक

यह व्यक्ति समय एव मूल्य सम्बब्धी आवश्यक लेख रखने के लिए ' होता है ।

(8) अनुशासन

यह प्रत्येक विभाग के श्रमिक एवं कर्मचारियों के अनुशासन के उत्तरदायी होता है । कारखाने में पूर्ण शांति हो, यही इसका कार्य है ।

क्रियात्मक पद्धति के गुण ।

(1) विशिष्टीकरण पर आधारित होने के कारण दक्षता में वृद्धि होती' है ।

(2) विशेषज्ञों की नियुक्ति के कारण अनुसंधान के कार्य को प्रोत्साहन मिलता है ।

(3) यह बड़ी मात्रा में उत्पादन अथवा सेवा प्रदान करना सम्भव बनाता है ।

(4) श्रमिकों को इस पद्धति से लाभ होते हैं क्योंकि कार्य का विभाजन योतयतानुसार होता है।

(5) भविष्य में उपक्रम का आकार बिना महत्वपूर्ण परिवर्तन किए बढाया जा सकता है ।

(6) सहयोग की भावना को प्रोत्साहन मिलता है ।

(7) मानसिक तथा शारीरिक कार्यो में भेद किया जाता है ।

(8) यह पद्धति प्रेरणात्मक है ।

(9) यह अविभाजित दायित्व और नियन्त्रण के सिद्धान्त को सम्भव बनाती है ।

क्रियात्मक पद्धति की हानियां अथवा दोष

(1) एक ही कार्य पर कई अधिकारी होने के कारण उत्तरदायित्व का अभाव रहता है ।

(2) अनुशासन पर अपेक्षाकृत कम बल दिया जाता है ।

(3) यह प्रणाली छोटे उद्‌योगों के लिए उपयुक्त नही है ।

(4) इसमें विभागों के मध्य साधनों के लिये प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हो जाती है, जिसका कर्मचारियों पर बुरा प्रभाव पड़ता है ।

(5) कागजी कार्य में अनावश्यक रूप से वृद्धि होती है । छोटे से छोटे कार्य के सम्बंध में भी सूचनाएं तथा आदेश निर्गमित करने पड़ते है ।

(6) इसमें समन्वय में कठिनाई होती है । क्योंकि कार्यो को अनेक भागों व उप-भागों में विभाजित किया जाता है ।

(7) संगठन का यह प्रारूप केन्द्रीयकरण की प्रवृति को प्रोत्साहन देता है ।

(8) यह प्रबन्ध को लोचहीन बना देता है ।

(9) यह संगठन प्रबन्ध के एक प्रमुख सिद्धान्त 'आदेश की एकता' का उल्लघंन करता है ।

(10) निष्पादन का मूल्यांकन कठिन हो जाता है ।

समिति संगठन

अर्थ की परिभाषाएँ - आज का युग प्रजातन्त्र का युग है जिसमें सभी कार्यो आपसी परामर्श द्वारा किया जाता है । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'समिति संगठन' का प्रादुर्भाव हुआ । इसके अन्तर्गत व्यावसायिक इकाई के कार्य-कलापों की देख-रेख के लिए समिति का गठन किया जाता है जिसका एक अध्यक्ष होता है । इस समिति की सहायता के लिए अन्य छोटी-छोटी समितियों की स्थापना की जाती है । संगठन का यह प्रारूप प्राय: विशाल व्यावसायिक संगठन में ही देखने में आता है । समिति में कम से कम तीन व्यक्ति होते हैं । समिति में समस्त निर्णय बहुमत द्वारा किये जाते हैं ।

6.6 संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले घटक

संगठन-संरचना की स्थापना करना अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है । **पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार, "संगठन-संरचना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है । गलत संरचना व्यवसाय की कार्यक्षमता को गम्भीर रूप से प्रभावित करती है । यहाँ तक कि गलत संरचना व्यवसाय का विनाश भी कर सकती" है ।** पीटर एफ. ड्रकर तथा एल्वर्ट विक्सबर्ग ने संगठन-संरचना को प्रभावित करने वाले घटको का वर्णन किया है । इन दोनों तक अन्य विद्वानों के विचारों का अध्ययन करने के पश्चात् संगठन-संरचना को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित घटक उभर कर आते हैं:

(1) संगठन के उद्देश्य

यह तो सर्वविदित है कि संगठन स्वयं अपने आप में कोई उद्देश्य नहीं है अपितु यह तो उद्देश्यों की प्राप्ति का एक साधन है । संगठन-संरचना का चयन करते समय उसके उद्देश्यों पर ध्यान देना परम् आवश्यक है । आर.सी. डेविस के अनुसार, "संगठन-संरचना का आधारभूत निर्धारक घटक संस्था के उद्देश्य हैं ।' '

(2) संगठन का आकार

संगठन का आकार भी संगठन-संरचना को प्रभावित करता है । उदाहरण के लिए, यदि संगठन बहुत बड़ा है तो संगठन-संरचना करते समय विकेन्द्रीकरण पर अधिक ध्यान दिया जा सकता है । इसके विपरीत, यदि संगठन छोटा हो तो केन्द्रीय संगठन अपनाया जा सकता है ।

(3) कार्यो की प्रकृति

संस्था में सम्पन्न किये जाने वाले कार्यो की प्रकृति भी संगठन-संरचना प्रभावित करती है । इसका कारण यह है कि प्रत्येक संस्था की स्थापना किन्हीं विशेष कार्यो के के लिए की जाती है । फलत: जैसी कार्यो की प्रकृति होगी, वैसी ही संगठन-संरचना की होगी ।

(4) प्रबन्धकीय व्यूहरचना

संस्था का प्रबन्ध उद्देश्यों की प्राप्ति किस प्रकार की प्रबन्धकीय व्यूह-रचना से करता है, संगठन-संरचना को प्रभावित करेगी । संगठन-संरचना का प्रबन्धकीय व्यूह-रचना अनुकूल होना आवश्यक है ।

(5) प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति

संस्था की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति के कारण भी संगठन-संरचना विस्तृत संकुचित हो सकती है । उदाहरण के लिए, यदि संस्था की एकाधिकारी स्थिति है तो संगठन संरचना लघु एवं केन्द्रीयकरण पर आधारित होगी । इसके विपरीत, यदि संस्था की स्थिति है तो संगठन-संरचना विस्तृत अथवा व्यापक होगी ।

(6) व्यापारिक क्षेत्र

संस्था के व्यापारिक क्षेत्र का भी संगठन-संरचना पर प्रभाव पड़ता है । संस्था का व्यापारिक क्षेत्र स्थानीय, राज्यीय, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय हो सकता है । संस्था का व्यापारिक क्षेत्र जितना विस्तृत होगा, उतनी ही विस्तृत संगठन संरचना का निर्माण होगा ।

(7) पर्यावरण

संगठन संरचना पर वहाँ के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक पर्यावरण का भी प्रभाव पड़ता है । लारेन्स के अनुसार, "प्रभावी संगठन संरचना वह है जो संगठन को पर्यावरण अनूकूल ढाल सके ।

(8) तकनीक अथवा प्रौद्योगिकी

किसी संस्था में उत्पादन के क्षेत्र में प्रयुक्त तकनीक भी संगठन-संरचना प्रभावित करती है । उदाहरण के लिए बडी मात्रा में उत्पादन की तकनीक (जैसे-वाहनों का निर्माण)में क्रियाओ के उच्च किस्म के प्रमापीकरण तथा विशिष्टीकरण की आवश्यकता होती है । उसी के अनुसार संगठन-संरचना की स्थापना होती है । ।

(9) अधीनस्थ कर्मचारियों की योग्यता

किसी संगठन में कार्यरत कर्मचारियों की योग्यता भी संगठन-संरचना को प्रभावित करती है । प्रबन्धक सम्प्रेषण की रेखाओं, सत्ता तथा कार्य एवं इकाईयों के सम्बन्धों के बारे में निर्णय लेते है ।

(10) नियन्त्रण का विस्तार

किसी उपक्रम में कोई प्रबन्धक कितना ही योग्य क्यों न हो, उसकी अपने अधीनस्थों की क्रियाओं का पर्यवेक्षण करने की क्षमता सीमित होती है । कोई भी व्यक्ति असीमित संख्या' में अधीनस्थों के कार्य का पर्यवेक्षण नहीं कर सकता है । अतएव संगठन-संरचना का निर्माण करते समय नियन्त्रण के विस्तार पर ध्यान दिया जाना चाहिए, ताकि सम्बन्धित अधिकारी अधीनस्थो की क्रियाओं का कुशलतापूर्वक पर्यवेक्षण कर सके । इस प्रकार नियन्त्रण का विस्तार भी संगठन-संरचना को प्रभावित करता हे ।

(11) पद समता

संगठन-संरचना की स्थापना करते समय पद समता का भी ध्यान रखना चाहिए । इसके अनुसार संगठन में किसी एक ही अधिकारी के दो समान पद वाले अधीनस्थों के अधिकारों में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं होना चाहिए । समान कार्य करने वाले व्यक्तियों के पद व अधिकार समान होने चाहिए, ताकि मधुर सम्बन्धों की स्थापना की जा सके ।

(12) विभागीयकरण

विभागीयकरण अथवा आधारभूत क्रियाओं का समूहीकरण भी संगठन-संरचना को प्रभावित करता है । विभागीयकरण से आशय समान क्रियाओं को न्यायोचित एवं प्रभावपूर्ण आधार पर वर्गीकृत करने तथा प्रत्येक वर्ग के लिए पृथक् विभाग एवं उप-विभाग की स्थापना करने से है । विभागीयकरण क्रियाओ उत्पादों सेवाओं वित्त, ग्राहकों विधियों, भौगोलिक क्षेत्रों, विपणन आदि के आधार पर किया जा सकता है ।

(13) विकास की गति

उपक्रम के विकास की गति भी बहुत कुछ सीमा तक संगठन-सरंचना को प्रभावित करती है । सामान्यतः संगठन संरचना का निर्माण वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही किया जाता है किन्तु ऐसा करना गलत है । संगठन संरचना का निर्माण सदैव भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए । संगठन संरचना में विकास की गति को ध्यान में रखते हुए इतना लोच अवश्य होना चाहिए, ताकि वह कम से कम 5-10 वर्षो तक उपयुक्त बनी रहे ।

(14) प्रबन्ध की योग्यता

यदि प्रबन्ध बहुत अधिक योग्य (पेशेवर)एवं क्षमतावान है तथा उपक्रम का आकार बहुत बडा नहीं है तो रेखा संगठन प्रारूप अपनाया जा सकता है किन्तु यदि प्रबन्ध बहुत योग्य नही है (पेशेवर नहीं है)और उपक्रम का आकार बड़ा है तो रेखा एवं कर्मचारी संगठन अथवा क्रियात्मक संगठन का प्रारूप अपनाया जा सकता है ।

(15) अन्य घटक

उपर्युक्त घटकों के अतिरिक्त निम्नलिखित घटक भी संगठन संरचना को प्रभावित करते हैं -

(अ) सामाजिक एवं मानवीय आवश्यकताएँ

(ब) लोचशीलता

(स) प्रथाएँ एवं परंपराएं

(द) प्रबन्धकों की नीतियाँ - केन्द्रीयकरण अथवा विकेन्द्रीयकरण ।

6.7 सारांश

संगठन संरचना एक ऐसी व्यवस्था है जिसका ठीक प्रकार से निर्माण न होने पर पर्यटन व्यवसाय का विनाश हो सकता है । **पीटर एफ. ड्रकर** ने लिखा है ' 'संगठन संरचना के गलत होने पर व्यवसाय की कार्यक्षमता विपरीत रूप से प्रभावित होती है और यहाँ तक कि व्यवसाय का विनाश तक सम्भव है ।" संगठन संरचना के समय इसके तत्व, लक्षण एंव निर्धारक विशेष ध्यान रखना चाहिए । जैसे - क्रियाओं का विभागीकरण, समूहीकरण, वर्गीकरण, सन्तुलन, उत्तरदायित्व के केन्द्रों का निर्धारण, सुविधाजनक इकाईयां, उच्च प्रबन्ध व्यवस्था, संरचनात्मक व्यवस्थाएँ निरन्तरता इत्यादि । इसी प्रकार संगठन संरचना के विभिन्न प्रारूपों में से किस

प्रारूप का चयन करना है जैसे रेखा संगठन, कर्मचारी (रेखा तथा कर्मचारी)संगठन अथवा क्रियात्मक आदि का निर्धारण करना भी महत्वपूर्ण है ।

संगठन संरचना में संगठन को प्रभावित करने वाले तत्वों का ध्यान रखना चाहिए । ये इस प्रकार हैं - संगठन के उद्देश्य, संगठन का आकार, कार्यो की प्रकृति, प्रबन्ध ,व्यूहरचना, प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति, व्यापारिक क्षेत्र, पर्यावरण, तकनीक अथवा प्रौधोगिकी, नियन्त्रण का विस्तार, पद-समता, विभागीयकरण, विकास की गति, एवं प्रबन्धकीय योग्यता ।

6.8 अपनी प्रगति को जानने के लिए अभ्यास

1. संगठन- संरचना किसे कहते हैं? विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

   ....

   ....

2. संगठन संरचना के विभिन्न प्रारूपों का वर्णन कीजिए।

   ....

   ....

3. संगठन संरचना को निर्धारित करने वाले घटकों की विवेचना कीजिए।

   ....

   ....

4. पर्यटन के क्षेत्र में संगठन-संरचना का क्या महत्व है? ।

   ....

   ....

इकाई- 7 : संगठन विकास

ढांचा

7.0 उद्देश्य
7.1 परिचय
7.2 संगठन विकास का आशय एवं परिभाषा
7.3 संगठन विकास के लक्षण
7.4 संगठन विकास के मूल्य एवं मान्यतायें
7.5 संगठन विकास की क्रियाएं अथवा तकनीक
7.6 संगठन विकास की प्रकिया एवं अवस्थाएं
7.7 संगठन विकास के मॉडल्स
7.8 सारांश
7.9 अपनी प्रगति को जानने के लिए अभ्यास

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप सक्षम होंगे-

(अ) संगठन विकास की अवधारणा को समझने में ।

(ब) संगठन विकास की तकनीकों अथवा विधियों को जानने में ।

(स) संगठन विकास की प्रकिया एवं अवस्थाओं को समझने में ।

(द) संगठन विकास के विभिन्न मॉडल्स की जानकारी ।

(य) प्रबन्धक के रूप में पर्यटन संगठन का उचित विकास करने में ।

7.1 परिचय

हम निरन्तर परिवर्तन के बीच रहते हैं । हमारा वातावरण, जीवन-परिवेश, 'संगठनात्मक व्यवहार, हमारी संस्कृति आदि निरन्तर प्रवाहशील है । इसी प्रकार प्रत्येक संगठन भी सजीव इकाईयों का समूह है । इसका प्रत्येक घटक प्रवाह में रहता हैं । परिवर्तन विकास का प्रतीक है । व्यवस्थित, एकीकृत एवं नियोजित परिवर्तन के द्वारा संगठन को प्रभावी बनाया जा सकता है । कहा भी जाता कि व्यक्तियों की अपेक्षा प्रणालियों को बदलना सरल होता है ।" संगठनों को उत्पादक एवं प्रगतिशील बनाये रखने के लिए उनका निरन्तर विकास होना आवश्यक है ।

7.2 संगठन विकास का अर्थ एवं परिभाषा

संगठन विकास व्यक्तियों को परिवर्तन के लिए तैयार करने तथा परिवर्तन प्रबन्ध करने की प्रक्रिया हे । यह संगठन की प्रभावशीलता में वृद्धि करने की एक प्रकिया है । व्यक्तियों की अभिवृत्तियों, मूल्यों, व्यवहार तथा संगठन की संरचना व नीति मैं समग्र परिवर्तन लाने की प्रकिया है । कीथ डेविस ने इसे शिक्षण की एक व्यूहरचना बतलाया है जिसके अन्तर्गत संगठन

सम्पूर्ण संस्कृति पर इस उद्देश्य से ध्यान केन्द्रित किया जाता है कि नियोजित परिवर्तन लाया जा सके।

संगठन विकास नियोजित रूप से संगठन के विकास की प्रकिया का सुनिश्चित करने का मंत्र है । यह परिवर्तन-अभिमुखी जटिल शैक्षिक रणनीति है जिसके द्वारा प्रकियाओं को सुदृढ़ बनाकर संगठन का विकास किया जाता है । यह संगठन में परिवर्तन लाने का एक व्यवहारवादी दृष्टिकोण है । संगठन विकास संगठन की संस्कृति, सामाजिक प्रकियाओं, कार्य-समूहों, संरचना, निर्णयन, नियोजन, सम्प्रेषण आदि घटको में परिवर्तन लाकर संगठन प्रभावी, स्वस्थ, उत्पादक एवं गतिशील बनाने की प्रकिया है । संगठन विकास उपक्रम की समस्या-समाधान योग्यता एवं नवीनीकरण क्षमता में वृद्धि करने की तकनीक है ।

1. **स्टेनले हरमन** ने लिखा है संकुचित अर्थ में संगठन विकास से तात्पर्य सचेतना' प्रशिक्षण' से है।
2. **हेनरी सिस्क** के अनुसार 'संगठन विकास संगठन के सदस्यों की अभिवृत्तियों, मूल्यों, अथवा व्यवहार में परिवर्तनों के फलस्वरूप संगठन के वातावरण अथवा संस्कृति होने वाला एक नियोजित परिवर्तन है ।
3. **गॉर्डन लिप्टि** के अनुसार 'संगठन विकास संगठन में उन मानवीय प्रकियाओं को सुदृढ़ करना है जो संगठित प्रणाली की कार्यशीलता में वृद्धि करती है ताकि लक्ष्य प्राप्त किये जा सकें ।"

उपयुक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि संगठन विकास नियोजित परिवर्तन एवं व्यवहारवादी शिक्षण की एक दीर्घकालीन एवं संगठन व्यापी प्रकिया है जिसके अन्तर्गत संगठन की तकनीकी व मानवीय प्रकियाओं ,मूल्यों, संस्कृति एवं संरचनाओ में परिवर्तन लाकर संगठननात्मक क्षमता, प्रभावशीलता, गत्यात्मकता एवं परिपक्वता में वृद्धि की जाती है । यह संगठन को एक प्रणाली, एकीकृत इकाई व्यवहार तथा वातावरण के साथ समायोज्य बनाने का व्यवस्थित प्रयास है ।

7.3 संगठन विकास के लक्षण

संगठन विकास की विचारधारा के प्रमुख लक्षण निम्नानुसार है:

(1) नियोजित विकास

संगठन विकास नियोजित परिवर्तनों का दृष्टिकोण है । इसमें परिवर्तनों का अव्यवस्थित एवं आकस्मिक रूप में प्रबन्ध नही किया जाता । गिब्सन, इवान्सविक एवं डोनेली ने लिखा है कि 'संगठन विकास परिवर्तन के प्रति समंक-आधारित दृष्टिकोण है जो उन समस्त तत्वों को सम्मिलित करता है जो कि प्रबन्धकीय निएयोजन में सम्मिलित होते हैं । यह लक्ष्य-निर्धारित, क्रिया-विनियोजन, क्रियान्वयन, निरीक्षण एवं आवश्यकतानुसार सुधार कार्यवाही को सम्मिलित करता है । " यह प्रचलित प्रबन्ध प्रकियाओं में एक योजनाबद्ध हस्तक्षेप है जिसका उद्देश्य व्यवहारवादी विज्ञान के ज्ञान, नयी प्रौधोगिकी व नये संसाधनों का प्रयोग करके गतिशील वातावरण में संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करना है ।

(2) व्यापक परिवर्तन

संगठन विकास के प्रयासों में "सम्पूर्ण प्रणाली' ' सम्मिलित होती है । सम्पूर्ण संगठन स्तर पर परिवर्तन किये जाते हैं । इसमें सम्पूर्ण संस्था ही अथवा इसके अन्तर्गत कोई निश्चित विभाग विश्लेषण की इकाई होता है । '

(3) कार्य समूहों पर बल

यद्‌यपि संगठन विकास के कुछ प्रयासों का उद्देश्य व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक स्तर पर परिवर्तनों को लागू करना हो सकता है । किन्तु वास्तव में संगठन विकास 'समूह-अभिमुखी' होता है । इस प्रकार संगठन विकास एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण है ।

(4) दीर्घकालीन प्रयास

संगठन विकास एक दीर्घकालीन कार्यक्रम होता है । इसकी अवधि कुछ महीनों या वर्ष तक हो सकती है । यद्‌यपि इसमें शीघ्र परिणाम प्राप्त करने का लक्ष्य होता है, किन्तु यह कोई अन्तर कालीन या कामचलाऊ उपाय नहीं है ।

(5) परिवर्तन एजेण्ट की सहभागिता

संगठन विकास में परिवर्तन को लागू करने के लिए परिवर्तन एजेन्ट अथवा 'उत्प्रेरक' की सहायता ली जाती है । इसमें परिवर्तन के सम्बन्ध में इसे तुम स्वयं करो की नीति अपनाई जाती है । परिवर्तन विशेषज्ञ अथवा अन्य विशेषज्ञ अधिकारी, जिन्हे प्राय: बाहर से बुलाया जाता हैं, संगठन विकास की योजनाएँ तैयार करते हैं ।

(6) हस्तक्षेप तक किया शोध का विशेष बल

संगठन विकास की विचारधारा संगठन में चल रही विभिन्न क्रियाओं में नियोजित हस्तक्षेप करने पर जोर देती है । संगठन विकास कार्यक्रमों के दौरान परिवर्तन एजेन्ट तथा ग्राहक संगठन' के बीच संयुक्त रूप से कई क्रियाएँ नियोजित एवं क्रियान्वित की जाती है, जैसे सूचना संग्रहण' कार्यवाही करना, प्रकियाओं का अवलोकन तथा प्रतिपुष्टि करना आदि । संगठन विकास की भाषा मे इन्हे 'हस्तक्षेप कहा जाता है । हस्तक्षेप संगठन विकास हेतु कार्यवाही दबाव होते हैं । '

(7) समस्या-प्रधान

संगठन विकास समस्या प्रधान दृष्टिकरण है । इसमें तात्कालिक एवं पृथक की गई अथवा अस्थायी समस्याओं के बजाय दीर्घकालीन समस्याओं के समाधान खोजे है । समस्याओं के समाधान हेतु संगठन विकास में व्यवहारवादी विज्ञान के सिद्धान्तों तथा शोध निष्कर्षो का प्रयोग किया जाता है ।

(8) कार्यवाही-'प्रधान

संगठन विकस कार्यवाही प्रधान विचारधारा है । यह अन्य परिवर्तन की भांति केवल यह नहीं बतलाता कि संगठनात्मक परिवर्तन किस तरह उत्पन्न होता है, वरन यह, परिणामों एवं निष्पादन पर बल देता है ।

(9) प्रणालीबद्ध दृष्टिकोण

संगठन विकास सुव्यवस्थित एवं सर्वागीय प्रणाली दोनों है यह संगठन प्रौधोगिकी, संरचना तथा प्रबन्ध प्रकियाओं को मानवीय संसाधनो के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध करने का एक ढंग है ।

(10) प्रबन्ध-प्रक्रिया का अभिन्न अंग

संगठन विकास का कार्य बाहरी संस्थाओं अथवा व्यक्तियों द्वारा नहीं किया जाता यद्यपि उनका मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है । यह संगठनात्मक परिवर्तन प्रक्रियाओं का प्रबन्ध करने का कार्यक्रम है।

(11) यह कोई 'तय करो' व्यूहरचना नहीं है

संगठन विकास संस्था का एक नियमित कार्यक्रम है । यह किसी विशिष्ट परिवर्तन को क्रियान्वित करने के लिए अस्थायी क्रियाओं की कोई श्रृंखला नहीं है । नये परिवर्तन को संगठन में एक नियमित स्वरूप धारण करने में समय लगता है ।

(12) सुदृढ़ सिद्धान्तों एवं शोध पर आधारित

संगठन विकास कोई नुमाइशी चीज अथवा सबक नहीं है यह विभिन्न विज्ञानों के सिद्धान्तों, शोध-कार्यो, तथा व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित दृष्टिकोण है । यह सीट- ऑफ-दी पेन्ट्स दृष्टिकोण के विपरीत है ।

(13) सुधार पर बल-

संगठन विकास सुधार व निष्पादन पर बल देने वाला दृष्टिकोण है । यह दृष्टिकोण केवल बीमार संगठनों अथवा सम्पन्न इकाइयों के लिए ही नहीं है वरन् प्रत्येक संगठन को लाभान्वित करने का कार्यक्रम है।

(14) निदानात्मक कौशल

संगठन विकस तथ्यों के आधार पर नियोजन करने पर बल देता है । इसके अन्तर्गत तथ्य संकलन एवं विश्लेषण द्वारा संगठन में ऐसे कौशल का विकास किया जाता है कि भविष्य में वह स्वत: अपनी समस्याओं का निदान करने में समर्थ हो जाता है ।

(15) समायोजन क्षमता

संगठन विकास का मुख्य उद्देश्य संगठन की समस्या समाधान सम्बन्धी क्षमता का विकास है । संगठन विकास के द्वारा संस्था समस्याओं का सक्षम ढंग से सामना करने तथा उसके साथ बेहतर तरीके से निपटने के योग्य हो जाती है ।

(16) अन्य विशिष्ट लक्षण

(1) यह एक शैक्षिक कार्यक्रम है जिसके द्वारा व्यक्तियों की प्रवृत्तियों व दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जाता है ।

(2) यह संगठन की वास्तविक समस्याओं से संबद्ध है ।

(3) इसमें **मानवीय मूल्य** एवं व्यवहारवाद महत्वपूर्ण है ।

(4) यह संगठन को **पुनर्जीवन** देने की विधि है ।

(5) इसमें **सहयोगात्मक प्रबन्ध** के द्वारा संगठन विकास किया जाता है ।

(6) इसमें संगठनात्मक एवं **अन्तर्समूह संस्कृति** में परिवर्तन करने पर जोर दिया जाता है ।

(7) यह **परिस्थितिगत प्रयास** है जो किया शोध एवं समस्या-समाधान तकनीकों पर आधारित होता है ।

(8) यह संगठन में **सामाजिक परिवर्तन एवं मूल्य प्रणाली** में परिवर्तन को दर्शाता है ।

(9) इसमें प्राय: **पेशेवर व्यवहारवादी वैज्ञानिकों,** विशेषज्ञों एवं बाहय परामर्शदाता की सहायता ली जाती है ।

7.4 संगठन विकास के मूल्य एवं मान्यताएं

संगठन विकास के मूल्य एवं मान्यताएं वे आधार हैं जिन पर संगठन विकास की विचारधारा टिकी हुई है । ये मूल्य एवं मान्यतायें व्यक्तियों की प्रकृति, समूह, सम्बन्धों, संगठन की कार्य प्रणाली, मानव व्यवहार आदि से सम्बन्धित है । डगलस मैक्ग्रेगर, केनेथ वेक्सले तथा युकल के अनुसार ये निम्नानुसार है :

(1) व्यक्ति स्वं-विकास की स्वाभाविक इच्छा रखते हैं ।

(2) अधिकांश व्यक्ति संगठन के लिए योगदान करने की अन्तःक्षमता एवं इच्छा रखते हैं।

(3) प्रबन्ध प्रणालियों के उपयुक्त एवं संवर्द्धनकारी न होने के कारण कर्मचारी संगठन में अपना उतना योगदान नहीं कर पाते हैं जितना कि वे कर सकते है ।

(4) अधिकांश संस्थाओं में समूह सदस्यों के बीच अन्तवैयक्तिक विश्वास एवं सहयोग का अभाव पाया जाता है ।

(5) नेता सम्पूर्ण नेतृत्व उत्तरदायित्वों का निष्पादन करना चाहते है जो कि असम्भव होता है । इसमें से कुछ उत्तरदायित्वों के निर्वाह में समूह सहायक हो सकते हैं ।

(6) कर्मचारी दूसरे कार्य-समूह के सदस्यों द्वारा मान्यता प्रदान किये जाने की तीव्र इच्छा रखते है । अत: समुहों द्वारा सहकारी प्रयास एक प्रभावशाली कार्य दृष्टिकोण है ।

(7) समूहो को प्रभावशाली बनाने के लिए इनके सदस्यों में स्वतन्त्र सम्प्रेषण को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए । ।

(8) कर्मचारी अपनी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति तब तक नहीं । कर सकते जब तक वे यह अनुभव न करें कि समूह उनके बारे में सकारात्मक भावनायें रखता है ।

(9) संस्था के किसी भाग या उप-प्रणाली (जैसे कर्मचारी या प्रौधोगिकी)में होने ने वाले परिवर्तनों से दूसरे भाग भी प्रभावित होंगे ।

(10) प्रबन्ध अपने तथा दूसरे कार्य समूहों मे परस्परव्यवाप्तता रखता है ।

(11) संगठनात्मक प्रभावशीलता में संघर्ष निराकरण शैलियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । मतभेद की वे स्थितियाँ जहाँ एक पक्ष जीतता है तथा दूसरा पक्ष हारता है (शून्य निष्कर्ष खेल), संगठन के लिए हानिप्रद होती हैं ।

(12) संगठन विकास की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उपक्रमक की सेविवर्गीय अथवा मानव संसाधन प्रणालियों द्वारा संगठन विकास के नियम-निर्देशों संबलित जाए ।

(13) अधिकांश समूह संगठन भावनाओं की खुली अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित नही करते हैं । भावनाओं को दबाने के कारण कर्मचारियों की समस्याओं को हल करने की क्षमता एवं इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा उनकी कार्य-सन्तुष्टि एवं निष्पादन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है ।

(14) व्यक्तियों की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को पूरा करना संगठनात्मक जीवन का मुख्य उद्देश्य है । संगठनो में व्यक्तियों की स्व-सन्तुष्टि बहुत आवश्यक है।

(15) संगठन में शक्ति का समीकरण दीर्घकालीन संगठनात्मक स्वास्थ्य के लिए न केवल वांछनीय, वरन् आवश्यक भी है ।

(16) मूल रूप से व्यक्ति अच्छे होते हैं, बुरे नही ।

(17) व्यक्ति सदैव बदल रहे एवं प्रगति कर रहे होते हैं वे स्थिर नहीं रहते ।

(18) संगठन में धोखा देने तथा छल-योजना करने से प्रबन्ध एवं अधीनस्थों मे सहयोग घट जाता है ।

7.5 संगठन विकास की क्रियाएँ अथवा तकनीकें

पद्धति दृष्टिकोण के अनुसार संगठन विकास उन अवधारणाओं एवं तकनीकों का समूह है जिनके द्वारा संगठन के सदस्य परिवर्तनों की पहल करना, उन्हें स्वीकार करना तथा उनका सामना करना सीखतें है । संगठन विकास की कई तकनीकें मानव सम्बन्धों की विचारधारा पर आधारित है कई तकनीकें व्यवहारवाद का परिणाम है । इन तकनीकों की संख्या बहुत बड़ी है । ये विस्तार एवं गहराई की दृष्टि से भी जटिल है । संगठन विकास के उद्देश्यों की विभिन्नता के अनुसार इनकी प्रकृति भी विविध है । परस्परव्याप्तता एवं अन्तर्सम्बन्धित प्रकृति के कारण इनका वर्गीकरण करना भी सरल नहीं है ।

''हस्तक्षेप' संरचित क्रियाओं का एक समूह है जिसमें चयनित संगठनात्मक इकाईयां (लक्ष्य समूह अथवा व्यक्ति)वे कार्य करती हैं जिनका उद्देश्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संगठनात्मक सुधार करना होता है । 'हस्तक्षेप' संगठन विकास कार्यवाही संवर्द्धन है । इन क्रियाओं संगठनात्मक पुनर्जीवन कार्यक्रम के अन्तर्गत सामूहिक रूप से 'व्यूहरचना' कहा जाता है । संगठन " व्यूहरचना से तात्पर्य किसी निश्चित समय में लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न संगठनात्मक सुधार क्रियाओं को एकीकृत करने की समग्र योजना है । संगठन विकास कार्यक्रम के लिए अनेक तकनीकों, हस्तक्षेप विधियों, क्रियाओं एवं व्यूहरचनाओं का प्रयोग किया जाता है । इसमें से कुछ निम्न प्रकार हैं । :

(1) संवेदनशीलता प्रशिक्षण

(2) संगठन विकास ग्रिड

(3) प्रबन्ध प्रणालियों

(4) (4)3-डी प्रबन्ध

(5) सर्वेक्षण पुनर्निवेश

(6) दल निर्माण

(7) प्रकिया परामर्श

(8) भूमिका विश्लेषण तकनीक

(9) व्यवहारात्मक विश्लेषण

(10) तृतीय पक्षकार द्वारा शांति स्थापना

(11) जीवन एवं आजीविका नियोजन

(12) सामना सभा

(13) निदानात्मक साक्षात्कार

(14) व्यवहार रूपान्तरण

(15) क्रिया अनुसंधान

(16) कार्य विस्तार एवं कार्य स्मृद्धिकरण

(17) नियोजन एवं लक्ष्य निर्धारण

(18) शिक्षा एवं मार्गदर्शन

(19) उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध

(20) सहभागी प्रबन्ध, एवं

(21) नियोजित परिवर्तन।

प्रत्येक का विवेचन निम्न प्रकार है :

(1) संवेदनशीलता प्रशिक्षण

संवेदनशीलता प्रशिक्षण को **संचेतना प्रयोगशाला, टी-समूह** आदि के नाम से भी जाना जाता है । इसका विकास कुर्ट लेविन की समूह गतिशीलता अवधारणा से हुआ है । संचेतना प्रशिक्षण का प्रथम सत्र 1946 प्रारम्भ किया गया था । लेविन, बैन, ब्रेडफोर्ड तथा लिफ्टि आदि विद्वानों ने इस विधि के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है ।

संगठन विकास की एक तकनीक के रूप में संचेतना प्रशिक्षण के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य हैं :

(1) प्रशिक्षणार्थियों को स्वयं की तथा दूसरों की भावनात्मक प्रतिक्रियाओं

(2) तथा अभिव्यक्तियों के प्रति जागरूक व संवेदनशील बनाना ।

(3) वैयक्तिक मूल्यों एवं लक्ष्यों को संगठनात्मक कार्यो से जोड़ने की अन्तदृष्टि प्रदान करना ।

(4) व्यवहारों की प्रभावशीलता में वृद्धि करना ।

(5) वैयक्तिक विकास के विभिन्न पहलुओं को सुदृढ़ करना ।

(6) अपनी तथा दूसरों की भावनाओं का अवलोकन करने तथा

अपनी क्रियाओं के परिणामों को देख सकने एवं उनसे सीखने की क्षमता को विकसित करना ।

संचेतना प्रशिक्षण मत आरोपण की कोई गुप्त छल-योजना नहीं है । यह न मनो-विश्लेषण है और न ही सघन समूह चिकित्सा है । संवेदनशीलता प्रशिक्षण एक ऐसी विधि है जिसमें सामान्यत: 10 या 15 व्यक्तियों को समूह प्रशिक्षण के लिए लिया जाता है । समूह में सम्मलित किये जाने वाले व्यक्ति एकदम अपरिचित भी हो सकते है अथवा वे किस एक ही संगठन अथवा संगठन के किसी एक ही विभाग से सम्बन्धित होने के कारण घनिष्ठ रूप से परिचित हो सकते हैं ।

प्रशिक्षणार्थियों को दो-तीन सप्ताह तक निरन्तर एक ही स्थान पर एकत्रित किया जाता है । जहाँ उनका प्रतिदिन एक या दो घन्टे का सत्र रखा जाता है । प्रारम्भ में समूह बिना किसी कार्यावली, औपचारिक नियमों अथवा निर्देशात्मक नेतृत्व के अपना कार्य करता है । प्रथम दौर में प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य यह जानकारी प्राप्त करना होता है कि उसके स्वयं के व्यक्तित्व एवं व्यवहार का समूह के अन्य सदस्यों पर क्या प्रभाव पड़ता है । समूह के सदस्यों का यह उद्देश्य भी है कि समूह को प्रभावी बनाकर सदस्यों की आवश्यकताओं की अधिकाधिक सन्तुष्टि की जाये । प्रथम चरण में समूह नेतृत्व में समूह में एक व्यवहारात्मक रिक्तता एवं अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो जातीं है । प्रशिक्षक मूक दर्शक की भांति समूह में अनेक बातों जैसे-सम्प्रेषण, समूह में उत्पन्न होने वाली भ्रान्तियों, उनके अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध आदि का अवलोकन करता है ।

दूसरे चरण में प्रशिक्षक का व्यवहार खुला, अरक्षात्मक, सहानुभूतियुक्त रहता है तथा वह अपनी भावनाओं तथा अवलोकन-बिन्दुओं से समूह-सदस्यों को अवगत कराता है । प्रशिक्षार्थी अपने स्वयं के अनुभव की प्रशिक्षक के अवलोकन-बिन्दुओं से तुलना करते है ।

तीसरे चरण में, धीरे-धीरे अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध विकसित होने लगते हैं । सदस्य एक दूसरे के लिए संसाधन के रूप में कार्य करते है, नये वैयक्तिक, अन्तर्वैयक्तिक तथा सहयोगात्मक व्यवहार के साथ प्रयोग को सुविधाजनक बनाते हैं । इरा प्रकार प्रशिक्षणार्थी को शनै:शनै अपने स्वयं के व्यक्तित्व का बोध होने लगता है, वह जानने लगता है कि उसके व्यवहार का दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ता है? तथा किस प्रकार एक सुदृढ समूह की रचना होती है?

(2) संगठन विकास ग्रिड

अमेरिका के प्रो. रॉबर्ट ब्लैक तथा जोन माउटन ने प्रबन्ध शैली तथा नेतृत्व एवं पर्यवेक्षीय प्रारूप के निर्धारण हेतु एक प्रबन्धकीय ग्रिड का विकास किया था । उन्होंने प्रबन्धकीय शैली में दो प्रकार के घटकों को शामिल किया है । ये घटक हैं-**उत्पादन में रूचि अथवा सम्बद्धता तथा कार्मिकों में रूचि अथवा संबन्ध ।** एक प्रबन्धक की पर्यवेक्षण अथवा प्रबन्ध शैली प्रमुखत: उत्पादन अथवा व्यक्तियों से जुड़ी होती है । प्रबन्धक मूलत: उत्पादन कार्यो अथवा कार्मिकों की समस्याओं में उत्सुक हो सकता है । रॉबर्ट तथा माउटन ने एक ग्रिड के माध्यम से इन दोनों प्रकार की अभिमुखता को मापने का प्रयास किया था ।

संगठन विकास ग्रिड कार्यक्रम की निम्नलिखित छ: अवस्थाएँ हैं :

(अ) प्रशिक्षण

मुख्य प्रबन्धक ग्रिड विचाराधारा के सम्बन्ध में सीखते हैं, अपनी प्रबन्धकीय शैली का मूल्यांकन करते है तथा दल विकास, समूह समस्या निराकरण एवं सम्प्रेषण से सम्बन्धित कौशल का विकास करते है।

(ब) दल विकास

प्रशिक्षित प्रबन्धक कार्य स्थिति में एक नयी समझ का प्रयोग करते हैं । प्रबन्धक-अधीनस्थ सम्बन्धों तथा दल प्रभावशीलता को विकसित करने पर बल दिया जाता है ।

(स) अर्न्तसमूह विकास

इस अवस्था में समन्वय तथा सहयोग को विकसित करने, तनावों को दूर करने तथा संयुक्त रूप सें समस्याओं को हल करने पर बल दिया जाता है ।

(द) संगठनात्मक लक्ष्य निर्धारण

उच्च प्रबन्धक संगठन का एक आदर्श मॉडल तैयार करते हैं तथा परीक्षण, मूल्यांकन एवं परिष्करण द्वारा इसे वास्तविकता में बदलने का प्रयास करते है ।

(य) लक्ष्य प्राप्ति

संगठन सदस्य आदर्श मॉडल को वास्तविकता में बदलने का प्रयास करते हैं ।

(र) स्थिरीकरण

यह जानने के लिए कि संगठन के किन क्षेत्रों में अभी भी सुधार या परिवर्तन की आवश्यकता है, समस्त अवस्थाओं के परिणामों का मूल्याँकन किया जाता है । संगठन में सकारात्मक परिवर्तनों को स्थायी बनाने तथा अवसरों के नये क्षेत्रों का निर्धारण करने के प्रयास किये जाते हैं ।

(3) प्रबन्ध पद्धतियाँ

अमेरिका के मिशीगन विश्वविद्यालय के रैन्सिस लिकर्ट ने प्रबन्ध की निम्न चार पद्धतियां बतलाई है :

पद्धति- 1 : शोषणात्मक-अधिनायकवादी

पद्धति- 2 : कल्याणकारी-अधिनायकवादी

पद्धति- 3 परामर्शात्मक

पद्धति- 4 : भागीदारी

जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है कि प्रबन्ध पद्धति- 1 बहुत अधिक अधिनायकवादी होती है तथा प्रबन्ध पद्धति-4 पूर्णत: सहभागी होती है जिसमें कर्मचरियों को प्रबन्धकीय निर्णयों

में भागीदारी प्रदान की जाती है । संगठन विकास कार्यक्रम का लक्ष्य संख्या को अधिकाधिक सहभागी प्रबन्ध पद्धति की ओर ले जाना होता है । प्रबन्ध पद्धति-4 को एक आदर्श प्रबन्ध व्यवस्था माना जाता है । संगठन विकास कार्यक्रम में सबसे पहले यह जानकारी की जाती है कि संस्था में प्रचालित प्रबन्ध पद्धति लिकर्ट की किस प्रबन्ध के अनुरूप है । सर्वेक्षण तथा प्रश्नावली के माध्यम से यह सूचना एकत्रित कर ली जती है । आदर्श प्रबन्ध पद्धति- 4 तथा विद्यमान प्रबन्ध पद्धति के अब्लर को समाप्त करने के लिए संगठन विकास के अन्तर्गत सुधार की व्यूहरचना तैयार की जाती है । सामाव्यत: अभिप्रेरण, सम्प्रेषण, निर्णयन, लक्ष्य-निर्धारण, नियन्त्रण एवं निष्पादन के क्षेत्र में सुधार के प्रयास करके आदर्श प्रबन्ध पद्धति को प्राप्त किया जाता है ।

(4) 3-D प्रबन्ध

विलियम जे. रैडिन ने प्रबन्ध की इस विधि का विकास किया था । इसे 'त्रि-आयमीय' प्रबन्ध के नाम से जाना जाता है । संगठन विकास कार्यक्रम में इसका बहु त महत्व है । यद्‌वपि त्रि-आयामी प्रबन्ध का मुख्य आधार तो पूर्व-वर्णित प्रबन्धकीय ग्रिड ही है । प्रबन्धकीय ग्रिड दो आयामों अर्थात उत्पादन तथा कार्मिकों के प्रति अभिरूचि ग्रिड ही है । रैडिन ने इसमें एक तीसरे आयाम-'प्रभावशीलता' को और जोड़ दिया है । इसका आशय यह हु आ कि प्रबन्धकीय ग्रिड अथवा लिकर्ट द्‌वारा सुझायी गयी प्रबन्ध पद्धतियों को ज्यों का त्यों स्वीकार न करके परिस्थिति के संदर्भ में उनकी जाँच-परख की जानी चाहिए । प्रभावशाली प्रबन्ध पद्धति को अप्रभावशाली प्रबन्ध पद्धति से पृथक किया जाना चाहिए । प्रभावशाली पद्धति वही होती है जो प्रचलित परिस्थितियों में उचित हो । रैडिन के अनुसार चूंकि प्रबन्ध की ये चार पद्धतियाँ प्रभावी अथवा अप्रभावी हो सकती है अत: उन्होंने प्रबन्धकों के लिए अन्य 8 प्रबन्ध शैलियों को प्रस्तुत किया । 3-D प्रबन्ध इन्ही आठ शैलियों के विकल्प। से सम्बन्धित है । रेन्सिस लिकर्ट के अनुसार श्रेष्ठ प्रबन्ध पद्धति केवल एक त्रि-आयामी प्रबन्ध आकस्मिकता अवधारणा के अनुसार ज्यादा व्यवहारिक है । 3-डी प्रबन्ध यह बतलाता है **कि प्रबन्ध की कोई भी शैली स्वयं में प्रभावी नहीं है । इसकी प्रभावशीलता उस एस्ट स्थिति पर निर्भर करती है जिसमें इसका प्रयोग किया जाता है । अत: परिस्थितियों तथा वातावरण को ध्यान** में रखते हु ये जो भी प्रबन्ध पद्धति श्रेयस्कर हो उसे ही अपनाना चाहिए, तभी संगठन विकास के द्‌वार खुल है । प्रभावोत्पादक के आधार पर प्रबन्ध पद्धति का चयन किया जाना चाहिए । रीडन की त्रि-आयामी प्रबन्ध प्रणाली को विस्तारपूर्वक नेतृत्व सम्बन्धी अध्याय में समझाया गया है ।

(5) सर्वेक्षण पुनर्निवेशन

संगठन विकास की इस तकनीक के अन्तर्गत संगठन की समस्याओं तथा परिवर्तन के क्षेत्रों व अवसरों का निर्धारण किया जाता है । इस पद्धति में विश्लेषण की इकाई जो कि सम्पूर्ण संगठन, एक विभाग अथवा कोई एक कार्य-समूह हो सकता है के सम्बन्ध में सर्वेक्षण जाता है । सर्वेक्षण में प्रश्नावली के माध्यम से सामग्री एकत्रित की जाती है । साक्षात्कार, अवलोकन एवं अन्य विधियों से भी सामग्री एकत्रित की जाती है । सर्वेक्षणकर्ता, सामान्यत: बाहय विशेषज्ञ होते हैं ये एकत्रित सामग्री का विश्लेषण करके सर्वेक्षण इकाई को विश्लेषण परिणामों की सूचना देते

है । इन सूचनाओं व तथ्यों के आधार पर समस्याओं का निदान किया जाता है तथा उनके समाधान के लिए विशिष्ट कार्य-योजनायें तैयार की जाती हैं । सर्वेक्षण इकाई अपनी कमियों की जानकारी करके उन्हे दूर। करने के लिए कार्यक्रमों का विकास करती है ।

सर्वेक्षण पुनर्निवेशन में सामग्री एकत्रित करने हेतु प्रश्नावली या तो उस संगठन विशेष की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विकसित की जाती है अथवा किसी भी प्रमाणित प्रश्नावली प्रारूप को अपना लिया जाता है । अमेरिका के मिशीगन विश्वविद्यालय के सामाजिक अन्वेषण संस्थान द्वारा तैयार की गई प्रश्नावली में निम्न विषयों से सम्बन्धित प्रश्नों को सम्मिलित ?? किया गया है :

(अ) नेतृत्व

(1) प्रबन्धकीय समर्थन

(2) प्रबन्ध द्वारा लक्ष्य प्राप्ति पर बल ।

(3) प्रबन्ध द्वारा प्रदत्त कार्य-सुविधाएँ

(4) प्रबन्धकीय अन्त्रव्यवहार सरलीकरण

(5) सहकर्मी समर्थन

(6) सहकर्मियों द्वारा लक्ष्य प्राप्ति पर बल

(7) सहकर्मी कार्य सरलीकरण

(8) सहकर्मी अन्त्रव्यवहार सरलीकरण

(ब) संगठनात्मक वातावरण

(9) कम्पनी के साथ सम्प्रेषण

(10) अभिप्रेरण

(11) निर्णयन

(12) कम्पनी में नियन्त्रण

(13) विभिन्न विभागों में समन्वय

(14) सामान्य प्रबन्ध

(स) सन्तुष्टि

(15) कम्पनी से सन्तुष्टि

(16) पर्यवेक्षक से सन्तुष्टि

(17) कार्य से सन्तुष्टि

(18) वेतन से सन्तुष्टि

(19) कार्य-समूह से सन्तुष्टि

(6) दल निर्माण

दल अथवा कार्यकारी समूह पर ध्यान केन्द्रित करके भी संगठन की प्रभावशीलता में सुधार किया जा सकता है । दल निर्माण की क्रियाओं से दलों के निष्पादन में सुधार किया जा सकता है अथवा सदस्यों में सहभागिता का बोध उत्पन्न किया जा सकता है । दल निर्माण की क्रियाएं या तो '"परिवार" समूह अथवा विशेष समूहों जैसे कार्य बल, समितियाँ अन्तर्विभागीय

समूहों के साथ लागू की जा सकती है । परिवार समूह से तात्पर्य उस कार्य समूह से होता है जहाँ अधीनस्थ एवं उच्चाधिकारी लम्बे समय से कार्य कर रहे हो ।

संगठन विकास की प्रकिया दल निर्माण सम्बन्धी कार्य के लिए प्राय: कुर्त लेविन द्वारा विकसित 'परिवर्तन' मॉडल के निम्नलिखित चारण अपनाये जाते है :

(अ) **अहिमीकरण** इसमें टीम को परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव कराया जाता है तथा खुलेपन व विश्वास का वातावरण बनाया जाता है ताकि समूह परिवर्तन के लिए तैयार हो सके ।

(ब) **गति प्रदान करना** दल के सदस्य समस्या का निदान करके यह पता करते है कि वे कहा है तथा वे कहाँ है तथा वे कहाँ पहुँचना चाहते है । अपने लक्ष्य बिन्दु तक पहुँचने के लिए वे कार्य-योजनाओं का विकास करते है ।

(स) **पुनः हिमीकरण**-विकास कार्यक्रमों के पूरा होने पर नये सम्बन्धों को स्थायी किया जाता है तथा दल प्रभावशाली निष्पादन की स्थायी आधारशिला पर अपने पैर जमा लेता है ।

नीलम तक किम्बरली के अनुसार एक वृहत् औद्योगिक संगठन में प्रयुक्त दल निर्माण विशिष्ट कार्यक्रम निम्न चरणों में बंटा होता है :

(1) दल कौशल कार्यशाला

एक कार्यशाला का आयोजन करके विभिन्न दलों को अपनी पुरानी कार्यशैली व तरीकों को त्यागने व परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए तैयार करना ।

(2) संमक संग्रहण

संगठनात्मक वातावरण, पर्यवेक्षीय व्यवहार तथा कार्य विषय सामग्री के बारे में प्रश्नावली सर्वेक्षण के द्वारा सूचना एकत्रित कराना ।

(3) समंक मिलान

दलों को समंक उपलब्ध करवाये जाते हैं ताकि वे उनका विश्लेषण करके समस्या क्षेत्रों, एवं प्राथमिकताओं का निर्धारण कर सकें तथा परिवर्तन के लिए प्रारम्भिक सिफारिश कर सकें ।

(4) कार्य-योजना

परिवर्तन के लिए विशिष्ट कार्य योजनायें तैयार की जाती' है ।

(5) दल निर्माण

इस चरण में प्रत्येक दल प्रभावशाली निष्पादन में आने वाली कठिनाइयों का निर्धारण करता है, अवरोधों को दूर करने के तरीके ढूंढ़ता है तथा वांछित परिवर्तनों के लिए योजनायें बनाता है ।

(6) अन्तर्समूह निर्माण

इस चरण में अन्तर्निभरता समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपना सहयोग एवं सहभागिता निर्धारित करते हैं तथा संगठन विकास के प्रयासों को सम्पूर्ण संगठन को उपलब्ध कराते है ।

(7) प्रक्रिया परामर्श

प्रकिया परामर्श का सम्बद्ध उन प्रकियाओं से होता है जो एक समूह के भीतर अथवा समूहों व परामर्शदाता के बीच चलती है । संगठन विकास की इस तकनीक का उद्देश्य संगठन की अर्न्तवैयक्तिक तथा अर्न्तसमूह समस्याओं को सुलझाना है । इसका लक्ष्य "संगठन को स्वयं

की सहायता करने में सहायता प्रदान करना" है । यहाँ प्रक्रिया से तात्पर्य उन मानवीय क्रियाओं से है जो सामान्य कार्य प्रवाह में, सभाओं के संचालन में, तथा संगठन सदस्यों के औपचारिक व अनौपचारिक मिलन व भेंट से उत्पन्न होती है । इसमें आश्रित के कार्यो तथा उनके अन्य व्यक्तियों पर पड़ने वाले प्रभावों पर विशेष बल दिया जाता है । बाहय परामर्शदाता अपने नियोक्ता-संगठन के वातावरण को देखते, समझते तथा प्रकिया घटनाओं पर कार्य करने में अपने नियोक्ता की सहायता करता है ।

(8) भूमिका विशलेषण तकनीक

यह तकनीक कर्मचारियों की भूमिका प्रत्याशाओं तथा उत्तरदायित्वों के स्पष्टीकरण के लिए अपनायी जाती है ताकि वे संगठनात्मक कार्यो को कुशलतापूर्वक कर सकें । इसमें किसी सहायक की उपस्थित वें एक समूह में वैयक्तिक अपेक्षाओं तथा दायित्वों पर विचार-विमर्श किया जाता है । इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका के बारे में सहमति प्राप्त कर ली जाती है । इससे अनावश्यक मतभेद कम हो जाते है तथा उत्पादकता एवं संसक्तिशीलता में वृद्धि होती है । भूमिका विशलेषण की कई विधियाँ हैं, इसमें से कुछ निम्न प्रकार हैं :

(अ) भूमिका वार्ता तकनीक इसका उद्देश्य सदस्यों में भूमिका परिभाषा के कारण होने वाले संघर्षो को समाप्त करना है ।

(ब) भूमिका निर्वाह इसमें प्रत्येक कर्मचारी समूह के सामने उस भूमिका को निभाता है जो वह उचित मानता है । समूह के सदस्य 'भूमिका व्यवहार' का अवलोकन तथा समीक्षा करते हैं ।

(स) भूमिका स्पष्टीकरण इसमें समूह सदस्य अपने **'भूमिका-व्यवहार'** के विभिन्न पहलुओं का विवेचन करते हैं एवं दूसरे की भूमिकाओं के बारे में अपनी अपेक्षाओं की व्याख्या करते हैं । इस प्रकार भूमिक्तओं के बारे में सही समझ उत्पन्न की जा सकती है ।

भूमिका विश्लेषण तकनीक के द्वारा व्यवहारवादी दृष्टि को समुन्नति करके अर्न्तवैयक्तिक सम्बन्धों में सुधार लाया जा सकता है ।

(9) हारात्मक विशलेषण

पिछले कुछ वर्षो में संगठन विकास के एक उपकारण के रूप में व्यवहारात्मक विश्लेषण का प्रद्योत तीव्र गति से बढ़ा है । **लूथांस के अनुसार ''यद्वपि व्यवहारात्मक विश्लेषण संगठन विकास की एक सम्पूर्ण हस्तक्षेप व्यूहरचना नहीं है । किन्तु एक उपकरण के रूप में अनेक बड़ी कम्पनियाँ अपने प्रबन्धकीय एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों के लिए व्यवहारात्मक विश्लेषण कार्यक्रम आयोजित करती है ।"** यह एक ऐसी तकनीक है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी तथा दूसरों की अहं स्थितियों, व्यवहारों तथा कोड़ाओ के पीछे कार्यशील सिद्वान्तों तथा दूसरों के साथ प्रभावी ढ़ग से कार्य करने के तरीकों को अच्छी प्रकार से समझ सकता है । व्यवहारात्मक विश्लेषण के द्वारा एक व्यक्ति दूसरों के साथ अर्थपूर्ण आचरण कर सकता है तथा सामाजिक व्यवहारों, संसारों तथा मानवीय सम्बन्धों को समुन्नत कर सकता है । यह तकनीक बतलाती है कि व्यक्ति परस्पर रूप से किस प्रकार सम्बन्धित है तथा उनके सम्बन्धों में किस प्रकार सुधार लाया जा सकता है ।

इस तकनीक का विकास **एरिक बर्न** ने किया था । बाद में थॉमस हैरिक तथा **जेम्स एवं जोंगवर्ड** ने भी इसके विकास में योगदान दिया । परामर्श, समूह गतिशीलता, अन्र्तवैयक्तिक सम्प्रेषण, संघर्ष निराकरण आदि क्षेत्रों में इसका विशेष प्रयोग किया जा रहा है । यह तकनीक अहं स्थितियों, ध्वंसात्मक संचार क्रीड़ाओं आदि के विश्लेषण में सहायक होती है । ताकि संदेश विकृत न हों तथा परस्पर सम्बन्धों में कटुता न आये । व्यवहारात्मक विश्लेषण तकनीक का प्रयोग संगठन विकास की अन्य विधियों जैसे - प्रक्रिया परामर्श, तृतीय पक्षकार द्वारा शान्ति स्थापना, दल निर्माण आदि के अन्तर्गत भी किया जाता है ।

संगठन विकास की एक तकनीक के रूप में व्यवहारात्मक विश्लेषण के सफल क्रियान्वयन हेतु **बोवन एंव नाथ** ने अग्र मार्गदर्शक तत्व सुझाये है :

(अ) निदान चरण के प्रारम्भ में ही इसका प्रयोग किया जाना चाहिए ।

(ब) व्यवहारात्मक विश्लेषण ढ़ॉचे के सतत् प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए नियोजन कार्यवाही तथा स्थिरीकरण की प्रकिया की रचना की जानी चाहिए ।

(स) संगठन विकास में व्यवहारात्मक विश्लेषण का प्रयोग संख्या विकास की व्यापक प्रकिया के अन्तर्गत किया जाना चाहिए ।

(द) संगठन विकास के अन्र्तवैयक्तिक सम्बन्धो तथा प्रकिया परामर्श में व्यवहारात्मक विशलेषण का सर्वोत्तम प्रयोग होता है ।

(य) परिवर्तन में व्यवहारात्मक विशलेषण के प्रयोग का आशय यह नहीं है कि परामर्शदाता में अन्र्तवैयक्तिक विश्लेषण सामर्थ्य की आवश्यकता नहीं है ।

(10) तृतीय पक्षकार द्वारा शान्ति वार्ता

यह तकनीकी प्रक्रिया परामर्श का विशिष्ट रूप है इसका उद्देश्य अन्र्तवैयक्तिक तथा अन्र्तसमूह संघर्ष का निराकरण करना है । प्रक्रिया परामर्श की भांति इसमें भी सम्मिलित प्रकियाओं का परीक्षण किया जाता है, संघर्षो के कारणों का निदान किया जाता है तथा किसी तृतीय पक्ष परामर्शदाता की मध्यस्थता से रचनात्मक विचार-विमर्श करके संघर्ष का निराकरण किया जाता है । यह तकनीक संघर्ष की आधुनिक मान्यताओं पर आधारित है । रिचर्ड वाल्टन तृतीय पक्षकार शान्ति वार्ता तकनीक से गहन रूप से जुड़े हुए है । उनका मत है कि इस तकनीक के द्वारा संधर्ष के रचनात्मक परिणाम निकलते हैं, दोनों पक्षों को अभिप्रेरणा प्राप्त होती है, उनकी स्थितिगत सत्ता में समता उत्पन्न की सकती है, उनके सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रयासों में सामंजस्य उत्पन्न किया जा सकता है एवं वार्ता के दौरान सामाजिक समर्थन व प्रक्रिया कौशल उत्पन्न किया जा सकता है ।

परामर्शदाता की मध्यस्थता सक्रिय अथवा निष्क्रिय हो सकती है । निष्क्रिय में परामर्शदाता मुकाबला या विचार-विमर्श के दौरान केवल उपस्थित रहता है, जबकि सक्रिय मध्यस्थता में वह निम्न कार्यवाही कर सकता है

(अ.) संधर्ष या विवाद के प्रमुख पक्षों का साक्षात्कार लेकर वह तर्कसंगत सूचना एकत्रित करता है ।

(ब.) मुकाबला सभा का स्थान, संरचना आदि का चयन करता है ।

(स.) निम्न कार्यवाही के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करता है:

(i) अन्र्तकार्यवाही प्रकिया में मध्यस्थ बनना ।

(ii) पुर्निवेशन में भाग लेना व इसे प्रोत्साहित करना ।

(iii) निदान व निराकरण प्रस्तुत करना ।

(iv) मुकाबला सभा के पश्चात् भावी संभाषण व सम्प्रेषण के लिए नियोक्ताओं को तैयार करना ।

यह तकनीक विध्वंसात्मक संघर्ष निवारण को दूर करती है । प्रभावी शाक्ति वार्ता के लिए यह भी आवश्यक है कि तृतीय पक्षकार में सामाजिक प्रक्रियाओं, सिद्धान्तों, मतभेद के कारणों, संघर्ष निवारण प्रकिया आदि का अच्छा ज्ञान होना चाहिए ।

(11) जीवन एवं आजीविका नियोजन

संगठन के अन्तर्गत कुछ बैठकों का आयोजन करके सदस्यों को अपने । जीवन एवं आजीविका की योजनायें तैयार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है । ये योजनायें कम्पनी द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम के अन्तर्गत होती है । इस प्रकार के कार्यक्रमों का लक्ष्य प्रत्येक सदस्य को आत्म-सन्तुष्टि का अधिकतम अवसर उपलब्ध करवाना है । इस प्रकार प्रत्येक कर्मचारी को अपने जीवन तथा पेशेवर कैरियर का अपने संगठन के संदर्भ में विश्लेषण करने का अवसर प्राप्त होता है ।

(12) सामना सभा

यह एक अल्पकालीन हस्तक्षेप विधि है । इसमें प्रबन्धकीय स्तर पर की जाने वाली सभाओं की एक श्रृंखला सम्मिलित है जिसका उद्देश्य संगठन के स्वास्थ्य एवं प्रभावशीलता का मापन करना होता है । यह सभा एक पूरे दिन चलती है । इरामें संगठन की प्रमुख समस्याओं तथा उनके कारणों पर विचार किया जाता है । इसमें भावी क्रियान्वयन के लिए कार्य योजनायें भी विकसित की जाती है । इस तकनीक का प्रयोग किसी आकस्मिकता, संगठनात्मक परिवर्तन, नयी प्रौद्योगिकी आदि की दशा में किया जाता है ।

(13) निदानात्मक साक्षात्कार

ये साक्षात्कार प्राय: **परिवर्तन अभिकर्ता** द्वारा आयोजित किये जाते है निदानात्मक साक्षात्कार का उद्देश्य विभिन्न संगठनात्मक इकाइयों के मध्य सम्बन्धों की जाँच करना तथा निदानात्मक सूचनाओं को एकत्रित करना है । ये साक्षात्कार किसी भी उत्पन्न होने वाली समस्याओं के बारे में आयोजित किये जाते है ।

(14) व्यवहार रूपान्तरण

इस तकनीक को संगठनात्मक व्यवहार संशोधन के नाम से भी जाना जाता है यह तकनीक मूलत: मानवीय संसाधनों के प्रबन्ध से सम्बन्ध रखती है । संगठन विकास की दृष्टि' से इस तकनीक में उन जटिल व्यवहारों की पहिचान की जाती है जिनका निष्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ता है इसके बाद उन व्यवहारों का मापन एवं क्रियात्मक विश्लेषण किया जाता है और अन्तत: हस्तक्षेप व्यूहरचना का विकास करके निष्पादन में सुधार किया जाता है ।

(15) क्रिया अनुसंधान

किया अनुसंधान में सूचना के संकलन व विश्लेषण के साथ-साथ पुनर्निवेशन प्रक्रिया पर भी बल दिया जाता है । कुर्ट लेविन इस तकनीक के प्रतिपादक आने जाते हैं । उनके अनुसार किसी भी परिवर्तन कार्यक्रम की दिशा एवं तीव्रता उसके सम्बन्ध में किये गये अनुसंधान पर आधारित होनी चाहिए । यह तकनीक सीखने की प्रकिया को क्रिया नियोजन के साथ जोड़ती है । कार्यवाही तथा पुनर्निवेशन किया अनुसंधान के दो अतिरिक्त चरण है । यह संगठन की वास्तविक समस्याओं पर यान केन्द्रित करती है तथा निष्कर्षो को तब प्रयोग में लाती है जब अनुसंधान प्रगति पर होता है । संगठन विकास की दृष्टि से क्रिया अनुसंधान एक नियोजक एवं निदानात्मक उपकरण के रूप में बहु त महत्वपूर्ण है ।

(16) कार्य विस्तार एवं कार्य समृद्धिकरण

कार्य विस्तार एक कार्य एक व्यक्ति को सौंपने के बजाय व्यक्तियों के समूह को कई कार्य सौंपने से सम्बन्ध रखता है । इसी प्रकार हर्जबर्ग ने कार्य समृद्धि को संगठन विकास का एक महत्वपूर्ण उपकरण माना है । उनके अनुसार व्यक्ति को कार्य से तभी सन्तुष्टि प्राप्त होगी जब उसके कार्य में अधिक दायित्वों, अधिकारों, चुनौतियों एवं अभिप्रेरणात्मक पहलुओं को जोड़कर आकर्षण बनाया जायेगा । संगठन विकास की यह तकनीक नीरसता व उकताहट को न्यूनतम करके व्यक्ति को विकास का अवसर प्रदान करती है ।

(17) नियोजन एवं लक्ष्य निर्धारण

इस तकनीक के द्वारा व्यक्तियों की वैयक्तिक नियोजन करने तथा लक्ष्य निर्धारण करने की योग्यता में सुधार लाया जाता है ।

(18) शिक्षा एवं मार्गदर्शन

इस तकनीक में "संचेतना" कौशल तथा अन्र्तवैयक्तिक कौशल के विकास हेतु प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है ।

(19) उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध

यह नियोजन एवं समस्या समाधान की एक प्रबन्ध प्रणाली है । इसके द्वारा वैयक्तिक एवं संगठनात्मक लक्ष्यों में एकीकरण स्थापित किया जाता है । अधिकारी एवं अधीनस्थ दल संयुक्त रूप से लक्ष्यों व उत्तरदायित्वों के क्षेत्रों को परिभाषित करते है, प्रत्येक क्षेत्र में अपेक्षित परिणामों को निर्धारित करते हैं तथा परिणामों के मूल्यांकन एवं मापन के लिए इन पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को आधार मानते हैं । संगठन विकास की तकनीक के रूप में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध अन्र्तवैयक्तिक एवं अन्त्तसमूह समस्याओं के समाधान का ढाँचा प्रस्तुत करता है । संगठन विकास के सम्बन्ध में इसके अन्य लक्ष्य है- अर्थपूर्ण सम्प्रेषण, निष्पादन में सुधार तथा निर्णयन में अधिकाधिक सहभागिता ।

(20) सहभागी प्रबन्ध

इसमें कर्मचारियों को नियोजन व निर्णयन, लक्ष्य निर्धारण तथा अन्य प्रबन्धकीय कार्यो में सहभागिता प्रदान करके संगठनात्मक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जाता है ।

(21) नियोजन परिवर्तन

संगठन में अनेक प्रकार के नियोजित परिवर्तन करके इसकी प्रभावशीलता एवं निष्पादन में सुधार किया जाता है ।

7.6 संगठन विकास की प्रक्रिया एवं अवस्थाएं

संगठन विकास एक जटिल प्रक्रिया है जो कई वर्षो तक चलती रह है । यद्‌यपि संगठन विकास की कई तकनीकें हैं किन्तु उनकी एक निश्चित प्रक्रिया एवं है । जान पी. कोटर तक वारने के अनुसार संगठन विकास की निम्न अवस्थाएँ है :

(1) प्रबन्ध द्वारा निर्णय

प्रथम अवस्था में उच्च प्रबन्ध संगठन विकास का निर्णय लेता है तथा इसके पश्चात् परामर्शदाता का चयन करता है । इस प्रकार संगठन विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ होता है ।

(2) प्रारम्भिक निदान

इस अवस्था में परामर्शदाता उपक्रम की समस्याओं का निर्धारण है । उच्च प्रबन्धक परामर्शदाता से विचार-विमर्श करके संगठन विकास कार्यक्रम का निर्धारण करते ।

(3) सूचना संकलन

इस अवस्था में संगठनात्मक परिवेश तथा व्यवहारवादी समस्याओं के निर्धारण के लिए सर्वेक्षण किये जाते है । परामर्शदाता समूहों से मिलकर सूचनाओं का संग्रह करता है ।

(4) सूचना पुनर्निवेशन एवं मुकाबला

परामर्शदाता इन सूचनाओं को समीक्षा के लिए कार्य समूहों को सौंपता है तथा परिवर्तन के लिए प्राथमिकताओं का निर्धारण करता है ।

(5) क्रिया नियोजन तक समस्या समाधान

इस चरण में किया योजनायें तैयार की जाती है जिनमें उत्तरदायित्व तथा कार्यवाही समाप्ति की अवधि निश्चित की जाती है । योजनाओं के आधार पर समस्या समाधान करने वाले समूह कार्य प्रारम्भ कर देते है ।

(6) दल निर्माण

परामर्शदाता भूमिका निर्वाह, संचेतना प्रशिक्षण तथा कोड़ाओ के द्‌वारा दलों के सम्बन्धो को सुदृढ़ बनाता है । वह दलों में स्वतन्त्र सम्प्रेषण, विश्वास, एवं पारस्परिक सहयोग के द्‌वारा उनकी कार्यविधि में सुधार लाता है ।

(7) अर्न्तसक्स विकास

परामर्शदाता विभिन्न संगठन विकास के लक्ष्यों के आधार पर परिणामों का विश्लेषण करता है तथा आवश्यकता होने पर अतिरिक्त कार्यक्रम बनाता है ।

(8) मूल्यांकन एवं अनुवर्तन

परामर्शदाता संगठन विकास के लक्ष्यों के आधार पर परिणामों का विश्लेषण करता है तथा आवश्यकता होने पर अतिरिक्त कार्यक्रम बनाता है ।

7.7 संगठन विकास के मॉडल्स

संगठन विकास के निम्न पाँच मॉडल चर्चित हैं, जिनके अध्ययन से संगठन विकास की प्रक्रिया एवं दृष्टिकोण और भी स्पष्ट हो आता है

(1) कुर्त लेविन द्‌वारा प्रतिपादित परिवर्तन मॉडल

(2) लेरी ग्रीनर द्वारा प्रतिपादित आजनुकमिक मॉडल

(3) लीविट द्वारा प्रतिपादित प्रणाली मॉडल

(4) क्रिया अनुसंधान मॉडल

(5) आन्तरिक तन्त्र मॉडल

इसका विवेचन निम्न प्रकार है :

(1) लेविन मॉडल

प्रत्येक संगठन में एक आन्तरिक साम्य बचा होता है । संगठन विकास हेतु परिवर्तनों को लागू करने के लिए पहले संगठन को परिवर्तन के लिए तैयार करना होता है, अन्यथा परिवर्तन का विरोध होता है । संगठन को परिवर्तन के लिए तैयार करने का आशय विद्यमान साम्य को तोडना है, चल रही कार्य-पद्धतियों व व्यवस्था को जड़ता से मुक्त करना है, तथा नयी व्यवस्था के लिए कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना है । तत्पश्चात् संगठन की समस्याओं के समाधान के लिए नये व्यवहार, सम्मुन्नत प्रत्युत्तर व एक नयी व्यवस्था की जाती है । परिवर्तन के फलस्वरूप संगठन एक नये साम्य की ओर गति करता है जिसे पुन: स्थायी बनाना आवश्यक होता है । संगठन विकास के कारण होने वाले सुधारों को संगठन के व्यवहारवादी प्रारूपों, अर्न्तवैयक्तिक सम्बन्धों तथा वैयक्तिक व्यक्तित्वों के साथ एकीकृत करना होता है ।

कुर्त लेविन के अनुसार संगठन विकास की निम्नलिखित तीन अवस्थायें है :

(1) **अहिमीकरण-** इसमें परिवर्तन के लिए आवश्यकता, लक्ष्यशता व अभिप्रेक्ता उत्पन्न करके विकास के मार्ग में प्रतिरोध को न्यूनतम किया जाता है ।

(2) **परिवर्तन-** इसमें संगठन नये व्यवहार, नये सुधारों व नये प्रयोगों की ओर कदम बढ़ाता है ।

(3) **पुर्नहिमीकरण -** इस चरण में नये सुधारों व परिवर्तनों को सम्पूर्ण संगठन, सम्बन्धों, व्यक्तित्व व औपचारिक प्रणाली का आवश्यक अंग बनाया जाता है ।

(2) ग्रीनर का आनुक्रमिक मॉडल-

लेरी ग्रीनर का मत है कि संगठन विकास आनुक्रमिक अवस्थाओं में घटित होता है । संगठन विकास के लिए किये जाने वाले परिवर्तनों व सुधारों का एक अनुक्रम होता है । परिवर्तन प्रक्रिया का प्रारम्भ उच्च प्रबन्ध पर पड़ने वाले किसी बाहय दबाव अथवा उत्तेजक शक्ति के कारण होता है, जिसके फलस्वरूप के प्रबन्धक परिवर्तन की कार्यवाही करने के लिए उत्पेरित हो जाते हैं ।

(3) लीविट का प्रणाली मॉडल

लीविट का प्रणाली मॉडल परिवर्तन प्रकिया में विभिन्न उप-प्रणालियों की अन्तक्रियाशील प्रकृति पर बल देता है । लीविट का मत है कि संगठन चार उप प्रणालियों कार्य. संरचना, व्यक्ति तथा प्रौद्योगिकी से मिलकर बनी एक प्रणाली है । किसी भी एक प्रणाली में किये गये परिवर्तन का प्रभाव दूसरी उप-प्रणालियों पर पड़ता है । अत: संगठन विकास के प्रयासों में केवल इच्छित परिवर्तन पर ही नहीं वरन दूसरी उप-प्रणाली पर पड़ने वाले उसके प्रभाव पर भी विचार किया लाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, परिस्थिति का निदान करते हु ये परिवर्तन किसी भी एक

उप-प्रणाली में, जा सकता है । नियोजन परिवर्तन एव संगठन की प्रक्रिया इस प्रणाली दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिए ।

(4) क्रिया अनुसंधान मॉडल

किसी भी संगठन में संगठन विकास की आवश्यकता अथवा समस्यायें उत्पन्न होने पर परिवर्तन एजेन्ट के द्वारा संगठन के सदस्यों से सूचनायें एकत्रित की जाती है तथा समस्या का, निदान किया जाता है । परिवर्तन एजेण्ट एकत्रित सूचनाओं का विश्लेषण करके संगठन सदस्यों को पुनर्निवेश करता है ताकि वे विशिष्ट कार्यवाही करने से सम्बन्धित योजनाओं के विकास में सहायक हो सके। एकत्रित सूचनायें संगठन की शक्तियों, कमजोरियों, समस्याओं, अवसरों आदि से सम्बन्धित होती हैं सूचनाओं के विश्लेषण के पश्चात क्रिया योजनाओं का विकास किया जाता है जो सम्पूर्ण संगठन अथवा सम्बन्धित इकाइयों में लागू की जाती है । बाद मे मूल्यांकन अवस्था में योजनाओं के परिणामों की समीक्षा की जाती है तथा आवश्यक सुधार करने हेतु सूचनाओं की प्रतिपुष्टि की जाती है ।

(5) लिकर्ट का आन्तरिक तंत्र मॉडल

कई संगठनो में शोध निदान से यह स्पष्ट हो जाता है कि संगठन के ढ़ॉचे अथवा प्रबन्धकीय व्यवहार में परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता है । संगठन विकास के सम्बब्ध में रैन्सिस लिकर्ट ने आन्तरिक तंत्र मॉडल का विकास किया है । यह मॉडल कम्पनी के मानवीय संगठन के आयामों को विभिन्न घटकों की तीन वृहत श्रेणियों में बाँटता है । ये घस्क निम्न प्रकार है :

(अ) आकस्मिक तत्व- ये तत्व संगठन मे होने वाले विकास की दिशा तथा संगठन द्वारा प्राप्त किये जाने वाले परिणामों को निर्धारित करते हैं । ये वे स्वतन्त्र घटक हैं जो संगठन तथा इसके प्रबन्धारकों द्वारा परिवर्तित किये जा सकते है । इनमें संगठन संरचना, प्रबन्धकीय नीतियां, निर्णय, नेतृत्व, व्यूहरचनायें, कौशल एवं व्यवहार शामिल है ।

(ब) मध्यवर्ती तत्व- ये तत्व संगठन की आन्तरिक स्थिति एवं स्वास्थ्य को दर्शाते हैं । इनमें सदस्यों की स्वामिभक्त, अभिवृत्तियाँ, अभिप्रेरणायें, निष्पादन लक्ष्य, संगठन सदस्यों अवबोध, उनकी अर्न्तव्यावहार की क्षमता, सम्प्रेषण, निर्णयन आदि घटक सम्मिलित है ।

(स) अन्तिम परिणाम तत्व- ये निर्भर घटक है जो संगठन की उपलब्धियों को दर्शाते है । इनमें उत्पादकता, लागतें, हानि तथा आय सम्मिलित हैं ।

इस मॉडल के अनुसार आकस्मिक घटक मध्यवर्ती घटकों को प्रभावित करते है जो अन्ततः अन्तिम परिणाम घटकों को प्रभावित करते हैं । प्रबन्ध को आकस्मिक तत्वों में परिवर्तन करके संगठन विकास, को गति देना चाहिए । उपयुक्त घटकों के आधार पर संगठन की विद्यमान स्थिति का विश्लेषण करके संगठन को श्रेष्ठ स्थिति की ओर ले जाया जा सकता है ।

7.8 साराश

इस परिवर्तनीय युग में जहां परिवर्तन प्रकृति का नियम है वहां संगठन को भी नित्य नये-नये परिवर्तनों का सामना करना पड़ता है । व्यापक परिवर्तन नियोजित विकास, दीर्घकालीन

विकास, प्रणालीबद्ध दृष्टिकोण आदि प्रबन्धकीय विकास के लक्षण हैं । संगठन विकास की आवश्कताएँ इस लिए भी बढ़ जाती है कि काम करने वाले व्यक्तियों के विश्वास, सम्प्रेषण एवं सहयोग भा स्तर बढ़े व संगठनात्मक प्रभावशीलता में वृद्धि के साथ इच्छित लाभों की प्राप्ति की जा सके इस सम्बद्ध में विभिन्न तकनीकों का प्रयोग भी प्रबन्धक को जानना अनिवार्य है, जैसे संवेदनशीलता प्रशिक्षण, संगठन विकास ग्रिड, दल निर्माण, क्रिया अनुसंधान, उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध, सहभागी प्रबन्ध इत्यादि । संगठन विकास की प्रक्रिया को आठ प्रमुख चरणों में बांटा जा सकता है- जो जानकारी, स्वीकृति, तत्परता एवं वचनबद्धता, निदान एवं खोज, क्रियान्वयन, सुधार का मापन, संस्थापन, स्व-पुनरारम्भ है । संगठन विकास के पांच मॉडल बहुत चर्चित हैं - कुर्ट लेविन द्वारा प्रतिपादित परिवर्तन मॉडल, लेटी ग्रीनर द्वारा प्रतिपादित आनुक्रमिक मॉडल, लीविट द्वारा प्रतिपादित प्रणाली मॉडल, क्रिया अनुसंधान मॉडल, एवं आन्तरिक तन्त्र मॉडल । पर्यटन के क्षेत्र में नित नये परिवर्तनों की संगठन विकास में एक अहम भूमिका है, क्योंकि पर्यटन प्रबन्धक को इको टूरिज्ज, मेडिकल टूरिज्म, न्यू एज दूरिज्म, एडवेञ्चर टूरिज्ज, जैसद नवीन प्रवृत्तियों से अपने कर्मचारियों को अवगत कराना होता है एवं उनका उचित विकास करना होता है ।

7.9 अपनी प्रगति को जानने के लिए अभ्यास

1. संगठन विकास का अर्थ एवं परिभाषा स्पष्ट करते हुये इसके लक्षणों का वर्णन कीजिये।

....

....

....

....

2. संगठन विकास की प्रमुख तकनीकें कौनसी है?

....

....

....

....

3. संगठन विकास की प्रक्रिया एवं अवस्थाओं की विवेचना कीजिए ।

....

....

....

....

4. संगठन विकस के निम्न मॉडलों की व्याख्या कीजिए :

(अ) लेविन का परिवर्तन मॉडल

....

....

....

....

(ब) क्रिया अनुसंधान मांडल

....

....

....

....

5. संगठन विकास की एक पर्यन्त संगठन में क्या उपयोगिता है?

....

....

....

....

इकाई-8: स्टाफिंग कार्य

ढांचा

8.0 उद्देश्य
8.1 परिचय
8.2 कर्मचारियों की नियुक्ति का अर्थ
8.3 प्रकृति एवं कार्यक्षेत्र
8.4 महत्व
8.5 कर्मचारियों की नियुक्ति की प्रक्रिया
8.6 अधिशाषी प्रशिक्षण एवं विकास
8.7 अपनी प्रगति को जानने के लिये अभ्यास

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे :-

(अ) कर्मचारी नियुक्ति की प्रकृति एवं कार्यक्षेत्र को समझने में ।

(ब) संगठन में कर्मचारी-नियुक्ति का महत्व जानने में ।

(स) कर्मचारी नियुक्ति की प्रक्रिया को जानने में ।

(द) कर्मचारियों के प्रशिक्षण एवं विकास की प्रक्रिया को समझने में ।

8.1 परिचय

किसी भी पर्यटन संगठन में नियोजन एवं संगठन संरचना के बाद कर्मचारियों की भर्ती, चयन, विकास व प्रशिक्षण का कार्य महत्वपूर्ण हो जाता है । भर्ती किये गये कर्मचारियों के प्रकार, भर्ती व चयन के तरीकों, कर्मचारियों की योगिता , दृष्टिकोण अभिवृति, कार्य के प्रति उनके, व संगठन के प्रति उनके सोच का कार्य निष्पादन व प्रबन्ध पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है । योग्य व गुणी कर्मचारियों की भर्ती प्रबन्ध के अन्य कार्यो जैसे अभिप्रेरण ,नियंत्रण, समन्वय, आदि को भी प्रभावी बना देता है । एक संगठन तभी सफल हो सकता है जबकि उसमें कार्य करने वाले कर्मचारी अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करें यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि योग्य कर्मचारियों का चयन हो ।

8.2 कर्मचारियों की नियुक्ति का अर्थ

पर्यटन प्रबन्ध के विभिन्न कार्यो में कर्मचारियों की नियुक्ति एक महत्वपूर्ण कार्य है कुछ विद्वानों के विचार में कर्मचारियों की नियुक्ति को प्रबन्ध का पृथक कार्य नहीं माना जाना चाहिए । उनकी सम्मति में संगठन कार्य में, कर्मचारी-नियुक्ति का कार्य भी सम्मिलित होता है इस विचारधारा में सत्यता का कुछ अंश होते हुए भी इसे पूर्णत: सत्य नहीं माना जा सकता । संगठन-कार्य में मुख्यत: संगठनात्मक संरचना की स्थापना करना आता है, न कि उस संचना में व्यक्तियों की नियुक्ति । आप देख ही चुके है कि संगठन की संकल्पना में विभागीयकरण,

सत्ता तथा दायित्व, सत्ता का प्रत्यायोजन, केन्द्रीयकरण अथवा विकेन्द्रीयकरण तथा प्रबन्ध क्षेत्र का विस्तार जैसे विषय सम्मिलित किए जाते हैं, न कि व्यक्तियों की नियुक्ति से सम्बन्धित ज्ञान अथवा दृष्टिकोण । आपने प्रबन्ध के इतिहास का अध्ययन किया है । इस अध्ययन में आपने ध्यान दिया होगा कि प्रबन्ध में मानवीय दृष्टिकोण की विचारधारा का आगमन बहुत विलम्ब से हुआ। इसका प्रभाव यह पड़ा है कि पूर्व में कर्मचारी-नियुक्ति जैसे महत्वपूर्ण कार्य की अवहेलना की गई । इसे अब प्रबन्ध का एक पृथक कार्य स्वीकार कर, भूल- सुधार की कोशिश की जा रही है जो आवश्यक भी है । इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में विगत कुछ वर्षो में जो ज्ञान का विस्फोट हुआ है, उस कारण से भी इसे प्रबन्ध का एक विशिष्ट कार्य स्वीकार किया गया है ।

अर्थ- कर्मचारी-नियुक्ति का अर्थ योग्य व्यक्तियों का चयन कर, उन्हें उपयुक्त कार्य पर लगाना है । पर्यटन प्रबन्धक का लक्ष्य यह होता है कि वह पर्यटन संगठन में इस प्रकार के वातावरण का निर्माण करे, ताकि योग्य व्यक्तियों को संगठन की ओर आकर्षित किया जा सके, एवं श्रेष्ठतर निष्पादन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके ।

1. **टैरी** की दृष्टि में नियुक्ति का कार्य सन्तोषजनक एवं सन्तुष्ट कार्य-शक्ति को प्राप्त करने एवं बनाए रखने से सम्बन्धित है । उनके अनुसार योग्य व्यक्तियों का चयन अपने आप में एक कठिन कार्य है, लेकिन उन्हें बनाए रखना एवं सन्तुष्ट रखना और भी कठिन है ।

2. **कुन्ट्ज एवं ओ'डोनेल** के अनुसार, "कर्मचारी नियुक्ति के अन्तर्गत उपयुक्त एवं प्रभावकारी चयन एवं अंकन प्रक्रिया द्वारा जन - संयोजन तथा व्यक्तियों का विकास करना आता है ताकि वे संगठन संरचना में अभिकल्पित भूमिका का निर्वाह कर सकें । इस प्रकार कर्मचारी-नियुक्ति में प्रबन्धकों एवं कार्मिकों का चयन, उन्हें काम पर लगाना, उनका मूल्यांकन, प्रशिक्षण एवं विकास करना कार्यो को समाविष्ट किया जाता है ।"

8.3 प्रकृति एवं कार्य क्षेत्र

प्रकृति- कर्मचारी नियुक्ति की प्रकृति का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है

(1) इसका सम्बन्ध पूर्ण मनुष्यों से होता है

इस कार्य की अपनी कुछ जटिलताएँ है जो प्रबन्ध के अन्य कार्यो में दृष्टिगोचर नहीं होती । जैसे, कर्मचारियों को निर्देशित करना, अभिप्रेरित करना नियंत्रण करना आदि । साथ ही साथ प्रबन्धक जिस प्रकार सुनिश्चितता से अपने अन्य कार्यो का आयोजन एवं संगठन कर सकता है, उतनी निश्चितता से कर्मचारी-नियुक्ति के कार्य का आयोजन एवं संगठन नहीं कर सकता । मानव से सम्बन्ध एवं अनिश्चितता की वजह से प्रबन्ध को पग-पग पर नैराश्य एवं विफलता का सामना करना पड़ता है । शायद इन कारणों से भी प्रबन्ध में इस कार्य विशेष का महत्व और अधिक बढ़ जाता है ।

(2) प्रबन्धकीय दायित्व चाहे वे प्रबन्ध के किसी स्तर पर क्यों न हो कर्मचारी नियुक्ति से सम्बन्धित होते है । इस सम्बन्ध में एक प्रचलित भ्रान्ति यह है कि प्रबन्धक कर्मचारी नियुक्ति

के कार्य को विशेषज्ञों को सौंप कर स्वयं इस कार्य से मुक्त हो जाता है । लेकिन ऐसा सोचना गलत है विशेषज्ञ सलाह दे सकता है । लेकिन रेखीय प्रबन्धक का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता । अत: अन्तिम दायित्व तो मुख्यधारा प्रबन्धक का ही रहता है ।

(3) सामाजिक दायित्व

कर्मचारी नियुक्ति के निष्पादन में, प्रबन्धक के सामाजिक दायित्व का पहलू अत्यन्त महत्वपूर्ण है । कर्मचारियों की भर्ती, वेतन, पदोन्नति, अभिप्रेरण, बोनस, ओवर टाइम, विकास, पद मुक्ति आदि सभी ऐसे कार्य है जो समाज को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं । प्रबन्धक का यह दायित्व है कि बिना किसी प्रकार के वर्ग, जाति, लिंग, भाषा, धर्म एवं क्षेत्रीय भेदभाव के निष्पक्षता से कर्मचारी नियुक्ति का कार्य करे ।

(4) वातावरण का प्रभाव

हमने प्रबन्ध का अध्ययन एक खुली प्रणाली के रूप में किया है । कर्मचारी नियुक्ति इस खुली प्रणाली का एक ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है । कर्मचारियों की भर्ती एवं चयन देश की शिक्षा प्रणाली वेतन-मूल्य स्तर पदोन्नति, पदमुक्ति आदि नीतियों पर आश्रित रहती है । इस प्रकार कर्मचारी-नियुक्ति पर देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है ।

कार्य क्षेत्र- नियुक्ति के अन्तर्गत निम्नाकिंत कार्यो का समावेश किया जाता है :

(1) व्यवस्थित रूप में कर्मचारियों की भर्ती एवं चयन करना,

(2) कर्मचारियों का वर्गीकरण एवं वेतन-योजना बनाना ।

(3) कामचोरियों को योग्यतानुसार कार्य सौंपना ।

(4) प्रशिक्षण एवं विकास की उपयुक्त व्यवस्था करना ।

(5) पदोन्नति एवं स्थानान्तरण की सन्तोषजनक एवं निष्पक्ष व्यवस्था करना ।

(6) प्रबन्ध-कार्मिक सम्बन्धों को मधुर बनाना ।

(7) सेवा निवृत्ति के पर्याप्त प्रावधान करना ।

टैरी ने कर्मचारी नियुक्ति के - सम्बन्ध में उल्लेख किया है कि इसका क्षेत्र अति व्यापक है तथा एक उपक्रम से दूसरे उपक्रम में कुछ न कुछ अन्तर पाया जाना स्वाभाविक है । उनके अनुसार समस्त कार्य को तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है-

1. योग्य व्यक्तियों की अवाप्ति,

2. योग्य कर्मचारियों को संगठन में रोके रखना, तथा

3. वैयक्तिक उत्पादकता में वृद्धि ।

महत्व- किसी भी संगठन की सफलता के लिए, कर्मचारी नियुक्ति का कार्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । व्यावसायिक प्रतिष्ठानों की समस्त क्रियाएं जैसे सेवा प्रदाय, विपणन, माल का क्रय आदि मनुष्यों द्वारा ही निष्पादित की जाती है । अत: इन क्रियाओं के कुशलतापूर्ण संचालन में मशीनों, तकनीकों एवं पद्धतियों से अधिक महत्व 'मनुष्यों' का होता है जो सेवाएँ देते हैं, तकनीकों का प्रयोग करते है एवं पद्धतियों का विकास करते है । पर्यटक प्रबन्धक का कर्तव्य है कि इन सभी निष्क्रिय संसाधनों के संचालन के लिए योग्यतम व्यक्तियों की नियुक्ति करे ।

यहाँ यह अप्रासंगिक नहीं होगा कि किसी भी नेता की सफलता का रहस्य,उसके इस गुण में निहित है वह व्यक्तियों को पहचान कर, उनकी योग्यतानुसार कार्य सौंपे ।

कर्मचारी नियुक्ति का महत्व इस तथ्य से और स्पष्ट हो जाता है व्यवसाय की सभी समस्याओं का मानवीय पहलू होता है । उदाहरण के लिए विक्रय संवर्द्धन का एक तकनीकी पक्ष तो यह है कि प्रत्येक विक्रेता का बिक्री कर का कोटा बढ़ाया जाये, नये उत्पादों का किया जाये, एवं मूल्य नीति में आवश्यक संशोधन या परिवर्तन किये जायें । इस समस्या का एवं महत्वपूर्ण पक्ष मानवीय है और वह है, विक्रय-संवर्द्धन की समस्या से निपटने के लिए योग्य, कुशल एवं निष्ठावान विक्रेताओं के दल का चयन एवं विकास करना । व्यवसाय की सभी समस्याओं चाहे वे उत्पादन में वृद्धि लागत में कमी, अन्वेषण एवं विकास से सम्बन्धित हो, मानवीय पक्ष प्रबल एवं महत्वपूर्ण होता है ।

प्रबन्ध द्वारा मानवीय दृष्टिकोण की विचारधारा के अपनाये जाने से -नियुक्ति का महत्व स्वत: स्पष्ट हो जाता है । यदि प्रबन्धकों के समय बजट का अध्ययन किया जाय तो हम पाऐंगे कि कर्मचारी वर्ग से सम्बन्धित समस्यायें ही, उनके समय का अधिक भाग लेती । इससे प्रबन्ध कार्यो में कर्मचारी नियुक्ति का महत्व स्पष्ट होता है ।

राजनैतिक क्षेत्र में- प्रजातन्त्र, आर्थिक क्षेत्र में समाजवादी समाज की रचना, सामाजिक क्षेत्र में-प्रबन्ध में कार्मिकों की सहभागिता जैसी विचारधाराओं को अपनाना, समाज में मनुष्य के बढ़े हुए महत्व का परिचायक है । प्रबन्धक, विद्यमान वातावरण एवं उसमें हो रहे की अनदेखी नहीं कर सकते । उनकी सफलता तो भविष्य का सही अनुमान लगाने में निहित है । अत: कर्मचारी-नियुक्ति के बढ़ते हुये महत्व को पहचानकर उसे व्यवसाय-प्रबन्ध में उचित स्थान प्रदान करना स्वाभाविक ही है ।

मानवीय सम्बन्धों की जटिलतायें, उनमें निश्चयात्मक का अभाव, प्रायोगिक परीक्षण के फलस्वरूप ज्ञान की वृद्धि, नई तकनीकों एवं पद्धतियों का विकास जैसी कुछ विशेषताओं ने कर्मचारी नियुक्ति के महत्व को और भी बढ़ाया है ।

मानव शक्ति का निर्धारण

कर्मचारी नियुक्ति के प्रक्रम में सबसे पहला कदम पर्यटन संगठन की मानव शक्ति आवश्यकताओं का निर्धारण करना है । मानव-शक्ति की आवश्यकताओं के सही निर्धारण से ही इसके भावी नियोजन की आधारशिला रखी जा सकती है ।

मानव शक्ति का निर्धारण संगठन की भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है । इसके लिए यह आवश्यक है कि संगठन की भावी विकास योजनाओं को मानव-शक्ति की आवश्यकताओं में परिवर्तित करें तथा संगठन में कार्यरत मानवीय आवश्यकता का, परिमाणात्मक एवं गुणात्मक, एवं विश्वसनीय लेखा-जोखा तैयार करें ।

मानव शक्ति के दो पक्ष होते है - परिमाणात्मक एवं गुणात्मक । परिमाणात्मक पक्ष के अन्तर्गत, कार्मिकों एवं विभिन्न प्रबन्ध स्तरों पर कार्यरत एवं अपेक्षित प्रबन्धकों की संख्या का विवेचन आता है । जबकि गुणात्मक पक्ष में कार्य सम्पादन के लिए आवश्यक कौशल, चातुर्य,

शिक्षा एवं मनोवैज्ञानिक गुणों का विवेचन किया जाता है । पहले हम मानव शक्ति के परिमाणात्मक पहलू का अध्ययन करेंगे ।

मानव-शक्ति के परिमाणात्मक पक्ष का अध्ययन करने के लिए सबसे पहले व्यक्तियों के संगठन में प्रवेश, अन्तर वाही एवं विकास सम्बन्धी प्रवाह को भूतकालिक प्रवृतियों का अध्ययन एवं विश्लेषण करना होता है । यह आवश्यक नहीं कि भूतकालिक प्रवृतियों में भी ठीक उसी प्रकार पुनरावृति हो, फिर भी ये प्रवृतियाँ भविष्य का पूर्वानुमान लगाने में सहायक सिद्ध होती हैं ।

परिमाणात्मक पक्ष के अध्ययन की दिशा में दूसरा कदम है, संगठन की भावी विकास योजनाओं का सही-सही ज्ञान प्राप्त करना । इन विकास योजनाओं में उत्पाद एवं सेवाओं की मांग, तकनीक सम्बन्धी परिवर्तन एवं आपूर्ति से सम्बद्ध परिवर्तनों का अध्ययन अन्तर्निहित है । कार्य प्रमापों की सहायता से भावी विकास योजनाओं को मानव शक्ति की अपेक्षित संख्या में परिवर्तित किया जाता है । विद्‌यमान मानव शक्ति का, अपेक्षित मानव शक्ति से समायोजन करने के उपरान्त मानव शक्ति की परिमाणात्मक आवश्यकता की जानकारी प्राप्त की जा सकती है ।

अब हम गुणात्मक पक्ष का विवेचन करना चाहेंगे । गुणात्मक पक्ष के विवेचन के लिए यह आवश्यक है कि कार्य विश्लेषण किया जाये ।

समझने की दृष्टि से कार्य विश्लेषण को दो खण्डों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम खण्ड में किए जाने वाले कार्य का विवरण आता है तथा दूसरे खण्ड में उस कार्य के निष्यादनार्थ, जिस ज्ञान एवं कौशल की आवश्यकता होती है का विवरण जिसे 'कार्य विशिष्ट विवरण' कहा जाता है । कार्य विशिष्ट विवरण की आवश्यकता इसलिए उत्पन्न होती है कि विभिन्न संगठनों में समान नामधारी पदों के दायित्व भिन्न-भिन्न हो सकते हैं । अत: पद का नाम, पद-दायित्वों का पूर्ण, एवं यथार्थ परिचय प्रदान करने की दृष्टि से अपर्याप्त रहता है । इस भ्रम जाल से निकलने के लिए कार्य-विवरण अपेक्षित ज्ञान एवं कौशल की आवश्यकता का अनुमान लगाने के लिए आवश्यक होता है ।

कार्य-विवरण एवं कार्य विशिष्ट-विवरण तैयार कर लेने के उपरान्त, भावी विकास योजनाओं में तकनीकी परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए गुणात्मक रूप में प्रकट करने की आवश्यकता होती है । यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि हमारे पास विद्‌यमान मानव शक्ति की गुणात्मक तालिका (जो उपलब्ध अभिलेख की सहायता से बनाई जाती है)तैयार होनी चाहिए । यहाँ यह उल्लेख करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि सामान्यत: व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में मानव-शक्ति के गुणात्मक पक्ष की अवहेलना की जाती है इसके दो कारण प्रमुख हैं- प्रथम, कार्य विशिष्ट विवरण तैयार नहीं करना तथा दूसरा, अभिलेखों के अभाव में कर्मचारियों की गुणात्मक तालिका तैयार करने में असमर्थता । अत: आवश्यकता इस बात की है कि भविष्य में मानव-शक्ति निर्धारण के दोनों पक्षों को समान महत्व प्रदान किया जाए ।

कार्य विवरण- कार्य विश्लेषण को दो खण्डों में बाँटा गया था । कार्य विवरण उसका प्रथम खण्ड है । कार्य विवरण में किसी विशिष्ट कार्य के कर्तव्यों एवं दायित्वों का वर्णन है साथ ही साथ

कार्य की दशाएँ, उसका अन्य कार्यो के साथ सम्बन्ध एवं कार्य निष्पादन के लिए प्रयुक्त मशीनों तथा औजारों का विवरण भी दिया जाता है । कार्य विवरण संक्षिप्त, बोधगम्य एवं स्पष्ट चाहिए जिससे कि उसे पढ़ कर, कार्य अपेक्षाओं का ज्ञान हो सके । कार्य विवरण में सामान्यता निम्नांकित विवरण अधोलिखित क्रम में दिए जाते है-

1. कार्य की पहिचान के लिए कार्य का शीर्षक अथवा नाम दिया जाता है ।
2. किए जाने वाले कार्य का संक्षिप्त विवरण ।
3. अपेक्षित कर्तव्य ।
4. पर्यवेक्षण, जो वरिष्ठ अधिशाषी द्वारा इस कार्य के लिए इस कार्य के निष्पादक द्वारा अन्य अधीनस्थ कार्यो के लिए दिया जाएगा ।
5. अन्य कार्यो से सम्बन्ध ।
6. मशीन उपकरण एवं सामग्री ।
7. कार्य दशाएँ ।
8. असामान्य शब्दावली की परिभाषाएँ, तथा
9. अन्य स्पष्टीकरण ।

संक्षेप में क्या किया जाना है? कैसे किया जाना है? और क्यों जाना है? का संगठित वर्णन ही कार्य विवरण कहलाता है ।

कार्य विशिष्ट विवरण- कार्य विश्लेषण का दूसरा खण्ड कार्य विशिष्ट विवरण के नाम से जाना जाता है । कार्य विशिष्ट विवरण उन न्यूनतम मानवीय आवश्यकताओं की विवरण है जो कार्य विवरण में वर्णित कार्य के निष्पादनार्थ आवश्यक है ।

मानवीय आवश्यकताओं में शारीरिक, शिक्षा एवं अनुभव सम्बन्धी योग्यताओं का वर्णन किया जाता है । इसके अतिरिक्त व्यक्तित्व, चतुर्थ एवं अन्र्तवैयक्तिक सम्बन्धों विषयक योग्यता का उल्लेख भी कार्य विशिष्ट विवरण में दिया जाता है । कार्य विशिष्ट विवरण को तैयार । करना अत्यन्त कठिन कार्य है । यह व्यक्ति परकता के दोष से ग्रसित रहते है । किसी कार्य के लिए न्यूनतम शारीरिक लम्बाई योग्यता 5'6" होनी चाहिए या 5'5', शैक्षणिक योग्यता हाईस्कूल होनी चाहिये या इन्टरमीडिएट आदि कुछ ऐसे विषय है जिनमें मतैक्य होना सम्भव नहीं है । इससे भी अधिक कठिनाई आती है व्यक्तित्व, चतुर्थ एवं अन्र्तवैयक्तिक सम्बन्ध विषयक योग्यताओं की व्याख्या करने में । व्याख्या के, अतिरिक्त अधिकारपूर्वक यह उल्लेख करना कि निर्दिष्ट योग्यता प्राप्त व्यक्ति ही कार्य के निष्पादन करने की क्षमता रखता है अन्य नहीं, भी ठीक नहीं है । योग्यताओं के विभिन्न क्रमचय तथा संयोग तय किये जा सकते हैं तथा किसी कार्य के निष्पादनार्थ योग्यताओं के एक से अधिक क्रमचय एवं संयोग, न्यूनतम अपेक्षित मानवीय आवश्यकताओं के रूप में गाह्य हो सकते है ।

उपयुक्त वर्णित कठिनाइयों के कारण कुछ प्रतिष्ठानों ने कार्य विशिष्ट विवरण को तैयार करना ही बन्द कर दिया है । इस प्रकार के प्रतिष्ठान कार्मिकों के चयन के समय, चयनकर्ता को कार्य विवरण उपलब्ध करा देते हैं, तथा शेष निर्णय चयनकर्ता पर छोड़ देते हैं । लेकिन इस स्थिति को सुखद नहीं माना जा सकता । क्योंकि प्रतिष्ठान ने चाहे कार्य विशिष्ट

विवरण न तैयार किया भी हो तो भी चयनकर्ता को अपने मस्तिष्क में कुछ न कुछ कार्य विशिष्ट विवरण तैयार करना ही पड़ता है । यदि चयनकर्ता एक से अधिक हैं तो प्रत्येक चयनकर्ता का कार्य विशिष्ट विवरण पृथक-पृथक हो सकता है । इस प्रकार के विशिष्ट विवरण जल्दबाजी में तैयार किये जाते हैं तथा इनका प्रमाणीकरण कर सकना भी अत्यन्त दुष्कर है

कार्य विशिष्ट विवरण बहुत सोच विचार कर बनाये जाने चाहिए । प्रत्येक अपेक्षित योग्यता को तथा सम्भव परिमाण स्थिर किया जाना चाहिए । विशिष्ट विवरण स्पष्ट, बोधगम्य एवं स्वत: व्याख्यात्मक होना चाहिए ।

8.5 कर्मचारियों की नियुक्ति की प्रक्रिया

चयन की कार्य विधि - चयन की कार्य विधि में साक्षात्कार आदि अनेक बातों का अध्ययन करेंगें, जो चयन प्रकिया का अंग माने जाते हैं । सबसे पहले एक चार्ट के माध्यम से हम चयन की कार्य-विधि समझायेंगे । चार्ट को चयन विधि के प्रवाह चार्ट के नाम से जाना जाता है । इसे हम आगे एक चित्र के माध्यम से कर रहे हैं ।

चयन प्रक्रिया का आरम्भ भर्ती से होता है । भर्ती प्रत्याशित कर्मचारियों की खोज एवं उन्हें संगठन में आवेदन करने के लिए प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है । भर्ती का उद्देश्य, चयन अनुपात में वृद्धि करना है । चयन-अनुपात से हमारा प्रयोजन, उपलब्ध रिक्त स्थानों के लिए आवेदन कर्ताओं की संख्या से है । चयन-अनुपात के अधिक होने की दशा में, उपयुक्त प्रत्याशियों के चयन की सम्भावना बढ़ जाती है । भर्ती की तुलना में चयन की प्रकृति नकारात्मक होती है, क्योंकि आवेदन कर्ताओं के निरसन का प्रयत्न किया जाता है ताकि योग्यतम अभ्यार्थी ही शेष रहें और उन्हें कार्य पर लगा लिया जाए ।

भर्ती करते समय संगठनों को श्रम-बाजार की प्रकृति तथा मानव शक्ति के स्तोत्रों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है । नियुक्ति के लिए आवेदनकर्ताओं की संख्या इस बात पर आश्रित रहती है । कि कार्य की प्रकृति क्या है? एवं रिक्त पदों की संख्या कितनी है? देश में विधमान आर्थिक-स्थितियाँ, कौशल का उपलब्ध होना, भर्ती करने वाली कम्पनी की साख आदि अन्य तत्व हैं जो भर्ती को प्रभावित करते हैं ।

किसी भी कम्पनी में भर्ती दो स्त्रोतों से की जा सकती है । ये स्त्रोत आन्तरिक तथा बाहय के नाम से जाने जाते है । आन्तरिक स्त्रोत से तात्पर्य है कम्पनी में काम कर रहे कर्मचारियों में से कुछ व्यक्ति अपने आप को अभ्यार्थी आवेदनकर्ता के रूप में प्रस्तुत करें । इस स्त्रोत का प्रयोग करने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि कम्पनी के वर्तमान कर्मचारियों के कौशल, योग्यता एंव अनुभव की तालिका तैयार की जाए । साथ ही कम्पनी में छंटनी तथा भर्ती सम्बन्धी कार्यक्रमों में समन्वय रखा जाए । इस प्रकार का समन्वय केन्द्रीय रूप में सेविवर्गीय विभाग द्वारा किया जा सकता है आन्तरिक भर्ती का लाभ यह होता है कि इससे कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि होती है तथा शीर्षकृत वृतशीलता की बढ़ी हुई सम्भावना के फलस्वरूप छोटे पदों के लिए भी अधिक योग्यता प्राप्त व्यक्ति उपलब्ध हो सकें ।

भर्ती का दूसरा स्त्रोत बाहय कहलाता है । जिसमें कम्पनी के वर्तमान कर्मचारियो को छोडकर अन्यत्र कार्य कर रहे कर्मचारी एवं रोजगार के इच्छुक अभ्यर्थी स्वयं को आवेदनकर्ता के

रूप में प्रस्तुत करते हैं । यदि भर्ती कम्पनी में विद्यमान निम्नतर पदों के लिए की जा रही हो अथवा कम्पनी का विस्तार किया जा रहा हो अथवा अपेक्षित प्रतिभा, कौशल आदि कम्पनी के वर्तमान कर्मचारियों में उपलब्ध न हो तो इस स्थिति में बहाव स्त्रोत के अतिरिक्त भर्ती के अल किसी स्त्रोत का उपयोग सम्भव नहीं है ।

अन्त में यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि यदि कम्पनी पूरी तौर से भर्ती के आन्तरिक स्त्रोत पर आश्रित रहती है तो कम्पनी को कर्मचारी प्रशिक्षण की व्यापक व्यवस्था करनी होगी । लेकिन बाहय बाजार में उपलब्ध प्रतिभा के लिए कम्पनी द्वारा भर्ती के द्वार बन्द करने से अन्त: प्रजनन की जो प्रक्रिया आरम्भ होती है वह दीर्घकाल में कम्पनी के विकास एवं प्रसार की दृष्टि से घातक सिद्ध हो सकती है । इनके अतिरिक्त प्रतिभा से स्थान पर प्रभावशाली कर्मचारियों के चयन की सम्भावनाएं अधिक रहती है । आन्तरिक एवं बाह्य भर्ती के स्त्रोत के गुणा-दोषों का विवेचन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भर्ती में इन दोनों स्त्रोतों का समुचित प्रयोग किया जाना चाहिए । निम्न स्तरीय पदों के लिए आन्तरिक स्त्रोत तथा उच्च स्तरीय पदों के लिए बाह्म स्त्रोत का तुलनात्मक दृष्टि से अधिक महत्व है ।

यदि भर्ती के बाहय स्त्रोत का प्रयोग किया जाता है तो विज्ञापन तथा रोजगार दफ्तरों जैसी एजेन्सियों की सहायता लेनी होगी । कम्पनी के वर्तमान कर्मचारी तथा श्रम संगठन भी बाहय प्रतिभा की खोज में सहायक सिद्ध हो सकते हैं । यदि विशेष तकनीकी ज्ञान एवं उच्च स्तरीय प्रतिभा की तलाश है तो भर्ती करने वाले अधिकारियों को तकनीकी प्रशिक्षण संस्थानों एवं तकनीकी विशेषज्ञों के संगठन तथा उनके सम्मेलनों में जाकर भर्ती करनी होगी । भारतवर्ष में भी जहाँ बेरोजगारी बहुत अधिक है, प्रबन्ध-स्तरीय पदों पर भर्ती के लिए, बड़ी-बड़ी कम्पनियां, प्रबन्ध संस्थानों जैसे भारतीय पर्यटन एवं यात्रा प्रकम्प संस्थान, ग्वालियर, भारतीय प्रबन्ध संस्थान, अहमदाबाद या कलकत्ता या बंगलौर में जाकर भर्ती करते हैं ।

भारत में उपयोग में लाये जाने वाले भर्ती के स्त्रोत :

भारत में निजी एवं सार्वजनिक दोनो ही क्षेत्रों में योग्य कार्मिकों की प्राप्ति के लिए कई स्त्रोतों का उपयोग किया जाता है । एक अध्ययन के अनुसार हैवी इन्जीनियरिंग के क्षेत्र में एक सार्वजनिक उपक्रम ने गैर-पर्यवेक्षीय कर्मचारियों की भर्ती निम्न स्त्रोतों से की है -

(1) रोजगार कार्यालय ।

(2) बाहय विज्ञापन ।

(3) आन्तरिक विज्ञापन ।

(4) केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान ।

(5) निगम के सम्पर्क-अधिकारी द्वारा दिया गया परिचय ।

(6) कार्मिकों की प्रतिनियुक्ति, तथा

(7) अन्य राजकीय उपक्रमों से स्थानान्तरण ।

अन्य राजकीय उपक्रम में प्रथम प्राथमिकता विस्थापित व्यक्तियों को दी गई लेकिन एक परिवार से एक ही व्यक्ति को नियुक्त किया गया । इस अध्ययन से यह भी विदित होता है कि सार्वजनिक क्षेत्र में भर्ती के जिन स्त्रोतों का उपयोग किया गया उनकी प्राथमिकता का क्रम निम्नलिखित है :

(1) आकस्मिक मिलने वाले आवेदन पत्र ।

(2) समाचार-पत्र विज्ञापन ।

(3) अनुसूचित जन-जाती एवं अनुसूचित जाति के अभ्यर्थी ।

(4) रोजगार कार्यालय ।

(5) अन्य राजकीय उपक्रम ।

(6) आन्तरिक विज्ञापन ।

(7) विस्थापित व्यक्ति ।

(8) रिश्तेदार एवं मित्र ।

(9) कार्मिक अनुशंसा, एवं

(10) अभियांत्रिकी एवं प्रबन्धन संस्थान ।

उक्त अध्ययन से सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ निजी क्षेत्र में प्रयुक्त किये भर्ती-स्त्रोतों की क्रमबद्धता की जानकारी भी मिलती है, जो इस प्रकार है :

(1) विज्ञापन ।

(2) रोजगार कार्यालय ।

(3) रिश्तेदार एवं मित्र ।

(4) आकस्मिक रूप से मिलने वाले आवेदन एवं

(5) कर्मचारी अनुशंसा ।

भारत के पश्चात् चयन की प्रक्रिया आरम्भ होती है । चयन का सारा कार्यक्रम वैज्ञानिक रीति-नीतियों आधारित होना चाहिए । यहाँ हम आपको याद दिलाना चाहेंगे कि चयन प्रक्रिया के आरम्भ करने से पूर्व कार्य विश्लेषण तथा कार्य विशिष्ट विवरण दोनों को जाता है, तैयार किया जाता है । चयन प्रक्रिया में, इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि अभ्यार्थियों में से किसी ऐसे व्यक्ति का चुनाव किया जाए जिसकी योग्यता, कौशल, शिक्षा, अनुभव आदि, कार्य विशिष्ट विवरण के अनुरूप हों । कुछ व्यक्तियों का ऐसा विश्वास है कि वे कपाल की बनावट मुखाकृति ज्योतिष, हस्तरेखा, बालों के रंग आदि का अध्ययन कर, मनुष्य के गुण-दोषों का सही-सही पता लगाने की सामर्थ्य रखते है । हम इस विषय में किसी प्रकार के विवाद में नहीं उलझना चाहते लेकिन यह स्पष्ट है कि चयन के प्रक्रम में इन विज्ञानों का सहारा नहीं लिया जा सकता ।

प्रारम्भिक साक्षात्कार- यदि चयन प्रक्रम में निरसन पर बल देना है तो प्रारम्भिक साक्षात्कार की आवश्यकता उत्पन्न होगी । इस प्रकार का साक्षात्कार अति संक्षिप्त होता है तथा इसका उद्देश्य अभ्यार्थियों के प्रकट दोषों एवं अयोग्यताओं का पता लगाकर उनका निरसन करना होता है । बोलते समय हकलाना, चलते समय लंगड़ाना, हाथ या पैर का टूटा हुआ होना आदि कुछ ऐसे दोष हैं जिनको जानने के लिए किसी विशेषज्ञ की सेवाओं की आवश्यकता नहीं होती । इस साक्षात्कार में अभ्यार्थी द्वारा अपेक्षित वेतन, शैक्षणिक योग्यता तथा अनुभव के सम्बद्ध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है । उन्हीं अभ्यार्थियों को चयन के प्रक्रम में आगे बढ़ने का अवसर दिया जाना चाहिए जिनके चयन की कुछ सम्भावनाएं दिखलाई देती हो ।

आवेदन पत्र एवं उसकी जांच- कुछ कम्पनियां प्रारम्भिक साक्षात्कार के पश्चात ही अभ्यार्थियों को आवेदन पत्र का फार्म देता है जिल्दें अभ्यार्थी भरकर देते हैं । यदि आवेदन पत्र पहले से प्राप्त कर लिए गए है तो प्रारम्भिक साक्षात्कार में असफल हुए अभ्यार्थियों के आवेदन पत्रों को अस्वीकृत कर दिया जाता है ।

आवेदन पत्र के माध्यम से अभ्यार्थी के जीवन वृतान्त सम्बन्धी तथ्य एवं शिक्षा, अनुभव, प्रशिक्षण आदि की जानकारी प्राप्त की जाती है । यदि अभ्यर्थी पहिले से रोजगार में है तो वर्तमान में पा रहे वेतन एवं वेतन श्रृंखला आदि के विषय में भी पूछा जाता है । उच्च पदों के लिए विदेशों में प्राप्त शिक्षा एवं प्रशिक्षण तकनीकी संस्थाओं की सदस्यता तथा उनमें अभ्यार्थी की पद स्थिति जैसी बातों की भी जानकारी प्राप्त की जाती है । कुछ कम्पनियां अभ्यार्थियों से दो या तीन सन्दर्भ भी लेती है ।

आवेदन पत्र के माध्यम से अभ्यार्थियों के विषय में क्या जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए ? यह अपने आप में एक अन्वेषण का विषय है । जैसे क्या अभ्यार्थी का लिंग, आयु, वैवाहिक स्थिति, बच्चों की संख्या एवं प्रत्येक बच्चे की आयु, अभ्यार्थी की पत्नी या (या पति)की शैक्षणिक योग्यता, उसकी नौकरी एवं वेतन, अचल सम्पत्ति (भवन)आदि के विषय में जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए अथवा नहीं ? इस जानकारी का कम्पनी के लिए क्या उपयोग है तथा कम्पनी इसका किस प्रकार प्रयोग करेगी आदि कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न है जिन पर विचार करना आवश्यक है ।

अभी तक यह देखा गया है कि सामान्यतः कम्पनियां आवेदन पत्र के प्रारूप को तैयार करने में भेड़ चाल का अनुसरण करती हैं । कम्पनियों को चाहिए कि वे अपने विधमान कर्मचारियों का अध्ययन कर, सफल कर्मचारियों का एक पांशवचित्र तैयार करे । अर्थात् विगत अनुभव के आधार पर यह जानने का प्रयत्न करे कि कार्य पर सफलता प्राप्त करने के लिए किन-किन गुणों की आवश्यकता होती है तथा एक सफल कर्मचारी का जीवन वृतान्त किस प्रकार का होता है? अभ्यार्थियों में इस प्रकार के गुण हैं या नहीं तथा उनका जीवन वृतान्त से मेल खाता है या नहीं, यह जानकारी आवेदन पत्र के माध्यम से एकत्रित करने का प्रयास किया जाना चाहिए । यहाँ पर हम स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते हैं कि इस बात की कोई प्रत्याभूति नही है कि यदि अभ्यार्थी चाहे गए गुणों से युक्त है तथा उपयुक्त जीवन वृतान्त रखता है तो वह भविष्य में एक सफल कर्मचारी सिद्ध होगा । साथ ही इन गुणों का अभाव प्रत्येक स्थिति में असफलता का घोतक भी नहीं माना जाना चाहिए । गुणांक के इस विश्लेषण को ही चयन का आधार नहीं मान लिया जाना चाहिए । इसे तो एक मार्गदर्शक सत्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए ।

आवेदन पत्र प्राप्त करने के पश्चात उनकी जाँच की जाती है जिन अभ्याथियों में न्यूनतम अपेक्षित योग्यता से कम योग्यता हो, उन्हें अस्वीकार कर दिया जाता है । जैसे प्रवक्ता के पद का अभ्यार्थी यदि स्नातकोत्तर स्तर की शैक्षणिक योग्यता नहीं रखता तो उसके आवेदन पत्र को अस्वीकृत कर दिया जाएगा ।

मनोवैज़ानिक परीक्षण- आवेदन पत्र के ठीक दशा में पाए जाने की स्थिति में अभ्यार्थी को चयन परीक्षण देने होते है । सामान्यत: चयन परीक्षण मनोवैज्ञानिक प्रकृति के होते हैं, जिनके माध्यम से अभ्यार्थी के व्यवहार के संबंध में जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है । मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक ऐसा विधिवत् कार्यक्रम है, जिसके द्वारा दो क अधिक व्यक्तियों के व्यवहार की तुलना की जाती है । प्रसिद्ध मनोवैज्ञनिक बल्म के अनुसार मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यक्ति के भावी व्यवहार, निष्पादन एवं अभिवृत्ति के का एक नमूना है । डेल एस. बीच के अनुसार, मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक विधिवत् कार्यक्रम है जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति के व्यवहार का नमूना प्राप्त किया जाता है ।

चयन परीक्षण सामान्यत पाँच प्रकार के होते हैं, नामत :

1. निष्पादन परीक्षण,
2. बुद्धि, प्रज्ञा अथवा ज्ञान परीक्षण,
3. प्रवृति परीक्षण तथा
4. व्यक्त्तिव परीक्षण ।

निष्पादन परीक्षण- कार्यालय कर्मचारियों का निष्पादन परीक्षण लिया जाता है जैसे टंकण लिपिक हेतु टंकण की परीक्षा । जो कार्य अभ्यार्थी को चयन के पश्चात् करना है, उसी प्रकार का कार्य उससे कराकर निष्पादन प्रवीणता का पता लगाया जाता है । लेकिन प्रबन्धकीय पदों के लिए इस प्रकार का कोई परीक्षण सम्भव नहीं है ।

बुद्धि परीक्षण- इन परीक्षणों के माध्यम से अभ्यर्थी की गृहण शक्ति, गणितीय प्रवृति, स्मरण शक्ति तथा तर्क शक्ति की जाँच की जाती है । इरा परीक्षण के पीछे मान्यता यह है कि कुशाग्र बुद्धि वाला व्यक्ति किसी भी कार्य को शीध्रता एवं सुगमता से सीख सकता है ।

प्रवृति परीक्षण- इस परीक्षण के माध्यम से यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि अभ्यार्थी का झुकाव या रूझान उस प्रकार के कार्य के प्रति है या नहीं? परीक्षण के द्वारा इस बात का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया जाता है कि यदि अभ्यार्थी का चयन कर लिया गया तो भविष्य में वह अपने कार्य को पूर्ण कर सकता है या नहीं तथा बुद्धि परीक्षण सामान्यत: किसी भी कार्य को सीखने की प्रवृति का परीक्षण होता है । मोटर चालक, तकनीशियन जैसे कार्यो के लिए प्रवृति परीक्षण किया जाता है ।

रुचि परीक्षण- प्रवृति परीक्षण के माध्यम से किसी कार्य के लिए आवश्यक आधारभूत योग्यता सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है । लेकिन आधारभूत योग्यता के अभाव की पूर्ति तीव्र रूचि द्वारा की जा सकती है । अभ्यार्थी से अनेक विषयों जैसे - शिक्षा सम्बन्धी, आमोद-प्रमोद में उसकी पराना, नापसन्द या उदासीनता जानने के लिए प्रश्न पूछे जाते है । इन प्रश्नों के उत्तर के आधार पर उसकी रूचि का क्षेत्र ज्ञात किया जाता है ।

व्यक्तितत्व परीक्षण- उपरोक्त वर्णित परीक्षणों के वर्ग में यह सर्वाधिक जटिल परीक्षण है । व्यक्तितत्व अनेकों चारित्रिक गुणों का सूचक माना जाता है । अभिप्रेरण, र्न्तयक्तिक सम्बन्धों की क्षमता, दैनिक जीवन के दबावों से उबरने की शक्ति एवं स्वयं विषयक धारणाएँ व्यक्ति की कसौटी मानी जाती है । व्यक्तितत्व परीक्षण इन्हीं शक्तियों अथवा क्षमताओं की जाँच है । प्रबन्ध

पदों के लिए व्यक्तित्व का अत्यधिक महत्व माना जाता है । निष्पादन परीक्षण के विषय मे हमने उल्लेख किया था कि प्रबन्ध क्यों के लिए कोई निष्पादन परीक्षण उपलब्ध नहीं है । कुछ सीमा तक व्यक्तित्व परीक्षण को ही ऐसे पदों का निष्पादन परीक्षण माना जा सकता है । प्रबन्धकों को अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों तथा दैनिक जीवन के तनावों से भी निपटना होता है, अत: उनके लिए व्यक्तित्व परीक्षण का काफी महत्व है ।

परीक्षण सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण बातें - मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण बातों की चर्चा यहाँ पर की जाएगी जिन पर ध्यान देना आवश्यक है । परीक्षण से पूर्व, परीक्षणों की परीक्षा लेना आवश्यक होता है । परीक्षा में सफल होने की स्थिति में ही इन परीक्षणों का प्रयोग किया जा सकता है अन्यथा नहीं । प्रत्येक परीक्षण को विश्वसनीयता तथा वैधता की कसौटी पर जांचा जाता है । विश्वसनीयता परीक्षण बार-बार दिया जाए तो उसके परीक्षण अंकों में ज्यादा अन्तर नहीं आना चाहिए । यदि इसके विपरीत परीक्षण अंकों में ज्यादा अन्तर आता है तो परीक्षण की स्थिरता पर विश्वास नहीं किया जा सकता । परीक्षण की दूसरी कसौटी है वैधता । वैधता से हमारा यह है कि परीक्षण उन गुणों को जाँचने की सामर्थी अथवा क्षमता रखता है या नहीं जिनके लिए प्रयोग किया जा रहा है? जैसे क्या प्रवृति परीक्षण के माध्यम से हम व्यक्ति की प्रवृतियों के रूझान का सही-सही पता लगा पा रहे हैं? परीक्षणों की वैधता, सामान्यत: तीन प्रकार की होती यथा विषय सम्बन्धी वैधता, समकालीन वैधता, तथा भविष्य कथनात्मक वैधता ।

किसी एक परीक्षण को चयन का आधार नहीं माना जाना चाहिए, केवल मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार करना चाहिए । परीक्षण व्यक्ति के व्यवहार का एक नमूना मात्र होता है । बहुत सम्भव है कि नमूना, व्यक्ति के मनोविज्ञान की पूरी जानकारी प्रदान करने में असमर्थ रहे । परीक्षणों में प्राप्त सफलता को कार्य पर सफलता का संकेत नहीं मान लेना चाहिए । परीक्षण सफलता के स्थान पर असफलता को अधिक विश्वास के साथ नाप सकता है । किसी एक परीक्षण के स्थान पर अनेकों परीक्षणों का प्रयोग किया जाना चाहिए । कुछ समय के अन्तराल से, परीक्षणों की स्थिरता एवं वैधता की लगातार जाँच करते रहना चाहिए । परीक्षण, चयन प्रक्रिया का एक घटक मात्र है, अत: इसका प्रयोग अन्य घटको, जो चयन प्रक्रम में आते है के साथ करना चाहिए ।

प्रशिक्षण पद्धतियां

प्रशिक्षण पद्धतियों का अध्ययन दो भागों में बाँटकर किया जाएगा, नामत : कर्मचारी प्रशिक्षण एवं अधिशासी प्रशिक्षण । सर्वप्रथम हम कर्मचारी प्रशिक्षण विधियों अथवा पद्धतियों का अध्ययन करेंगे ।

कर्मचारी प्रशिक्षण पद्धतिया- यहाँ पर कर्मचारी प्रशिक्षण की प्रमुख पद्धतियों का वर्णन किया जाएगा, जो निम्न प्रकार से है- ।

(1) कार्य पर प्रशिक्षण

सामान्य प्रकृति के कार्यो के प्रशिक्षण हेतु यह सरल एवं बहुप्रचलित विधि है । इसमें प्रशिक्षण व्यावहारिक होता है तथा प्रशिक्षणार्थी के अभिप्रेरण को बनाए रखा जा सकता है ।

प्रशिक्षण की अलग से व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं होती, अत: प्रशिक्षण व्यय कम हो है । लेकिन इस प्रकार के प्रशिक्षण से उत्पादन में बाधा उत्पन्न होती है, तथा यह प्रशिक्षण विधि जटिल कार्यो के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होती है । प्रशिक्षण पर्यवेक्षकों द्वारा दिया जाता है । यह आवश्यक नहीं कि पर्यवेक्षक कुशल प्रशिक्षक भी सिद्ध हों ।

(2) द्वार कोष्ठ स्कूल प्रशिक्षण

कार्य पर प्रशिक्षण की कमियों को दूर करने के उद्देश्यों से कम्पनी उसी प्रकार की मशीनें, जिन पर प्रशिक्षण के पश्चात् कर्मचारियों को कार्य करना होगा, स्थापित कर प्रतिशत की अलग से व्यवस्था करती हैं । इस प्रशिक्षण की व्यवस्था सेविवर्गीय विभाग द्वारा की जाती है जहां योग्यता प्राप्त प्रशिक्षक प्रशिक्षण प्रदान करते हैं । अर्द्ध कौशलपूर्ण कार्यो के लिए यह प्रशिक्षण उत्तम रहता है ।

इस प्रकार के प्रशिक्षण में रेखा एवं कर्मचारी सम्बन्धों से उत्पन्न विवादों के कारण कठिनाई उत्पन्न होती है । प्रशिक्षण सेवीवर्गीय विभाग का दायित्व होता है जो कि कर्मचारी सेवा है, जबकि प्रशिक्षित कर्मचारियों की सेवा का उपयोग उत्पादन विभाग जो कि रेखा विभाग है, के द्वारा किया जाना है । प्रशिक्षित कर्मचारी की कमियों के लिए पर्यवेक्षक, प्रशिक्षक पर दोषारोपण करता है जबकि द्वार कोष्ठ स्कूल इस बात का दायित्व पर्यवेक्षक के द्वारा किए गए आगम पर डालता है । रेखा एव कर्मचारी का यह विवाद शाश्वत् रूप से जारी रहता है ।

(3) शिक्षार्थी प्रशिक्षण

विभिन्न देशों के औधोगिक विधान यह अपेक्षा करते हैं कि कम्पनियाँ शिक्षार्थी की व्यवस्था करेगी । इस प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था कौशलपूर्ण कार्यो के लिए की जाती है तथा प्रशिक्षण की अवधि लम्बी होती है । प्रशिक्षण प्राप्ति के पश्चात प्रशिक्षार्थी को कार्य पर लगाने का दायित्व कम्पनी का नहीं होता । इस प्रकार के प्रशिक्षार्थी को प्रशिक्षणकाल में कुछ भत्ता भी दिया जाता है ।

(4) प्रशिक्षण केन्द्रों पर प्रशिक्षण

बहु त बड़ी कम्पनियाँ अनेकों प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना करती हैं । अलग-अलग कार्यो के लिए अलग-अलग प्रशिक्षण केन्द्र होते हैं । इन केन्द्रों पर सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार के ज्ञान की शिक्षा प्रदान की जाती है । व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक बल दिया जाता है । इन केन्द्रों की स्थापना अधिक कौशलपूर्ण कार्यो हेतु प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए की जाती है।

(5) विशेष पाठ्यक्रम

व्यावसायिक संगठन प्राय: विशेष पाठ्यक्रमों में भाग लेने के लिए अपने कर्मचारियों को विभिन्न संस्थाओं में भेजते है । ये पाठ्यक्रम विशेष प्रकृति के होते हैं, जिनकी व्यवस्था कम्पनी द्वारा नही की जा सकती । उदाहरण के लिए उच्च गणितीय शिक्षा, परिचालन अन्वेषण या निष्पादन बजट आदि के प्रशिक्षण के लिए कर्मचारियों को विश्वविद्यालयों या विशिष्ट संस्थानों में भेजा जाता है । इस प्रकार का प्रशिक्षण, शिक्षा से अधिक सामिप्य रखता है ।

(6) अन्य विधियाँ

प्रशिक्षण की अन्य विधियों में अनुभवी कारीगरों द्वारा प्रशिक्षण, निरीक्षकों अथवा पर्यवेक्षकों द्वारा प्रशिक्षण, संयुक्त प्रशिक्षण आदि को सम्मिलित किया जाता है ।

8.6 अधिषाशी प्रशिक्षण एवं विकास

अधिशाषी प्रशिक्षण एवं विकास की अनेकों विधियां हैं, उनमें से कुछ तो कर्मचारी प्रशिक्षण से मेल जाती है जैसे कार्य पर प्रशिक्षण, विशेष पाठयक्रम आदि । आगे के अनुच्छेदो में हम अन्य प्रशिक्षण एवं विकास विधियों का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे । ये विधियाँ है

(1) आवर्तन

अधिशासियों का सुदृढ़ सामान्य पृष्ठाधार तैयार करने की दृष्टि से उन्हें योजनाबद्ध तरीके से विभिन्न पदों पर हस्तान्तरित किया जाता है । इस प्रकार का हस्तान्तरण प्रति छः माह अथवा एक साल बाद कर दिया जाता है । विभिन्न पदों पर कार्य करने से अधिशाषी को उपक्रम को एक समग्र रूप में देखने और समझने का अवसर मिलता है । उसका दृष्टिकोण व्यापक होता है । विभिन्न पदों एवं स्थितियों पर कार्य करने से वह उनकी समस्याओं से अवगत हो जाता है । और इस प्रकार उपक्रम में सहकारिता की भावना का संचार होता है ।

(2) विशेष परियोजना

यह अधिशाषी प्रशिक्षण की एक महत्वपूर्ण पद्धति है । किसी अधिशाषी को कोई एक विशेष परियोजना सौंप दी जाती है । उदाहरण के लिए, किसी प्रशिक्षार्थी अधिशाषी को विर्मित माल के मूल्यांकन का अथवा प्रबन्ध सूचना प्रणाली की व्यवस्था का प्रारूप तैयार करने का दायित्व सौंप दिया जाये । इस प्रकार की विशेष परियोजना पर कार्य करने से अधिशाषी को विभिन्न विभागों के कार्य, उनके महत्व एवं अन्य विभागों से सम्बन्ध का अच्छा ज्ञान हो जाता है ।

(3) समिति अधिव्यास

समितियों का निर्माण अधिशासियों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से नहीं किया जाता, लेकिन यदि किसी अधिशाषी को समिति का सदस्य बना दिया जाता है तो वह अन्य सदस्यों के साथ पारस्परिक क्रिया से बहुत कुछ सीख सकता है । समिति में विभिन्न विभागों के प्रतिनिाधि होते हैं, अत: विशेष परियोजना की भांति ही इस प्रशिक्षण विधि का लाभ भी उठाया जा सकता है ।

(4) बहु पद प्रबन्ध

यह न केवल अधिशाषी विकास की एक विधि है अपितु प्रबन्ध का एक दर्शन । भी है । कम्पनी में कनिष्ठ प्रबन्ध मण्डल का गठन किया जाता है । इस प्रबन्ध मण्डल को समान्यत: उन सभी व्यावसायिक समस्याओं पर विचार विमर्श करने की स्वतन्त्रता होती है जिन्हे वरिष्ठ संचालक मण्डल के विचारार्थ रखा जा सकता है । कनिष्ठ प्रबन्ध मण्डल के सदस्य पारी से निवृत होते रहे है और उनके स्थान पर अन्य विभागीय उाध्यक्षों या उनके सहायकों की नियुक्ति कर दी जाती है ।

कनिष्ठ प्रबन्ध मण्डल के सदस्य संकुचित विभागीय शीमा से ऊपर उठकर सयंत्र व्यवसाय को एक इकाई के रूप में देख सकते हैं । इस के फलस्वरूप उनका दृष्टिकोण अधिक हो पाते है ।

(5) भूमिका निर्वाह

इस प्रशिक्षण विधि से अधिशाषीयों में अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवहार करने के कौशल अथवा चातुर्थ का विकास किया जाता है । प्रशिक्षणार्थी संघर्ष की स्थिति का निर्माण किया जाता है और प्रशिक्षणार्थी को एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की जाती है, भूमिका के निर्वाह के माध्यम से उसे प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है ।

(6) संवेदित प्रशिक्षण

अधिशासी की संवेदित के विकास के लिए इस प्रशिक्षण विधि का प्रयोग। किया जाता है । प्रशिक्षण की विधि द्वारा यह जानने का प्रयास जाता है कि उनके व्यवहार का अन्य व्यक्तियों पर क्या प्रभाव पड़ता है? यह सम्भव है कि इस प्रकार के प्रभाव का उन्होंने संकल्प न किया हो । छोटे-छोटे समूहों में अधिशाषी स्वतन्त्रतापूर्वक एवं निश्छल भाव से किसी भी विषय पर चर्चा विमर्श करते है । अधिशासियों के पारस्परिक व्यवहार की खुलकर आलोचना की जाती है उदाहरण के लिए एक अधिशाषी अपने वरिष्ठ अधिकरियों का काफी सम्मान करता है, लेकिन हो सकता है कि उसके साथी इस प्रकार के व्यवहार को चापलूसी अथवा ढोंग ही मानते हो । इस प्रकार अधिशाषी को स्वयं को समझने एवं सुधारने का अवसर मिलता है ।

(7) भातक अनुरूपता

प्रशिक्षण की केस पद्धति, भूमिका निर्वाह आदि इस शीर्षक के अन्तर्गत आती है । आजकल व्यावसायिक जेलों का काफी चलन है । प्रशिक्षण की दृष्टि से आधेषाशियों को विभिन्न प्रतिस्पर्द्धी दलों में विभक्त कर दिया जाता है । वे व्यावसायिक निर्णय लेते हैं जैसे - उत्पदन की मात्रा, उत्पाद मूल्य, रहतिया की सीमा, बिक्रि, खर्चे आदि और फिर कम्प्यूटर की राहायता से लाभ-हानि का निर्धारण करते हैं । इस प्रकार व्यावसायिक निर्णयों के आधार पर उन्हें समस्त व्यवसाय को एक ही इकाई के रूप में देखने का अवसर मिलता हे ।

(8) अन्य लाभ

सम्मेलन, सेमिनार, अल्पकालीन पाठयक्रम, कार्य प्रशिक्षण आदि कुछ अन्य प्रशिक्षण एवं विकास विधियाँ है । जिनका समय-समय पर प्रयोग किया जा सकता है ।

8.8 सारांश

आज के युग में किसी भी पर्यटन संगठन को सफल बनाने के लिए उस संगठन के कर्मचारियों का विशेष महत्व होता है । स्टाफिंग के कार्यक्षेत्र में भर्ती करने से लेकर सेवा निवृति तक के समस्त प्रावधान शामिल है । स्टाफिंग एक ऐसा कार्य है जिसे पूर्ण गम्भीरता से पूरा करना प्रत्येक प्रबन्धक का दायित्व है । भर्ती एवं विभिन्न मनोवैज्ञानिक परिक्षणों के उपरान्त कर्मचारियों को विभिन्न ट्रेनिंग माध्यमों द्वारा कार्यकुशल बनाया जाता है, यह ट्रेनिंग महज निम्नस्तरीय कर्मचारियों के लिए ही नहीं अपितु मध्यम वर्ग के कर्मचारियों के लिए भी आयोजित करना चाहिए । पर्यटन व्यवसाय में जहां नित्य नये परिवर्तन देखने को मिलते है वहाँ

प्रबन्धक का कार्य स्टाफिंग के क्षेत्र में और अधिक जटिलतापूर्ण हो जाता है । प्रबन्धक को कर्मचारी चयन के क्षेत्र में विशेष सावधानी रखना चाहिए, ताकि पर्यटकों को संतुष्ट किया जा सके और संगठन अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सके ।

8.9 अपनी प्रगति को जानने के लिये अभ्यास

1. व्यावसायिक प्रबन्ध में कर्मचारी-नियुक्ति का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।

....

....

....

2. कर्मचारी चयन की प्रकिया समझाइये ।

....

....

....

....

3. प्रशिक्षण की विभिन्न विधियों का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए ।

....

....

....

....

4. पर्यटन के क्षेत्र में कर्मचारी-चयन का क्या महत्व है?

....

....

....

....

इकाई-9 : केरियर नियोजन एवं प्रण्न्धकीय विकास

ढांचा

9.0 उद्देश्य

9.1 परिचय

9.2 वृत्ति नियोजन एवं विकास का अर्थ एवं परिभाषा

9.3 वृत्ति विकास तथा कर्मचारी विकास

9.4 वृत्ति विकास तथा कर्मचारी विकास के लाभ एवं पूर्व अपेक्षाएं

9.5 वृत्ति प्रबन्ध एंव कर्मचारी प्रबन्ध

9.6 संगठनात्मक वृत्ति नियोजन एवं विकास की प्रकिया

9.7 वृत्ति प्रबन्ध के लिए संगठन द्वारा उठाये जाने वाले चरण

9.8 सारांश

9.9 अपनी प्रगति को जानने के लिये अभ्यास

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप सक्षम होंगे :

(अ) (वृत्ति)केरियर नियोजन एवं विकास का अर्थ एवं विशेषताओं जानने में ।

(ब) केरियर नियोजन एवं विकास कार्यक्रमों के लाभ तथा प्रभावी कार्यक्रम हेतु पूर्व अपेक्षाओं की जानकारी हेतु ।

(स) संगठनात्मक वृत्ति नियोजन एवं विकास की प्रकिया को समझाने में ।

(द) वृत्ति प्रबन्ध के लिए संगठन द्वारा उठाये जाने वाले चरणों की जानकारी हेतु।

(य) पर्यटन प्रबन्धक के रूप में अपने कर्मचारियों को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करने ।

9.1 परिचय

वृत्ति नियोजन एवं विकास एक ऐसी योजना है जिसका सम्बन्ध कर्मचारी एवं संगठन दोनों से ही है । प्रत्येक कर्मचारी अपने सेवाकाल में इस बात के लिए प्रयासरत रहता । है कि वह अपनी कृत्य-अवस्था एवं पद प्रतिष्ठा को उच्चतम स्तर तक ले जा सके । इस प्रयास में वह अपने कृत्य-कौशल में सुधार एवं अभिवृद्धि पर विशेष ध्यान देता है ताकि पदोन्नति के अवसर के लिए वह अपने को तैयार पाये । संगठनों द्वारा भी यह अनुभव किया जाने लगा है कि वृत्ति कर्मचारी की अत्यन्त महत्वपूर्ण आकांक्षा है और इस आकांक्षा की पूर्ति में उन्हें सक्रिय सहयोग प्रदान करना । संगठनों के दृष्टिकोण से कर्मचारी को वृत्ति निर्माण में सहायता करके, वे कर्मचारी को ऐसा उत्साहवर्द्धक वातावरण प्रदान कर सकते हैं जिसमें कर्मचारी की निष्ठा एवं कार्य के प्रति लगन बनाये रखा जा सकता है तथा इनमें अभिवृद्धि भी की जा सकती है । संगठनों द्वारा वृत्ति एवं विकास की व्यवस्था करके कर्मचारी आकांक्षाओं एवं संगठन के ध्येय से सामंजस्य स्थापित जा सकता है एवं इसमें अभिवृद्धि की जा सकती है । संगठनों द्वारा वृत्ति नियोजन एवं विकास की करके कर्मचारी आकांक्षाओं एवं संगठन के ध्येय में सामंजस्य

स्थापित किया जा सकता है । ओर जहाँ वृत्ति कर्मचारी की उन्नति की सीढ़ी बन जाती है, वही दूसरी ओर इसका प्रभावी संगठन को भी अनेकानेक लाभ प्रदान करता है ।

वृत्ति से आशय

वृत्ति नियोजन तथा विकास का आशय जानने से पूर्व 'वृत्ति' का अर्थ स्पष्ट किया जाना आवश्यक है । वृत्ति सम्बद्ध क्रियाओं का ऐसा अनुक्रमण है जो पदों की श्रेणियों द्वारा कर्मचारियों ने सुव्यवस्थित एवं अभिवृद्धि बढ़ाने के मार्ग को संयोजित करता है । कर्मचारी के लिए वृत्ति वर्तमान पद से उच्च पद पर पहुँचना है । संगठन के लिए वृत्ति पद-श्रेणियों का विकास मार्ग है जिस पर चरण-दर-चरण चलकर कर्मचारी अपने कार्य अनुभव, विकास आदि के द्वारा आगे बढ़ सकता है । इस प्रकार वृत्ति शब्द का सम्बन्ध इसके दो महत्वपूर्ण तत्वों से जोड़ा जा सकता है (अ)संगठन, तथा (ब)जीविका । वृत्ति का संगठन से सम्बन्ध इस भाँति उत्पन्न होता है कि कर्मचारी किसी संगठन को अपने विकास का माध्यम मानता है और वह ऐसे संगठन में सम्मिलित होना पसन्द करता है जिसमें वृत्ति विकास के पर्याप्त अवसर सुलभ हों । किसी संगठन में वृत्ति निमार्ण के अवसर उसे आकर्षित करते हैं । वृत्ति निमार्ण के लिए ही कर्मचारी एक संगठन को छोड़कर दूसरे संगठन में चला है । वृत्ति की सुव्यवस्था एवं उसके विकास की स्पष्टता संगठन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । वृत्ति के जीविका तत्व से तात्पर्य संगठन में उच्च पदों पर अग्रसर होने की सम्भावनाओं से है । पदों की श्रेणियाँ, उनके वेतन एवं सुविधायें, पद श्रेणियों की क्रमबद्धता एवं कर्मचारियों के पद विकास चरण आदि इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं ।

वृत्ति एक गतिशील संदर्श है जिसमें कर्मचारी अपने सम्पूर्ण जीवन को देखता है और अपनी विशेषताओं, क्रियाओं तथा घटनाओं के अर्थ में इसकी व्याख्या करता है । वृत्ति इस रूप में पदों की एक श्रृंखला है एवं संगठनात्मक स्थिति का एक सिलसिला है जिसमें कर्मचारी अपने जीविका काल में गुजर सकता है ।

9.2 वृत्ति नियोजन एवं विकास का अर्थ एवं परिभाषा

वृत्ति प्रबन्ध के दो महत्वपूर्ण अंग है वृत्ति नियोजन तथा वृत्ति विकास । अपने सामान्य अर्थ में वृत्ति प्रबन्ध में कर्मचारियों द्वारा स्वयं वृत्ति के प्रति संवेदनशीलता एवं प्रयत्न तथा संगठन तथा वृत्ति सम्बन्धी कार्यक्रमों का निर्माण एवं उनका संतोषजनक एवं प्रभावशाली संयोजन है । संगठनात्मक कार्य के रूप में वृत्ति प्रबन्ध में उन मार्ग का नियोजन एवं विकास किया जाता है जिनके द्वारा कर्मचारी अपनी वृत्ति आकांक्षाओं को पूरा करेगा तथा इसमें कर्मचारियों का चयन जैसे कार्य सम्मिलित होते हैं । वृत्ति प्रबन्ध के विकास पक्ष द्वारा किसी संगठन में कर्मचारियों की योग्यताओं तथा उपलब्ध पदों एवं परितोषण में सन्तुलन स्थापित किया जाता है ।

वृत्ति प्रबन्ध, प्रबन्ध विकास का पर्याय नहीं है ये दोनों अवधारणायें एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है । प्रबन्ध विकास का उद्देश्य वैयक्तिक तथा समूह अध्ययन द्वारा प्रबन्धकों की कुशलता एवं योग्यता में अभिवृद्धि के कार्यक्रमों की व्यवस्था करना है । दूसरी ओर वृत्ति प्रबन्ध का लक्ष्य ऐसे कार्यक्रमों का निर्माण करना है जो कर्मचारियों की ध्येय प्राप्ति एवं उनके संतोष

में सहायक हो सकें । वृत्ति प्रबन्ध कर्मचारीगण एवं संगठन, दोनों की सहयोगी एवं संयुक्ता क्रिया है ।

अभी कुछ समय पूर्व तक वृत्ति नियोजन से तात्पर्य कर्मचारी द्वारा स्वयं वृत्ति सम्बन्धी विचार एवं निर्णयन से लिया जाता था । ऐसा माना जाता था कि वृत्ति व्यक्तिगत विषय है । और स्वयं व्यक्ति वृत्ति एवं वृत्ति विकास के लिए अपने को तैयार करने एवं संगठन में अपनी पद-स्थिति को विकसित करने के लिए उत्तरदायी है । इस विचारधारा के अनुसार, वृत्ति नियोजन केवल कर्मचारी का कार्य है तथा संगठन की इसमें कोई भूमिका नहीं है । किन्तु अब यह विचारधारा स्वीकार नहीं की जाती । कर्मचारियों के वृत्ति नियोजन का उत्तरदायित्व विशेषरूप अब संगठन पर आ गया है इस उत्तरदायित्व के अधीन यह अनुभव किया गया है कि अपने कर्मचारियों के लिए वृत्ति नियोजन करना केवल कर्मचारियों के ही हित संरक्षण के लिए नहीं, अपितु संगठन के लाभ के लिए भी आवश्यक है । किसी संगठन में सम्मिलित होने पर कर्मचारी अपने वृत्ति को ध्यान में रखते हैं तथा यह आशा करते हैं कि संगठन उनके वृत्ति में आवश्यक सहायता एवं सहयोग प्रदान करेगा । ऐसा सहयोग कर्मचारियों को वृत्ति विकास के कार्यक्रमों द्वारा प्रदान किया जाता है ।

वृत्ति विकास को वृत्ति प्रबन्ध के अंग के रूप में वैयक्तिक योग्यता या कृत्य अपेक्षाओं एवं कृत्य पारितोषक से सन्तुलन करना कहा गया है । यह संगठन के दृष्टिकोण से सम्भावित कृत्य-श्रृंखला के नियोजन की प्रक्रिया है, ऐशा नियोजन जिसके अधीन यह निश्चय किया जाता है कि एक कर्मचारी अपने आजीविका काल में किन पदों तक पहुंच सकता है? तथा उसमें इस बीच आवश्यक कृत्य-कौशल उत्पन्न करने के लिए किन विकास कार्यक्रमों का सहारा लिया जाय ? वृत्ति विकास एक सतत् जारी रहने वाली प्रक्रिया है तथा इसका सम्बन्ध कर्मचारी विशेष से भी है । व्यक्तिगत रूप से कर्मचारी अपनी वृत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विकल्पों में सही विकल्प का चयन करता है तथा वृत्ति विकास की दशा को नियन्त्रित करने का प्रयत्न करता है । वृत्ति हेतु उपलब्ध सीढ़ियों पर अवसरानुसार बढ़ने के लिए वह अपने को निरन्तर तैयार करता रहता है । अपने इस प्रयास में कर्मचारी को संगठन द्वारा बनाये गये वृत्ति विकास कार्यक्रमों से विशेष सहायता प्राप्त होती है । संगठन द्वारा दबाये गये वृत्ति विकास कार्यक्रम कर्मचारी की वैयक्तिक वृत्ति-आकांक्षा को वृत्ति-सीढ़ियों पर बढ़ने के अवसर प्रदान करते हैं । ये कर्मचारी के ज्ञान, कौशल, व्यवहार में परिवर्तन एवं विकास की व्यवस्था करते है । ऐसे कार्यक्रम स्व-विकास को प्रोत्साहित करते है तथा कृत्य-मन्त्रणा एवं कृत्य-गतिशीलता की संगठन में व्यवस्था करते हैं । वृत्ति विकास कार्यक्रम वर्तमान समय में सेविवर्गीय कार्यो में अनेक अन्य कार्य जैसे मानव शक्ति नियोजन, कृत्य विश्लेषण तथा निष्पादन मूल्यांकन की भाँति ही महल रखता है ।

वृत्ति विकास एक प्रक्रिया है जो तीन सम्बद्ध उप-क्रियाओं के संयोजन से निर्मित होती है । ये तीन सम्बद्ध उप-क्रियायें है :

(अ) समाजीकरण क्रिया,

(ब) वृत्ति चयन क्रिया, तथा

(स) वातावरण परिवर्तन क्रिया ।

समाजीकरण क्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति अपने सहयोगियों एवं सहयोगियों के सम्पर्क द्वारा स्वयं के सामाजिक वातावरण के अनुकूल वृत्ति का चयन करता है । कृत्य गतिशीलता सामाजिक वातावरण में परिवर्तन लाती रहती है, अत: वातावरण परिवर्तन रो आये सामाजिक वातावरण से सतत सन्तुलन बनाए रखना आवश्यक हो जाता है । वृत्ति विकास के ये तीनों अंग कर्मचारी के वृत्ति नियोजन एवं विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखते है ।

परिभाषायें

वृत्ति नियोजन एवं विकास की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्न प्रकार है

1. **हेनेमन तथा श्वाब,** "वृत्ति प्रबन्ध में उस मार्ग का नियोजन होता है जिस पर कर्मचारीगण कार्य करते हैं जिसमें सिखलाई मन्त्रणा तथा कर्मचारी का पदोन्नति मूल्यांकन, उन पदों का चयन जिन पर कर्मचारी बढ़ेगा, कृत्य से पृथक प्रशिक्षण तथा उसके द्वारा भौगोलिक स्थानान्तरण सम्मिलित है ।"

2. **मैन्सफील्ड** "वृत्ति विकास वह प्रकिया है जिसमें वैयक्तिक अनुभव अवधारणा तथा वृत्ति का लोक-दर्शनीय पक्ष, जीविका स्थितियों की प्रत्येक उत्तरोत्तर मंजिल को प्रवाहित बनाने के लिए प्रति - प्रभावित करते हैं ।"

3. **शुलर** "यह वैयक्तिक आवश्यकताओं, योग्यताओं तथा ध्येय तथा संगठन की नृत्य अपेक्षाओं एवं कृत्य-परितोषण के अभिज्ञान की एक क्रिया है तथा फिर उत्तम संरचित वृत्ति विकास कार्यक्रमों द्वारा योग्यताओं का अपेक्षाओं एवं परितोषण से मिलान करना है ।"

4. **मिडिलमिस्ट्र हिल एवं ग्रीयर**, "वृत्ति विकास किसी व्यक्ति के लिए संगठन में उसके सेवाकाल में धारण की जाने वाली सम्भावित कृत्य श्रृंखला का नियोजन तथा उत्पन्न अवसरों के अनुसार आवश्यक कृत्य कौशल प्रदान करने के लिए विकास व्यूह रचनाओं की एक प्रक्रिया है ।"

विशेषतायें

उपरोक्त परिभाषाओं की व्याख्या करने पर वृत्ति नियोजन एवं विकास के महत्वपूर्ण तत्व या विशेषतायें निम्नलिखित प्रकार वर्णित किये जा सकते है :

1. वृत्ति नियोजन एवं विकास स्वयं कर्मचारी तथा संगठन दोनों का उत्तरदायित्व है । कर्मचारी के दृष्टिकोण से वृत्ति उसके सम्पूर्ण सेवाकाल में पद विकास एवं वृद्धि के लिए निरन्तर प्रयास है जिसके आधीन वह अपना कौशल तथा अनुभव बढाता है ताकि अवसराजुसार वह उसका लाभ उठा शके एवं उच्च पद चरणों पर अग्रसर हो सके । संगठन के दृष्टिकोण से वृत्ति नियोजन वह प्रक्रिया है जो कर्मचारी के पद वृद्धि एवं विकास में आने वाली बाधाओं को दूर कर सके ।

2. वृत्ति नियोजन एवं विकास एक ऐसी क्रिया है जो वैयक्तिक इच्छाओं, आकांक्षाओं, एवं लक्ष्यों का अध्ययन एवं संगठन में विविध कृत्यों की अपेक्षाओं का अध्ययन करके इनमें सामन्जस्य स्थापित करता है ।

3. वृत्ति नियोजन एवं विकास किसी संगठन में कार्यरत कर्मचारियों की सेवा-यात्रा के मार्ग का निर्धारण है जो यह स्पष्ट करता है कि कर्मचारी अपनी वृत्ति के किस उच्च स्तर तक पहुँच सकता है ।

4. वृत्ति नियोजन एवं विकास द्वारा कर्मचारियों के ज्ञान, कौशल एवं व्यवहार में शिक्षण व्यूह रचनाओं द्वारा इत्र प्रकार के परिवर्तन लाये जाते हैं कि सही कार्य पर सही व्यक्ति की युक्ति चरितार्थ हो सके तथा कृत्य श्रृंखला की गतिशीलता द्वारा उसके निष्पादन को प्रभावी बनाया जा सके ।

5. वृत्ति नियोजन तथा विकास एक सतत् प्रक्रिया है । इसका वास्तविक लाभ इसकी निरन्तरता में ही निहित है । वृत्ति के दोनों पक्षकारों यथा कर्मचारी एवं संगठन के सतत् प्रयासों से ही आशातीत परिणामों को प्राप्त किया जा सकता है ।

6. वृत्ति नियोजन तथा विकास का लक्ष्य प्रभावी एवं कुशल कर्मचारियों के वर्ग का विकास है ताकि अधिक उत्पादन एवं उत्पादकता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके एवं कर्मचारी संतोष को भी बढाया जा सके ।

7. वृत्ति नियोजन एवं विकास कार्यक्रम सेविवर्गीय प्रबन्ध के अन्य विशिष्ट कार्यो यथा, मानवशक्ति नियोजन, कृत्य विश्लेषण, निष्पादन मूल्यांकन की भाति एक महत्वपूर्ण कार्य है।

8. वृत्ति का संगठन द्वारा प्रबन्ध कार्य मात्र 'प्रबन्ध विकास' नही है । वृत्ति प्रबन्ध एवं प्रबन्ध विकास के लक्ष्य समान नहीं होते । प्रबन्ध विकास का ध्येय ऐसे कार्यक्रम का निर्माण होता है जिसके द्वारा प्रबन्धकीय कौशल को बटाया जा सके । वृत्ति प्रबन्ध इससे आगे बढ़कर संगठनात्मक उद्देश्यों की प्रभावी प्राप्ति तथा कर्मचारियों की सेवा-संतुष्टि पर बल देता है ।

कार्य

वृत्ति नियोजन तथा विकास सम्बन्धी संगठन द्वारा सम्पन्न किये जाने कार्यो मे निम्नांकित कार्य सम्मिलित हैं:

1. कर्मचारी की वृत्ति नियोजन में सहायता करना ।
2. ऐसे वृत्ति मार्गो अथवा पथों की व्यवस्था करना जिन पर चलकर (चढ़कर)कर्मचारी आगे बढ़ सके ।
3. ऐसे आंतरिक वातावरण की स्थापना करना, जिसमें कर्मचारी अपन योगदान को मात्र कृत्य ही न समझे अपितु वृत्ति के रूप में ले ।
4. संगठन में कर्मचारियों के लिए स्व-विकास की अवस्थायें उत्पन्न करना ।
5. कर्मचारियों के लिए वृत्ति मन्त्रणा, कृत्य गतिशीलन, पदोन्नति मूल्यांकन आदि ऐसे उपकरणों की व्यवस्था करना जो उसके वृत्ति विकास में सहायक हों ।
6. ऐसी वृत्ति सूचना प्रणाली का विकास करना जो वृत्ति पथ,पदारोहरण, प्रतिस्थापन आदि सूचनाओं का डाटाबेस बन सके । इस सूचना बैंक में वैयक्तिक कौशल सूची तथा कृत्य स्थितियों का सही तथा सम्पूर्ण ब्यौरा उपलब्ध होना चाहिए ।

9.3 वृत्ति विकास तथा कर्मचारी विकास ।

सामान्य: वृत्ति विकास तथा कर्मचारी विकास को समानार्थी समझा जाता है । यह अवश्य है कि दोनों के प्रमुख तत्व समान हैं, किन्तु इनका कार्यक्षेत्र एक नहीं है । इन दोनों । के मध्य एक विश व अन्तर समय के आधार पर किया जाता है । क्योंकि लक्ष्य की एकरूपता दिखाई देने पर भी एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है, जबकि दूसरी अल्पकालीन । वृत्ति विकास कर्मचारियों के दीर्घकालीन वृत्ति प्रभावशीलता एवं सफलता को दृष्टि में रखता है । इसके विपरीत कर्मचारी उनके तात्कालिक विकास की प्रक्रिया हैं । किन्तु दोनों एक दूसरे के पूरक है क्योंकि कर्मचारियों के प्रशिक्षण सम्बन्धी प्रयास उनके वृत्ति विकास से सम्बद्ध होने चाहिए । वृत्ति विकास तथा कर्मचारी प्रशिक्षण एवं विकास का एक ऐसा सम्बद्ध कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए जो संगठन की दीर्घकालीन आवश्यकताओं के अनुरूप हो तथा संगठनात्मक परिवर्तनों का सामना करने में सक्षम सिद्ध हो । इस कार्यक्रम के द्वारा वैयक्तिक योग्यता तथा आकांक्षाओं के संगठनात्मक आवश्यकताओं के साथ एकीकरण के लक्ष्य को प्राप्त किया जाना चाहिए ।

9.4 वृत्ति नियोजन एवं विकास कार्यक्रमों के लाभ एवं अपेक्षायें

वृत्ति नियोजन एवं विकास कार्यक्रमों के लाभ

'वृत्ति नियोजन एवं विकास' संगठन तथा कर्मचारी दोनों के लिए अनेक प्रकार के लाभ प्रदान करते है जो निम्नलिखित है:

(अ) कर्मचारी को लाभ

वृत्ति नियोजन तथा विकास कार्यक्रम से कर्मचारियों को प्राप्त होने वाले लाभ निम्नलिखित हैं:

(1) यह कार्यक्रम कर्मचारी को अपने कौशल, शक्ति एवं कमजोरियों से अवगत कराते रहते है।

(2) इनके द्वारा कर्मचारी अपनी छिपी इच्छाओं एवं ध्येय को सही समझ पाता है।

(3) कर्मचारी को उसके लिए उपलब्ध वृत्ति अवसरों की जानकारी जाती है ।

(4) यह कार्यक्रम कर्मचारी को अपनी अपेक्षाओं एवं योग्यताओं को उपलब्ध अवसरों के अनुकूल बनाने में सहायता करते है ।

(5) वृत्ति नियोजन परिवर्तनों के दौर में कर्मचारी को समायोजन में सहायता प्रदान करते है।

(6) कर्मचारियों में वृत्ति उन्मुखी भावना जाग्रत करते हैं ।

(7) कर्मचारी की कृत्य गतिशीलता में अभिवृद्धि करते हैं ।

(8) संगठन के प्रति कर्मचारी में रूचि एवं उसके हित संरक्षण के प्रति उन्हें को अधिक संवेदनशील बनाते हैं ।

(9) कर्मचारी को अधिक उत्पादनशील एवं सन्तुष्ट बनाते है ।

(ब) संगठन को लाभ

संगठन को इससे निम्नलिखित लाभ होते है:

(1) कर्मचारियों का अधिक प्रभावी उपयोग सम्भव होता है ।

(2) उच्च पदों के लिए भावी प्रबन्धकों की जानकारी उपलब्ध होती है ।

(3) रोजगार के समान अवसर की कर्मचारियों की इच्छा पूर्ण होती है ।

(4) संगठन की छवि में सुधार होता है ।

(5) कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि होती है जिसका लाभ संगठन को प्राप्त होता है ।

(6) कर्मचारी उत्पादकता में वृद्ध होती है ।

(7) व्यवसाय के लाभ बढ़ते हैं ।

(8) कर्मचारी अनुपस्थिति में कमी आती है ।

प्रभावी वृत्ति नियोजन एवं विकास की पूर्व-अपेक्षायें

वृत्ति नियोजन एवं विकास कार्यक्रमों को बनाते समय कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है । एक प्रभावी वृत्ति नियोजन एवं विकास कार्यक्रम कुछेक आधारभूत तत्वों पर आधारित होता है । प्रभावी वृत्ति नियोजन । एवं विकास के निर्माण की पूर्व-आवश्यकतायें अग्र प्रकार हैं;

1. यह संगठन की यथार्थ अवस्था को ध्यान में रखकर तैयार किया जाना चाहिए ।

2. वृत्ति कार्यक्रम सभी प्रकार के कर्मचारियों के लिए तैयार किया जाना चाहिए ।

3. वृत्ति कार्यक्रम नियमित एव-सतत् क्रिया के रूप में विकसित किया जाना चाहिए ।

4. वृत्ति कार्यक्रम को शीर्ष प्रबन्ध का पूर्ण समर्थन प्राप्त होना चाहिए ।

5. वृत्ति कार्यक्रम का समन्वय सेविवर्गीय प्रबन्ध के अन्य कार्य यथा-मानवशक्ति नियोजन, कृत्य विश्लेषण, निष्पादन मूल्यांकन आदि के साथ होना चाहिए ।

6. इन कार्यक्रमों में पदोन्नति तथा प्रगति के अतिरिक्त अन्य कर्मचारी विकास कार्यक्रमों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए ।

7. इन कार्यक्रमों में मन्त्रणा तथा सूचना प्रणाली को पर्याप्त स्थान दिया जाना चाहिए।

8. इन कार्यक्रमों में कर्मचारियों की अपेक्षाओं एवं - योग्यताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए ।

वृत्ति नियोजन एवं विकास उत्तरदायित्व

वृत्ति नियोजन एवं विकास के प्रति निम्न दो पक्ष उत्तरदायी जाने जाते हैं :

(1) स्वयं कर्मचारी, एवं

(2) संगठन

कर्मचारी स्वयं अपनी वृत्ति के प्रति जागरूक रहता है तथा इस बात के लिए प्रयत्नशील रहता है कि अपने सेवाकाल में उसका वृत्ति विकास उस की आशा के अनुकूल होना चाहिये । दूसरी ओर संगठन कर्मचारी को उसके वृत्ति नियोजन एवं विकास में अपना समर्थन 'वृत्ति नियोजन एवं विकास' कार्यक्रमों के निर्माण द्वारा प्रदान करता है । इस प्रकार एक ओर कर्मचारी वैयक्तिक वृत्ति नियोजन तथा व्यूह रचना तैयार करता है तो दूसरी ओर संगठन अपने कर्मचारी वर्ग के लिए वृत्ति पथों का निर्माण कर एवं उनकी जानकारी कर्मचारियों को प्रदान

करके उन्हें उच्च पदों के अनुकूल बनने में सहायता करता है । यहाँ वृत्ति नियोजन एवं विकास को कर्मचारी एवं संगठन दोनों के दृष्टिकोण से देखा जाना आवश्यक है । इससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि दोनों पक्ष वृत्ति प्रबन्ध में क्या भूमिका। अदा करते है ।

9.5 वृत्ति प्रबन्ध एवं कर्मचारी

वृत्ति नियोजन एवं विकास वैयक्तिक दृष्टिकोण से कर्मचारी द्वारा आजीविका एवं संगठन का चयन, श्रृंखला के अनुरूप स्वयं को ढालने एव उत्पन्न हुये वृत्ति अवसरों का लाभ उतना है । इस अर्थ में यह एक विकार। क्रिया है जिसके प्रति कर्मचारी उत्तरदायी है । अत: कर्मचारी अपने वृत्ति के सम्बन्ध में आवश्यक व्यूह रचना है । यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि वृत्ति का अर्थ उस संगठन ही में वृत्ति श्रृंखला में आगे बढ़ता नहीं है । वृत्ति विकास के लिए यदि कोई कर्मचारी, संगठन परिवर्तन आवश्यक समझता है तो वह ऐसा भी करता है । सामान्यत: यह देखा जाता है कि कर्मचारी एक बार आजीविका एवं संगठन का चयन कर लेने के पश्चात् ऐसी आजीविका एवं संगठन में सेवाकाल के अन्त तक बने रहते हैं और वही अवसरानुसार पदोन्नति प्राप्त कर अपने वृत्ति विकास की कामना को फलीभूत करते हैं । किन्तु परिस्थितिवश संगठन परिवर्तन भी किया जाता है ।

यहाँ कर्मचारी द्वारा वृत्ति नियोजन एवं विकास के संदर्भ में तीन बातों पर विशेष रूप में विचार किया जायेगा:

(अ) स्व-विकास के तत्व

(ब) वृत्ति परिवर्तन की आवश्यकता

(स) वैयक्तिक वृत्ति प्रबन्ध की प्रक्रिया

(अ) स्व-विकास के तत्व

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है वृत्ति वैयक्तिक क्रिया है तथा वृत्ति विकास की सम्भावना में वृद्धि के लिए कर्मचारी द्वारा प्रयास किया जाना आवश्यक है । कर्मचारी द्वारों स्व-विकास अनेक दिशाओं में होना चाहिए । स्व-विकास के यह तत्व अथवा दिशाएं निम्नांकित है:

(1) प्रबन्धकीय स्वविकास

इसका सम्बन्ध कर्मचारी द्वारा कृत्य सम्बन्धी प्रबन्धकीय कौशल के विकास से है जिसका उपयोग उसके कृत्य तथा स्वयं के लाभ के लिए किया जायेगा ।

(2) कृत्य स्वविकास-कर्मचारी

कर्मचरी पत्रो अपने कृत्य को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करना चाहिए । कृत्य सम्बन्धी कौशल का विकास स्वयं उसके भावी विकास की आधारशिला होती है अपनी आलोचना के प्रति संवेदनशीलता एवं कृत्य के प्रति जिज्ञासा प्रवृत्ति कर्मचारी की कृत्य स्व-विकास में सहायता करते हैं ।

(3) सामाजीय स्व.विकास

इससे आशय कर्मचारी द्वारा अपने परिचय का दायरा बढ़ाने से है । अधिक व्यक्तियों से सम्पर्क एवं विचार-विनिमय कर्मचारीके दृष्टिकोण को व्यापक बनाता है । विचार परिवर्तन द्वारा उसे अधिक सुलझ हुआ एवं सक्षम बनाया जा सकता है ।

(4) भावनात्मक स्व.विकास

मनोभावों की स्थिरता एवं उन पर नियन्त्रण व्यवहार पक्ष की महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ है । अर्न्तसम्बन्धों में इनकी मुख्य भूमिका होती है । आवेश की स्थिति से हट कर स्वयं की कमजोरियों के प्रति जागरूकता से उपस्थित चुनौतियों का सामना करने में आसानी होती है ।

(5) रचनात्मक स्व.विकास

कर्मचारी द्वारा रचनात्मक के गुण का विकास भी किया जाना चाहिए । रचनात्मकता के लिए जिज्ञासा की अभिव्यक्ति आवश्यक है । खुले दिमाग से सोचना, दूसरे व्यक्तियों के विचार एवं पर ध्यान देकर मानसिक विकास की सम्भावनाओं को बढ़ाया जा सकता है ।

(ब) वृत्ति परिवर्तन की आवश्यकता

एक ही वृत्ति एवं संगठन में बने रहने की सामान्य प्रवृत्ति होते हुए भी, अनेक कर्मचारी वृत्ति एवं संगठन परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव करते हैं । ऐसा परिवर्तन परिस्थिति जनक अथवा आरम्भिक वृत्ति चयन के समय लिये गये संकल्पित निर्णय के अन्तर्गत हो सकता है । सामान्यत: वृत्ति परिवर्तन के कुछ महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित है :

(1) अल्पकालिक वृत्ति

अनेक वृत्ति अल्प समय के लिए ही होती है । यदि कोई व्यक्ति किसी अवस्था में ऐसी वृत्ति का चयन कर लेता है, तो वह निरन्तर किसी स्थाई वृत्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है ।

(2) मार्गस्थूल वृत्ति-

अनेक व्यक्ति चयनित वृत्ति को 'पैर रखने का पत्थर' मानते हैं । उनका लक्ष्य आरम्भ में चयनित वृत्ति द्वारा ऊँची छलांग लगाने का होता है ।

(3) कृत्य अपेक्षाओं में परिवर्तन

तकनीकी में परिवर्तन के साथ कृत्य अपेक्षायें पूर्व की भाँति नहीं रहती । साथ ही अनेक कृत्य बेकार हो जाते हैं अथवा अपना आकर्षण खो बैठते हैं । इन कारणों से भी वृत्ति परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की जाती है ।

(4) वैयक्तिक परिवर्तन

ऐसा भी सम्भव है कि एक कर्मचारी को चयनित संगठन में कार्य करते हुए अपनी छिपी हुई क्षमताओं का अनायास ही आभास हो जाय । अनेक सफल व्यक्तियों ने वृत्ति परिवर्तन द्वारा अपनी क्षमताओं का सही उपयोग करके ही सफलता अर्जित की है । कार्य करते हुए वैयक्तिक कौशल में अभिवृद्धि की वृत्ति परिवर्तन का कारण बन सकती है ।

(5) कृत्य प्रकृति में परिवर्तन

जैसे-जैसे कर्मचारी अपने वृत्ति के सोपानों को पार करके उच्च पदों पर पहुँचता है, उसके कृत्य की प्रकृति की बदलती जाती है । उच्चतर पद प्रशासनिक अधिक और

तकनीकी कम होते जाते हैं । बहुधा यह देखने में आता है कि तकनीकी व्यक्ति प्रशासनिक कृत्य पर **अपने** आपको, सामान्य अनुभव नहीं करता ।

(स) वैयक्तिक वृत्ति प्रबन्ध की प्रक्रिया

वैयक्तिक वृत्ति प्रबन्ध की व्यूहरचना के लिए कर्मचारी द्वारा निश्चित कदम उठाये जाने आवश्यक हे । ये निम्न प्रकार हैं :

(1) वृत्ति उद्देश्य का निर्धारण

वृत्ति नियोजन तथा विकास के निर्धारण के लिए प्राथमिक विचारणीय बात यह है कि कर्मचारी यह निश्चित करे कि वह किस प्रकार की वृत्ति का इच्छुक हैं वृत्ति के चयन के लिए व्यक्ति के समक्ष अनेक वृत्ति विकल्प होते है । इनमें से बह अपने उद्देश्यानुसार वृत्ति का चयन कर सकता है ।

(2) सूचना स्त्रोतों का निर्धारण

वृत्ति सम्बन्धी अन्तिम निर्णय में विविध सूचनाओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है । व्यक्ति को कृत्य तथा संगठन सम्बन्धी सूचनायें विविध स्त्रोतों से प्राप्त करनी चाहिए । सूचनायें किन स्त्रोतों से प्राप्त की जायेगी, इसका निश्चय किया जाना चाहिए तथा सूचनाएँ किन विधियों से प्राप्त की जायेंगी इस हेतु भी निर्णय किया जाना चाहिये ।

(3) कृत्य संगठन विश्लेषण

वृत्ति नियोजन एवं विकास के इस चरण में एकत्रित की गई सूचनाओं का अवलोकन एवं मूल्यांकन किया जाता है । संगठन तथा कृत्य के चयन को अनेक तत्त्व प्रभावित करते है । इनमें महत्वपूर्ण हैं- संगठन का स्थानीयकरण, ध्येय एवं मूल्य, कृत्य की पद प्रतिष्ठा, पदोन्नति के अवसर, रेखा, पदोन्नतियाँ तथा खुली पदोन्नतियों की सम्भावनाएं । इन सभी बातों की समीक्षा की जानी चाहिए ।

(4) स्व:मूल्य का लक्ष्य विश्लेषण

यह आवश्यक है कि वृत्ति चयनकर्ता संगठन एवं कृत्य के सन्दर्भ में अपने मूल्यों. आस्थाओं, ध्येय एवं अपेक्षाओं की समीक्षा भी करे । इस चरण में कर्मचारी अपनी सामर्थ्य एवं कमजोरियों पर विचार करता है । वह अपने व्यक्तितत्व का अवलोकन करता है और अपनी अपेक्षाओं तथा संगठन एवं कृत्य की अपेक्षाओं की तुलना करता है । विभिन्न संग संगठनों तथा कृत्यों में चयन के लिए व्यक्ति सम्बन्धी तत्व तथा संगठन सम्बन्धी तत्वों में समायोजन आवश्यक है ।

(5) वृत्ति व्यूह रचना का क्रियान्वयन

यह वृत्ति नियोजन तथा विकास का वह चरण है जिस पर व्यक्ति कृत्य तथा संगठन का अन्तिम चयन करता है । ऐसे चयन में अपने भावी विकास सम्भावनाओं एवं संगठन द्वारा प्रदत्त वृत्ति सोपान को दृष्टि में रखता है । वृत्ति की भावी व्यूहरचना के लिए व्यक्ति अपनी तथा संगठन की आवश्यकताओं एवं सम्भावनाओं में निरन्तर सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करता है ।

(6) कृत्य का प्रभावी निष्पादन

कर्मचारी की चयनित संगठन में प्रगति उसके कार्य निष्पादन एवं कार्य मूल्यांकन पर निर्भर करती है । अपने भावी विकास की सम्भावनाओं में वृद्धि करने के लिए कर्मचारी बिना, योग्यता, एवं पूर्ण सामर्थ्य के साथ अपने कृत्य एवं उत्तरदायित्व को पूरा करता है । संगठन के लाभ एवं हित की बात दृष्टिगत रखते हुए कृत्य एवं उत्तरदायित्व को पूरा करने से उच्च पदों पर पहुंचने का मार्ग खुल जाता है ।

(7) वृत्ति प्रगति प्रबोधन

वृत्ति विकास के लिए इस बात का सतत मूल्यांकन आवश्यक है. कि अवसरो का लाभ उठाने के लिए व्यक्ति स्वयं कितना तैयार हो रहा है । प्रबोधन द्वारा भावी प्रगति की बाधाओं की जानकारी प्राप्त होती रहती है । अपनी कमियों एवं बाधाओं को दूर करते रहने का प्रयास कर्मचारी द्वारा किया जा सकता हैं आगे प्रगति हेतु वृत्ति अपक्षय को रोका जाना चाहिए ।

9.6 संगठनात्मक वृत्ति नियोजन एवं विकास की प्रक्रिया

वृत्ति नियोजन एवं विकास में संगठन की भूमिका को भी कम करके नहीं ओका जा सकता । संगठन द्वारा अपने सभी कर्मचारियों के लिए वृत्ति नियोजन एवं विकास की व्यवस्था की जाती है । संगठन द्वारा वृत्ति प्रबन्ध के कार्यक्रमों के निर्माण के लिए वृत्ति को विविध स्तरों में बाँटा जाता है । और प्रत्येक स्तर के लिए अलग कार्यक्रम बनाया जाता है । कर्मचारी वृत्ति के स्तर तथा कार्यक्रम कमश: निम्न प्रकार है : -

(1) समावेशी स्तर

नवीन कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण तथा विकास के अनेक कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है । कर्मचारी मन्त्रणा, मार्गदर्शन, सूचना पद्धति परितोषण विधि आदि इस कार्यक्रम के महत्वपूर्ण अंग होते है ।

(2) स्थापन तक अनुरक्षण स्तर-

वृत्ति प्रबन्ध के इस चरण पर कृत्य एवं वैयक्तिक विकास पर बल दिया जाता है । अत: नृत्य सूचना पद्धति तथा कृत्य नियोजन मॉडल इस स्तर पर उपयोग में लाये जाने वाले उपकरण है । कृत्य अनुक्रम, सोपानिक पथों का निर्धारण करके, कर्मचारी को उनके अनुसार तैयार करने की प्रकिया है । कृत्य सूचना पद्धति द्वारा कर्मचारी को खुले पथों की सूचना दी जाती है और यह के कृत्य अनुक्रम से भिन्न है । कृत्य सूचना पद्धति के विपरीत कृत्य अनुक्रम में कर्मचारी के लिए निर्धारित रेखा अनुक्रम सोपानिक पथ को सम्मिलित किया जाता है । कृत्य सूचना पद्धति के अन्तर्गत अन्य पथों की जानकारी कर्मचारी को प्रदान की जाती है जिन पर वह अपनी क्षमता एवं योग्यता के अनुक्रम बढ सकता है । कृत्य नियोजन मॉडल कृत्य विकास के लिए ऐसे मॉडल है जिनमें एक साथ एक से अधिक विकास कार्यक्रम सम्मिलित किये जाते हैं । मॉडल इस रूप में समग्र विकास कार्यक्रम है । उदाहरण के लिए किसी मॉडल में कर्तव्य, सोपान, प्रशिक्षण एवं मन्त्रणा के रूप सम्मिलित हो सकते है । इन मॉडलों का आधार कर्मचारी का मूल्यांकन होता है । कर्मचारी मूल्यांकन के आधीन मूल्यांकन कर्ताओं का समूह कर्मचारी की क्षमताओं एवं व्यवहार का मूल्यांकन करता है ।

(3) हास स्तर

इस चरण में दो प्रकार के कर्मचारियों के लिए कार्यक्रम तैयार किये जाते हैं । ऐसे कर्मचारी जो पदोन्नत नहीं हो पाये हैं के लिए पुन: प्रशिक्षण, स्थानान्तरण, कृत्य पुन: संरचना आदि का उपयोग किया जाता है । सेवानिवृति के समीप कर्मचारियों के लिए सेवानिवृति मन्त्रणा की व्यवस्था की जाती है । उन्हें सेवा पश्चात् संगठन द्वारा प्रदान किये जाने वाले लाभों तथा सुविधाओं के प्रति आश्वस्त किया जाता है ।

9.7 वृत्ति प्रबन्ध के लिए संगठन द्वारा उठाये जाने वाले चरण

वृत्ति प्रबन्ध की प्रकिया में संगठन द्वारा उठाये जानें वाले चरण निम्न प्रकार है:

(1) कृत्य आवश्यकता का अनुमान

संगठन द्वारा कर्मचारियों के वृत्ति नियोजन तथा विकास कार्यक्रम में कृत्य आवश्यकता का अनुमान प्रथम चरण माना जा सकता है । इस चरण में संगठन कर्मचारियों को कृत्यों के सम्बन्ध में अधिकतम जानकारी प्रदान करते है । इसका उद्देश्य कर्मचारियों को अपनी वृत्ति नियोजन करने में सहायता प्रदान करना होता है । संगठन को इस चरण में कर्मचारियों की भावी क्रमानुगत प्रगति की आशाओं और लालसाओं का अनुमान प्राप्त होता है । अपनी आवश्यकता के अनुकूल कर्मचारी किस अथवा किन वृत्ति पथों पर बढ़ना चाहता है, इसका अनुमान संगठन प्राप्त करना चाहता है, ताकि वह प्रभावी वृत्ति नियोजन कर सके ।

(2) वृत्ति पथों की व्यवस्था

इस चरण में संगठन कर्मचारियों के लिए प्रगति पथों का निर्धारण एवं व्यवस्था करता है । वृत्ति पथ वे मार्ग हैं जो कर्मचारी के समक्ष उसके सोपानिक विकास का ढाँचा प्रस्तुत करते है । इनमें कृत्य परिवार एवं वृत्ति सीढ़ी सम्मिलित होती है कृत्य परिवार एक ही प्रकृति के कृत्य से सम्बन्धित तत्व है तथा वृत्ति सीढ़ी कृत्य परिवार के उत्तरोत्तर चरणों अथवा पदों का सम्बोधन होता है । कृत्य परिवारों या कृत समूह का निर्धारण हो जाने के पश्चात् विभिन्न पदों के निर्धारण द्वारा वृत्ति सीढ़ी निर्मित की जाती है । ऐसा प्रत्येक कृत्य परिवार अथवा समूह के विषय में किया जाता है । वृत्ति पथ के दो पक्ष होते हैं एक उसकी लम्बाई दूसरे उसकी चौड़ाई । वृत्ति पथ की लम्बाई से आशय कृत्य परिवार कीं पथ सीढ़ी से है तथा चौड़ाई विविध कृत्य परिवारों की पथ सीढ़ियों से सम्बन्ध रखती है । सामान्यत: किसी एक कृत्य परिवार में कार्य करने वाले कर्मचारी का प्रगति पथ उस कृत्य परिवार के वृत्ति पथ की लम्बाई तक सीमित होता हे । किन्तु कर्मचारियों को अन्य वृत्ति पथों पर भी बढ़ने का अवसर देने के लिए उन्हें विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त करने का अवसर संगठन द्वारा दिया जा सकता है । इस प्रकार कर्मचारी विभिन्न वृत्ति पथों में से चयन का अवसर पा जाता है । चौड़े वृत्ति पथ का एक प्रमुख लाम यह है कि इससे पथ चरमान्त की सम्भावना कम हो जाती है क्योंकि किसी एक वृत्ति पथ के अन्तिम छोर पर पहुँच कर वृत्ति यात्रा समाप्त नहीं होती । वृत्ति पथों के निर्धारण हो जाने के बाद उनके विभिन्न चरणों के किए कर्मचारियों से किन योग्यताओं एवं कौशल की आवश्यकता है का भी सरलता से निर्धारण किया जा सकता है । यह कर्मचारियों का किस दिशा में विकास किया जाना चाहिए का निर्धारण करने में लिए उपयोगी होती है ।

(3) सेविवर्गीय कौशल तालिका तैयार करना

कौशल तालिकाओं से तात्पर्य ऐसे 'डेटा बैंक' से है जिसमें सेविवर्गीय कौशल एवं ध्येयों को एकत्रित किया जाता है । सामान्यत: कौशल तालिकाओं में कर्मचारियों के सम्बन्ध में विभिन्न सूचनाएँ रखी जाती है जो उनकी शिक्षा, प्रशिक्षण, अनुभव, लक्ष्य, निष्पादन अंकन, सामर्थ्य एवं कमियों के बारे में होती है ।

(4) वृत्ति सूचना पद्धति

वृत्ति सूचना पद्धति सेविवर्गीय कौशल तालिकाओं की पूरक कहीं जा सकती है । वृत्ति सूचना पद्धति कौशल तालिका से केवल इस बात में भिन्न है क्योंकि इसमें कर्मचारियों तथा संगठन दोनों से सम्बन्धित कार्यक्रमों को सम्मलित किया जाता है । यह दो कार्यक्रम कमश: पदापूर्ति एवं प्रतिस्थापना तथा कृत्य नियुक्ति प्रणाली है । वृत्ति सूचना पद्धति संगठन में उपलब्ध पदों की सूचना प्रदान करती है ।

(5) वृत्ति मन्त्रणा

किसी भी वृत्ति नियोजन एवं विकास कार्यक्रम में वृत्ति मन्त्रणा की महत्ती भूमिका होती है । अत: वृत्ति मन्त्रणा या परामर्श संगठन द्वारा अपने कर्मचारियों के लिए व्यवस्थित। वृत्ति प्रबन्ध की प्रक्रिया का उपयोगी अंग बन गया है । वृत्ति परामर्श व्यापक एवं प्रभावी होना चाहिए । इसके द्वारा कर्मचारियों को अपने वृत्ति नियोजन में पर्याप्त सहायता मिलनी चाहिए । वृत्ति मन्त्रणा के लिए संगठन के पास कर्मचारी की सामर्थ्य, योग्यता, अपेक्षा, पद-अवसर, कार्य वातावरण एवं वातावरण के प्रति कर्मचारी का आचरण, व्यवहार एवं दृष्टिकोण आदि सूचनायें पर्याप्त मात्रा में होनी आवश्यक है ।

सामान्यत: संगठन में कर्मचारी विकास कार्यक्रमों को अपेक्षा से कम महत्व दिया जाता है । यही कारण है कि कर्मचारी वर्ग वृत्ति विकास को स्वयं का ही उत्तरदायित्व समझने लगा है । आवश्यकता इस बात की है कि कर्मचारी वर्ग द्वारा अपने वृत्ति विकास के प्रयत्नों में संगठन जा भी पूरा सहयोग हो । संगठन द्वारा कर्मचारियों के वृत्ति नियोजन एवं विकास कार्यक्रम तैयार किये जावे । वास्तव में वृत्ति नियोजन एवं विकास कर्मचारी एवं संगठन दोनों का ही उत्तरदायित्व है ।

9.8 सारांश

वर्तमान परिवेश में पर्यटन प्रबन्धक का कार्य महज कर्मचारियो की भर्ती व उनके रिटायरमेंन्ट ही नहीं है अपितु कर्मचारी की भावी आकांक्षाएँ को पूरा करने व करने उसे उचित अवसर प्रदान करने से भी सम्बन्धित है । इसके द्वारा कर्मचारी की योग्यता व परितोषण में संकलन स्थापित किया जा सकता है । इसके लाभ कर्मचारियों व संगठन दोनों को ही मिलते हैं । वृत्ति नियोजन एवं विकास के सम्बन्ध में निम्न तीन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए- स्व-विकास के तत्व, वृत्ति परिवर्तन की आवश्यकता, एवं व्यक्तिगत वृत्ति प्रबन्ध की प्रकिया । इसकी प्रकिया के अन्तर्गत निम्न तीन स्तरों पर वृत्ति नियोजन एवं विकास किया जा सकता है- समन्वेषी स्तर, स्थापन स्तर एवं हारा स्तर । वृत्ति प्रबन्धन के लिए संगठन को निम्न चरणों पर विशेष बल देना चाहिए- कृत्य आवश्यकता का अनुमान, वृत्ति पथों की व्यवस्था, सेविवर्गीय कौशल तालिका व वृत्ति सूचना प्रणाली तैयार करना, एवं वृत्ति मंत्रणा करना ।

9.9 अपनी प्रगति को जानने के लिए अभ्यास

1. वृत्ति नियोजन एवं विकास का अर्थ एवं परिभाषा बताइए ।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. संगठनात्मक वृत्ति नियोजन एवं विकास की प्रकिया समझाइए ।

   ....

   ....

   ....

   ....

3. वृत्ति नियोजन एवं विकास कार्यकमों के लाभों का वर्णन कीजिए ।

   ....

   ....

   ....

   ....

4. एक पर्यटन संगठन में वृत्ति नियोजन की आवश्यकता बताइये ।

   ....

   ....

   ....

   ....